



अभिनवधारा
ABHINAVDHARA
International Journal of Innovation in Indic Studies
www.ijis.org.com

श्रीमद्भगवद्गीता

भारतीय ज्ञान परम्परा के लिए एक दार्शनिक
और व्यावहारिक मार्गदर्शिका

Edited By
Prof. Rakesh Kumar Yogi
Dr. Supriya Sanju

Publisher

शब्दारम्भ

Global Academy of Culture, Languages & Wellness





अभिनवधारा

ABHINAVDHARA

International Journal of Innovation in Indic Studies

www.ijis.org.com

प्रस्तावना

अभिनवधारा जर्नल विशेषांक - मार्च 2026 “श्रीमद्भगवद्गीता: भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) के लिए एक दार्शनिक एवं व्यावहारिक मार्गदर्शक”

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परम्परा (Indian Knowledge System – IKS) का एक ऐसा अमूल्य ग्रंथ है, जो मानव जीवन के गहनतम प्रश्नों—अस्तित्व, कर्तव्य, चेतना और मोक्ष—का समाधान प्रस्तुत करता है। महाभारत के भीष्मपर्व में निहित यह दिव्य संवाद अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परे जाकर सार्वकालिक और सार्वभौमिक महत्व प्राप्त करता है।

अभिनवधारा जर्नल का यह विशेषांक (मार्च 2026) गीता के बहुआयामी स्वरूप का भारतीय ज्ञान परम्परा के संदर्भ में पुनर्पाठ करने का एक विनम्र प्रयास है। इस अंक का उद्देश्य प्राचीन ज्ञान और समकालीन विमर्श के मध्य सेतु का निर्माण करना है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि गीता की शिक्षाएँ आज भी नैतिकता, शिक्षा, नेतृत्व, मनोविज्ञान, आध्यात्मिकता तथा सतत् विकास जैसे विविध क्षेत्रों में समान रूप से प्रासंगिक हैं।

गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक सजीव संवाद है—भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य—जो मानव जीवन की जटिलताओं और दुविधाओं का समाधान प्रस्तुत करता है। इसमें प्रतिपादित *कर्म*, *ज्ञान* और *भक्ति* के सिद्धांत जीवन को समग्र दृष्टि प्रदान करते हैं, जहाँ विचार, आचरण और भावना का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। वर्तमान युग, जो अनिश्चितताओं और नैतिक चुनौतियों से परिपूर्ण है, उसमें गीता एक स्थिर दार्शनिक आधार और व्यावहारिक दिशा प्रदान करती है।

इस विशेषांक में विभिन्न विद्वानों, शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों के शोधपत्रों को संकलित किया गया है, जो गीता के विविध आयामों—दार्शनिक चिंतन, व्याख्यात्मक परम्पराएँ, शिक्षण पद्धति तथा समकालीन संदर्भों में उसकी उपयोगिता—का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में गीता का यह पुनर्पाठ इसे एक जीवंत और सतत् प्रेरणास्रोत के रूप में स्थापित करता है।

इस प्रकाशन को संभव बनाने में सहयोग देने वाले सभी लेखकों, समीक्षकों तथा संपादकीय मंडल के सदस्यों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही, हम अपने पाठकों एवं अकादमिक जगत के प्रति भी कृतज्ञ हैं, जिनके सतत् सहयोग से *अभिनवधारा जर्नल* निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

हमें विश्वास है कि यह विशेषांक शोधार्थियों, अध्येताओं तथा विद्वानों के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री सिद्ध होगा तथा भारतीय ज्ञान परम्परा के अध्ययन एवं अनुसंधान को नई दिशा प्रदान करेगा।



अभिनवधारा ABHINAVDHARA

International Journal of Innovation in Indic Studies
www.ijis.org.com

एडिटर-इन-चीफ स्पेशल एडिशन मार्च 2026 अभिनवधारा जर्नल



प्रोफेसर राकेश कुमार योगी
चेयरपर्सन

डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन नॉलेज एंड लैंग्वेजेज
गुरुग्राम यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम



डॉ सुप्रिया संजू
एडजंक्ट प्रोफेसर

डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन नॉलेज एंड लैंग्वेजेज
गुरुग्राम यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम



डॉ रवि प्रकाश चौबे
असिस्टेंट प्रोफेसर

डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन नॉलेज एंड लैंग्वेजेज
गुरुग्राम यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम



डॉ अनुपम आनंद
असिस्टेंट प्रोफेसर

डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन नॉलेज एंड लैंग्वेजेज
गुरुग्राम यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम



डॉ पवन कुमार उपाध्याय
असिस्टेंट प्रोफेसर

डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन नॉलेज एंड लैंग्वेजेज
गुरुग्राम यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम

Abhinavdhara Journal

Special Edition

श्रीमद्भगवद् गीता: भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) के लिए एक दार्शनिक और व्यावहारिक मार्गदर्शिका”

S N	NAME	TATLE	PAGE NO
1.	सतीश कुमार भारद्वाज असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग महर्षि दयानंद राजकीय कन्या महाविद्यालय - दादूपुर रोड़ान, जिला - करनाल (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र से संबद्ध)	भगवद् गीता में आदर्श नेतृत्व की अवधारणा और उसकी समकालीन प्रासंगिकता	1-16
2.	सोनू रानी योग प्रशिक्षक, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली। दलीप कुमार योग प्रशिक्षक, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली। राहुल सिंह चौहान योग प्रशिक्षक, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।	भगवद्गीता में भारतीय मनोविज्ञान: मन, चित और चेतना का विवेचनात्मक अध्ययन	17-28
3.	डॉ० विश्वजीत कुमार 'विद्यालंकार' सहायक प्राध्यापक सह विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग, आर० डी० & डी० जे० कॉलेज मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर- 811201	मानवीय संवेदनाओं से जनित कर्तव्याकर्तव्य का अन्तर्द्वंद्व एवं श्रीमद्भगवद्गीता	29-36
4.	डॉ.आसराफ आलम खॉन सहायकाचार्य: (योगः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय: एकलव्यपरिसरः, अगरतला	श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रतिपादितं वैज्ञानिकतत्त्वम्	37- 49
5.	डॉ. छाया सहायक प्राध्यापिका (हिंदी विभाग) निरंकारी बाबा गुरबचन सिंह मेमोरियल महाविद्यालय, सोहना	गीता और मानसिक स्वास्थ्य: एक अंतर्विषयक अध्ययन	50-57
6.	प्रो. (डॉ.) प्रशांत कुमार, तिलक स्कूल ऑफ़ जर्नलिज़्म एंड मास कम्युनिकेशन, चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ।	गीता के संवाद पर आधारित संचार की अवधारणा: एक अंतःविषयक समीक्षा	58-78

	श्रीमती शैली शर्मा, रिसर्च स्कॉलर, तिलक स्कूल ऑफ़ जर्नलिज़्म एंड मास कम्युनिकेशन, चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ।		
7.	अमरजीत कौर शोध छात्रा, शारीरिक शिक्षा, खेल और योग विज्ञान विभाग, सिंघानिया विश्वविद्यालयपचेरी बारी, झुंझुनु (राजस्थान), भारत	कर्मयोग से नैतिक नेतृत्व तक: समकालीन संगठनात्मक जीवन में भगवद्गीता की प्रासंगिकता	79-95
8.	कुमारी शीतला दर्शनविभाग शोधछात्रा केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयभोपाल परिसर	गीता के कर्मयोग, नैतिक जीवन एवं नेतृत्व का मनुष्य जीवन में आध्यात्मिक प्रभाव	96-102
9.	डॉ. प्रवीण पाठक असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग स्टारेक्स यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम	गीता में मानवता	103-108
10	डॉ.विवेक पाठक सहायक प्रोफेसर भारतीय ज्ञान परम्परा केंद्र तीर्थकर महावीर विश्वविद्यालय,मुरादाबाद,उत्तर प्रदेश	भारतीय ज्ञान परंपरा में वर्चस्व नहीं, धर्मात्मक सर्वश्रेष्ठता: भगवद्गीता के आलोक में एक दार्शनिक पुनर्पाठ	109-119
11	अंकित कुमार पाण्डेय शोधछात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	भारतीयज्ञान परंपरा की दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदों का दार्शनिक विश्लेषण	120-124
12	डॉ. कुलदीप कुमार सेहगल एसोसिएट प्रोफेसर माता सुन्दरी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)	भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के आर्थिक मूल्यों की प्रासंगिकता	125-142
13	ओम प्रकाश कुमार शोधछात्र (संस्कृत विभाग) दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	भगवद्गीता में कर्तव्य एवं आत्मबोध	143-152

14	डॉ. मंजुला जे. वीरडिया , एसोसिएट प्रोफेसर, श्रीमती ए पी पटेल आर्ट्स एन्ड स्व. श्री एन.पी.पटेल कॉमर्स कॉलेज,नरोडा, अहमदाबाद,गुजरात	श्रीमद् भगवद् गीता : जीवन और कार्य के लिए व्यवहारिक मार्गदर्शिका	153-159
15	सुमित शुक्ला शोध छात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय	निष्काम कर्म सिद्धान्त : भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) में दार्शनिक आधार और आधुनिक जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोग	160-171
16	डॉ. रुचि पालीवाल असिस्टेंट प्रोफेसर गुरु नानक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, सेक्टर-4, उदयपुर	श्रीमद्भगवद्गीता का 'आनंदवाद' और भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS): समकालीन हिंदी साहित्य में परिकल्पित एक स्वस्थ एवं संतुलित समाज	172-182
17	डॉ. मृगांक मलासी सहायक आचार्य (संस्कृत) डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग (चमोली) उत्तराखण्ड	व्यावहारिक परिदृश्य में श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता	183-191
18	सतीश चन्द्र कैवर्त शोधछात्र , फिलॉसफी डिपार्टमेंट डी.एस.वी.वी. गायत्रीकुंज-शांतिकुंज हरिद्वार डा. कृष्णा झरे दर्शनशास्त्र विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय शांतिकुंज हरिद्वार, उत्तराखंड	श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ की भूमिका (वैश्विक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य में)	192-202
19	जैकी कुमार चौबे शोधछात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	भारतीय ज्ञान प्रणाली के वैदिक आधार : एक अध्ययन	203-210

भगवद् गीता में आदर्श नेतृत्व की अवधारणा और उसकी समकालीन प्रासंगिकता

सतीश कुमार भारद्वाज
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
महर्षि दयानंद राजकीय कन्या महाविद्यालय

शोध-सार

प्रस्तुत शोधपत्र में भगवद् गीता का केवल एक आध्यात्मिक ग्रंथ के रूप में ही नहीं बल्कि उसका नेतृत्व और व्यावहारिक जीवन-दर्शन के व्यापक संदर्भ में विश्लेषण किया गया है। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि गीता में वर्णित नेतृत्व की अवधारणा केवल तत्कालीन समाज के लिए ही उपयोगी नहीं थी, बल्कि आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

महाभारत की युद्धभूमि में अर्जुन का विषाद आधुनिक मनुष्य और नेतृत्वकर्ता की मानसिक दुविधा और नैतिक संकट का प्रतीक है। वहीं श्रीकृष्ण का संवाद-आधारित मार्गदर्शन एक ऐसे आदर्श नेतृत्व मॉडल को प्रस्तुत करता है, जो आदेशात्मक नहीं है, बल्कि विवेक और आत्मबोध पर आधारित है। गीता का नेतृत्व-दर्शन कर्तव्यनिष्ठा, निष्काम कर्म, विवेकपूर्ण निर्णय-निर्माण, नैतिक मूल्यों, सेवाभाव और लोककल्याण पर आधारित है।

गीता नेतृत्व को केवल सत्ता या अधिकार से नहीं जोड़ती, बल्कि उसे एक नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित करती है। गीता का योग-दर्शन आधुनिक नेतृत्व को मानसिक संतुलन,

तनाव-प्रबंधन और आत्मसंयम की प्रभावी दृष्टि प्रदान करता है, जो आज के प्रशासनिक, राजनीतिक और कॉर्पोरेट नेतृत्व के लिए अत्यंत आवश्यक है।

समकालीन संदर्भ में यह स्पष्ट है कि नैतिक पतन, निर्णय-अस्थिरता, तनाव और मानव-केंद्रित दृष्टि का अभाव जैसे वर्तमान नेतृत्व-संकट को गीता के मूल्य-आधारित दर्शन द्वारा संतुलित किया जा सकता है। गीता का मानवतावादी दृष्टिकोण वैश्विक शांति, सहअस्तित्व और सतत विकास की अवधारणाओं को भी सुदृढ़ करता है। निष्कर्षतः गीता में वर्णित आदर्श नेतृत्व की अवधारणा आज भी समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए एक सशक्त और प्रासंगिक मार्गदर्शन है।

कुंजी-शब्द - भगवद् गीता, आदर्श नेतृत्व, निष्काम कर्म, नैतिक नेतृत्व, लोककल्याण, योग-दर्शन, समकालीन प्रासंगिकता

प्रस्तावना

नेतृत्व मानवता की एक मूलभूत आवश्यकता रहा है। परिवार, समाज, संगठन, राष्ट्र- हर स्तर पर नेतृत्व की भूमिका निर्णायक होती है। जब नेतृत्व नैतिक, दूरदर्शी और कर्तव्यनिष्ठ रहा है, तब समाज ने प्रगति की है और जब नेतृत्व स्वार्थ, अहंकार तथा मूल्यहीनता से ग्रस्त हुआ है, तब सामाजिक पतन और संकट उत्पन्न हुए हैं। आज नेतृत्व की चर्चा प्रबंधन, राजनीति और प्रशासन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक मानवीय और नैतिक प्रश्न बन चुकी है।

भारतीय चिंतन परंपरा में नेतृत्व को केवल सत्ता या अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि कर्तव्य, धर्म और लोककल्याण से जोड़ा गया है। भगवद् गीता एक ऐसा ग्रंथ है जो जीवन, कर्म और नेतृत्व- तीनों का समग्र दर्शन प्रस्तुत करता है। इसके उपदेश जीवन के व्यावहारिक पक्षों, विशेषकर नेतृत्व और निर्णय-प्रक्रिया, से गहराई से जुड़े हुए हैं।

महाभारत युद्धभूमि में अर्जुन का विषाद केवल एक योद्धा का व्यक्तिगत संकट नहीं है, बल्कि वह हर उस व्यक्ति का प्रतीक है जो कठिन परिस्थितियों में निर्णय लेने से डरता है। ऐसे समय में श्रीकृष्ण का



मार्गदर्शन एक आदर्श नेतृत्व मॉडल प्रस्तुत करता है, जिसमें विवेक, रणनीति, नैतिकता और कर्तव्य-सभी का संतुलन दिखाई देता है। वे न तो आदेश थोपते हैं और न ही अर्जुन की स्वतंत्रता छीनते हैं, बल्कि संवाद और तर्क के माध्यम से उसे आत्मबोध की ओर ले जाते हैं।

आधुनिक समय में नेतृत्व का संकट राजनीति में मूल्यहीनता, संगठनों में नैतिक दबाव और समाज में विश्वास की कमी के रूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऐसे समय में गीता का नेतृत्व-दर्शन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। गीता का निष्काम कर्म, आत्मसंयम, धर्मनिष्ठा और लोकसंग्रह पर आधारित नेतृत्व आज भी एक मूल्यपरक दृष्टि प्रदान करता है।

इस शोधपत्र का उद्देश्य भगवद् गीता में निहित आदर्श नेतृत्व की अवधारणा का विश्लेषण करना तथा उसकी समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है, ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि गीता का नेतृत्व-दर्शन आज भी मानव जीवन और समाज के लिए उतना ही उपयोगी और मार्गदर्शक है, जितना वह महाभारत काल में था।

भगवद् गीता का दार्शनिक आधार और नेतृत्व

भगवद् गीता भारतीय दर्शन की एक ऐसी आधारशिला है, जिसमें जीवन, कर्म और चेतना का गहन विश्लेषण मिलता है। गीता का दर्शन केवल व्यक्तिगत मोक्ष का मार्ग नहीं दिखाता, बल्कि वह व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्वों से भी जोड़ता है। नेतृत्व, जो मूलतः सामाजिक जीवन से संबंधित है, गीता के दार्शनिक सिद्धांतों से गहराई से प्रेरित होता है। गीता स्पष्ट करती है कि प्रभावी नेतृत्व बाहरी अधिकार से नहीं, बल्कि आंतरिक संतुलन व नैतिक चेतना से उत्पन्न होता है।

1. गीता का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

भगवद् गीता का दर्शन कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय पर आधारित है। यह त्रिवेणी नेतृत्व के लिए एक संतुलित आधार प्रदान करती है। केवल कर्म पर बल देने से नेतृत्व यांत्रिक और और संवेदनहीन हो सकता है, केवल ज्ञान पर केंद्रित होने से वह व्यावहारिक जीवन से कट सकता है और केवल भक्ति पर



आधारित नेतृत्व भावनात्मक हो सकता है। गीता इन तीनों के सामंजस्य के माध्यम से ऐसा नेतृत्व प्रस्तुत करती है, जो विवेकपूर्ण, संवेदनशील और व्यवहारिक हो। यह दर्शन नेतृत्व को मूल्य-आधारित दिशा प्रदान करता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म करते हुए ज्ञान और भक्ति से युक्त रहने की शिक्षा देते हैं। यह दर्शन नेतृत्व को न केवल कार्यकुशल बनाता है, बल्कि उसे नैतिक और मानवीय भी बनाता है। उदाहरण- “योगः कर्मसु कौशलम्।” (गीता 2.50) इस श्लोक में समत्व बुद्धि से विवेकपूर्वक कर्मों को करने की प्रेरणा दी गई है। इससे स्पष्ट है कि गीता का नेतृत्व-दर्शन विवेकपूर्ण और संतुलित कर्म पर आधारित है।

2. त्रिगुण सिद्धांत और नेतृत्व

गीता का त्रिगुण सिद्धांत मानव स्वभाव को समझने की कुंजी है। गीता में मानव स्वभाव को सत्त्व, रजस और तमस- इन तीन गुणों के माध्यम से समझाया गया है। नेतृत्व की प्रकृति भी इन्हीं गुणों से निर्धारित होती है। तामसिक नेतृत्व आलस्य, अज्ञान, भ्रम और निष्क्रियता से युक्त होता है, जिससे समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होती है। राजसिक नेतृत्व अत्यधिक महत्वाकांक्षा, अहंकार, प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिगत लाभ पर केंद्रित होता है, जो संघर्ष और अस्थिरता को जन्म देता है। इसके विपरीत सात्त्विक नेतृत्व संयम, विवेक, करुणा और कर्तव्यबोध पर आधारित होता है। गीता सात्त्विक नेतृत्व को आदर्श मानती है, क्योंकि वह व्यक्तिगत हित के साथ-साथ समाज के कल्याण को भी महत्व देता है। उदाहरण-

“सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्” (गीता 14.5)

इसमें कहा गया है कि प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण इस नश्वर शरीर में रहने वाले अविनाशी आत्मा को बाँध देता है। यह श्लोक सात्त्विक नेतृत्व की श्रेष्ठता को स्थापित करता है।



3. आत्मबोध और नेतृत्व

गीता में आत्मबोध को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। आत्मज्ञान से युक्त नेतृत्व बाहरी परिस्थितियों से विचलित नहीं होता। ऐसा नेतृत्व भय, लोभ और मोह से ऊपर उठकर निष्पक्ष और विवेकपूर्ण निर्णय लेता है। “स्थितप्रज्ञ” व्यक्ति का चित्रण आदर्श नेतृत्व का प्रतिमान प्रस्तुत करता है जो यह दर्शाता है कि मानसिक स्थिरता और आत्मसंयम नेतृत्व की अनिवार्य शर्तें हैं। आत्मबोध नेतृत्व को अहंकार से मुक्त करता है और उसमें विनम्रता तथा उत्तरदायित्व की भावना विकसित करता है। जो स्वयं को जानता है, वही दूसरों का मार्गदर्शन करने में सक्षम होता है। उदाहरण-

“उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः॥” (गीता 6.5)

इसमें कहा गया है कि मनुष्य को अपने मन और आत्मा के द्वारा स्वयं का उद्धार करना चाहिए और स्वयं को पतन से बचना चाहिए क्योंकि वह स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है। इस प्रकार यह श्लोक आत्मनियंत्रण और आत्मविकास को नेतृत्व का मूल आधार मानता है।

4. समत्व-बुद्धि और निर्णय क्षमता

गीता का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत समत्व-बुद्धि है। लाभ-हानि, जय-पराजय और सुख-दुःख में समान भाव बनाए रखना नेतृत्व के लिए अत्यंत आवश्यक है। इनमें समान भाव रखने वाला नेता ही दीर्घकालिक और न्यायपूर्ण निर्णय ले सकता है। भावनात्मक असंतुलन निर्णय क्षमता को कमजोर करता है। गीता का समत्व-दर्शन नेतृत्व को निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और दूरदर्शी बनाता है। यह परिस्थितियों के दबाव में नहीं, बल्कि विवेक और मूल्यों पर आधारित निर्णय लेता है।

उदाहरण- *“सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।” (गीता 2.38)*



इस श्लोक में कहा गया है कि सुख और दुख, लाभ और हानि, जय और पराजय- इन सबको समान समझकर कर्तव्य में प्रवृत्त हो जाओ। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि समत्व-बुद्धि ही प्रभावी नेतृत्व की आधारशिला है।

भगवद् गीता में आदर्श नेतृत्व के मूल तत्व

भगवद् गीता में नेतृत्व को किसी पद, अधिकार या आदेश देने की प्रक्रिया नहीं माना गया है, बल्कि इसे एक नैतिक दायित्व, आत्मिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीता का नेतृत्व-दर्शन व्यक्ति के आंतरिक विकास से प्रारंभ होकर समाज के समग्र कल्याण तक विस्तृत होता है। गीता यह स्पष्ट करती है कि जो व्यक्ति स्वयं को नियंत्रित और संतुलित नहीं कर सकता, वह दूसरों का प्रभावी मार्गदर्शन नहीं कर सकता। इस प्रकार गीता का नेतृत्व-दर्शन बाह्य सत्ता से अधिक आंतरिक योग्यता पर आधारित है।

1. निष्काम कर्म और नेतृत्व

गीता का सबसे प्रसिद्ध सिद्धांत निष्काम कर्म है, जो नेतृत्व को फल की आसक्ति से मुक्त करता है। निष्काम कर्म का अर्थ परिणामों की उपेक्षा नहीं, बल्कि कर्तव्य को सर्वोपरि मानकर पूर्ण निष्ठा से कर्तव्य का निर्वहन करना है। फल की आकांक्षा से प्रेरित नेतृत्व स्वार्थ, भय और दबाव में कार्य करता है, जबकि निष्काम कर्म से प्रेरित नेतृत्व कर्तव्य और विवेक के आधार पर। ऐसा नेतृत्व न तो असफलता से विचलित होता है और न ही सफलता से अहंकारी बनता है। उदाहरण -

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥” (गीता 2.47)

इस श्लोक के अनुसार नेता का अधिकार केवल कर्म पर है, फल पर नहीं। नेतृत्व के क्षेत्र में यह सिद्धांत तनाव-प्रबंधन, कार्य-संतुलन और नैतिक नेतृत्व के लिए अत्यंत उपयोगी है।



2. धर्मनिष्ठा और न्यायपूर्ण नेतृत्व

गीता में 'धर्म' का अर्थ किसी संकीर्ण धार्मिक आस्था से नहीं, बल्कि नैतिक कर्तव्य और सामाजिक उत्तरदायित्व से है। श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि उसका संघर्ष व्यक्तिगत नहीं, बल्कि धर्म की रक्षा के लिए है। धर्मनिष्ठ नेतृत्व कठिन परिस्थितियों में भी सत्य और न्याय का मार्ग नहीं छोड़ता और निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर सामाजिक कर्तव्यों का निर्वाह करता है।
उदाहरण -

“श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥” (गीता 3.35)

इसके अनुसार अपनी सहज प्रकृति और योग्यता के अनुसार किया गया कार्य श्रेष्ठ है, दूसरों की सफलता देखकर उनकी नकल करना खतरनाक हो सकता है। आज का नेतृत्व प्रायः तात्कालिक लाभ और सत्ता पर आधारित है, जबकि गीता का धर्म-आधारित नेतृत्व मूल्य आधारित विकल्प देकर एक स्थायी और विश्वसनीय आदर्श प्रस्तुत करता है।

3. लोकसंग्रह की भावना

लोकसंग्रह गीता का एक अत्यंत महत्वपूर्ण नेतृत्व-सिद्धांत है। इसका अर्थ है कि नेता को अपने कर्मों से समाज को संगठित और प्रेरित करना चाहिए और लोककल्याण को बढ़ावा देकर सामाजिक संतुलन बनाए रखना चाहिए। नेतृत्व का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उन्नति नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज का हित होना चाहिए। उदाहरण -

“कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥” (गीता 3.20)



इसके अनुसार लोकसंग्रह की भावना नेतृत्व को सेवा-प्रधान बनाती है। ऐसा नेता अपने निर्णयों के सामाजिक प्रभाव को समझता है और कमजोर वर्गों के प्रति उत्तरदायित्व निभाता है। ऐसा नेता समाज के कमजोर वर्गों, भविष्य की पीढ़ियों और सामाजिक संतुलन के प्रति उत्तरदायी होता है।

4. अपने आचरण के उदाहरण द्वारा नेतृत्व

गीता में यह स्पष्ट कहा गया है कि श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है, सामान्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। इसका अर्थ है कि नेतृत्व केवल उपदेश से नहीं, बल्कि व्यवहार और आचरण से प्रभावी होता है। इस प्रकार गीता में नेतृत्व का एक अत्यंत व्यावहारिक सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है- नेता का आचरण ही समाज के लिए मार्गदर्शक बनता है। शब्दों से अधिक प्रभाव कर्म और व्यवहार का होता है। इसलिए आदर्श नेतृत्व उपदेश नहीं देता, बल्कि अपने आचरण से दूसरों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करता है। उदाहरण -

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥” (गीता 3.21)

इसके अनुसार आदर्श नेता स्वयं उन मूल्यों का पालन करता है, जिन्हें वह दूसरों से अपेक्षित करता है। श्रीकृष्ण स्वयं कर्मयोगी होकर अर्जुन को कर्म का संदेश देते हैं। ऐसा नेतृत्व विश्वास, प्रेरणा और अनुशासन को स्वाभाविक रूप से विकसित करता है तथा समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

श्रीकृष्ण : भगवद् गीता में आदर्श नेतृत्व का जीवंत उदाहरण

गीता में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व आदर्श नेतृत्व का सबसे सशक्त और जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। वे न तो किसी राज्य के शासक हैं और न ही सेनापति के रूप में युद्धभूमि में उपस्थित हैं, फिर भी संपूर्ण महाभारत युद्ध का नैतिक और रणनीतिक संचालन उनके नेतृत्व में होता है। इससे सिद्ध होता है कि गीता में नेतृत्व का आधार सत्ता नहीं, बल्कि चेतना, विवेक और कर्तव्यबोध है। वे अर्जुन की



समस्या को केवल युद्ध की समस्या नहीं मानते, बल्कि उसे एक मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक संकट के रूप में देखते हैं। यही दृष्टि उन्हें एक मार्गदर्शक से ऊपर उठाकर आदर्श नेता बनाती है।

1. संवादात्मक नेतृत्व : आदेश नहीं, आत्मबोध की प्रेरणा

श्रीकृष्ण की नेतृत्व शैली का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनका संवादात्मक दृष्टिकोण है। वे अर्जुन को आदेश देकर युद्ध के लिए बाध्य नहीं करते, बल्कि उसके भीतर उत्पन्न संशयों और दुविधाओं को समझकर उनका समाधान करते हैं। गीता का संपूर्ण उपदेश एक संवाद है, न कि एकतरफा भाषण। यह दर्शाता है कि सच्चा नेतृत्व संवाद और समझ पर आधारित होता है, न कि आदेश और दबाव पर। श्रीकृष्ण अर्जुन से प्रश्न करते हैं, तर्क प्रस्तुत करते हैं और अंत में कहते हैं -

“इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।

विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥” (गीता 18.63)

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मैंने तुम्हें जो ज्ञान दिया है, उस पर विचार करके तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही करो। वे अर्जुन पर अपना निर्णय नहीं थोपते। वे उसे ज्ञान देने के बाद स्वयं विवेक से चुनाव करने की आजादी देते हैं। यह कथन नेतृत्व की परिपक्वता का प्रतीक है, जहाँ नेता अनुयायी की स्वतंत्रता और विवेक का सम्मान करता है।

2. प्रेरक नेतृत्व : भय से कर्तव्य की ओर

अर्जुन युद्ध से विमुख इसलिए नहीं है कि वह युद्ध-कौशल में सक्षम नहीं है, बल्कि इसलिए कि वह भावनात्मक रूप से विचलित है। श्रीकृष्ण इस स्थिति को दुर्बलता मानकर तिरस्कार नहीं करते, बल्कि उसे समझते हैं और धीरे-धीरे अर्जुन के भीतर छिपे कर्तव्यबोध को जाग्रत करते हैं। वे अर्जुन को यह बोध कराते हैं कि उसका संकट व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ा है। उदाहरण -

“क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥” (गीता 2.3)



इसमें अर्जुन को कायरता को त्याग कर अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए प्रेरित किया गया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन को भय, मोह और दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं।

3. आचरण द्वारा नेतृत्व : कथनी और करनी की एकता

गीता में नेतृत्व का एक मूल सिद्धांत यह है कि नेता का आचरण उसके शब्दों से अधिक प्रभावशाली होता है। श्रीकृष्ण जो उपदेश देते हैं, वही स्वयं अपने जीवन में अपनाते हैं। वे कर्मयोग का संदेश देते हैं और स्वयं कर्मयोगी के रूप में कार्य करते हैं। उनकी कथनी और करनी में कोई विरोध दिखाई नहीं देता। गीता यह स्पष्ट करती है कि समाज श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण का अनुसरण करता है। इसमें स्पष्ट कहा गया है -

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥” (गीता 3.21)

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण जन भी वैसा ही आचरण करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व केवल भाषणों या निर्देशों से प्रभावी नहीं बनता, बल्कि नेता के व्यवहार और नैतिकता से बनता है।

श्रीकृष्ण का जीवन यह सिद्ध करता है कि जब नेता स्वयं अनुशासन और कर्तव्य का पालन करता है, तब उसके अनुयायी स्वाभाविक रूप से प्रेरित होते हैं। ऐसा नेतृत्व विश्वास, प्रेरणा और अनुशासन को स्वाभाविक रूप से विकसित करता है। आज भी यह सिद्धांत अत्यंत उपयोगी है, जहाँ उदाहरण प्रस्तुत करने वाला नेतृत्व अधिक प्रभावी होता है।

4. नैतिक साहस और उत्तरदायित्वपूर्ण नेतृत्व

श्रीकृष्ण का नेतृत्व नैतिक साहस का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। नैतिक साहस का अर्थ है- कठिन परिस्थितियों में भी सत्य और धर्म के मार्ग पर अडिग रहना। उनका नेतृत्व कठिन निर्णयों से पलायन नहीं करता। वे जानते हैं कि महाभारत का युद्ध विनाशकारी होगा, फिर भी वे धर्म की रक्षा के लिए उसे



आवश्यक मानते हैं। यह नेतृत्व भावुकता से नहीं, बल्कि विवेक से संचालित होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि कर्तव्य से पलायन करना समाधान नहीं है। नेता का दायित्व धर्म और न्याय की स्थापना करना भी है। यह नैतिक साहस का सर्वोच्च उदाहरण है।

“हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥” (गीता 2.37)

वे अर्जुन को किसी भी परिणाम के लिए तैयार रहने के लिए कहते हैं। आदर्श नेता वही होता है जो कर्तव्य और विवेक के आधार पर निर्णय लेता है। आज भी यह दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है। कई बार नेतृत्व लोकप्रिय निर्णय लेने के दबाव में नैतिक मूल्यों से समझौता कर लेता है। श्रीकृष्ण के अनुसार सच्चा नेता वही है जो आलोचना के भय से नहीं, बल्कि जनहित को ध्यान में रखकर निर्णय लेता है। श्रीकृष्ण का नेतृत्व इस दृष्टि से आज भी मार्गदर्शक और प्रेरणास्रोत है।

समकालीन संदर्भ में भगवद् गीता के नेतृत्व-दर्शन की प्रासंगिकता

भगवद् गीता का नेतृत्व-दर्शन केवल महाभारतकालीन युद्धभूमि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आज के जटिल, प्रतिस्पर्धात्मक और नैतिक चुनौतियों से भरे समाज में भी अत्यंत प्रासंगिक है। गीता का नेतृत्व-दर्शन आज के प्रशासन, राजनीति, शिक्षा, उद्योग, प्रबंधन और सामाजिक जीवन में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

1. कर्तव्यनिष्ठ नेतृत्व और उत्तरदायित्व का निर्वहन

गीता में नेतृत्व का मूल आधार कर्तव्यनिष्ठा है। गीता यह स्पष्ट करती है कि नेतृत्व का मूल्य कर्तव्य के प्रति निष्ठा से निर्धारित होता है। आज प्रशासन, शिक्षा और कॉर्पोरेट क्षेत्र में नेता प्रायः परिणाम और लाभ के दबाव में नैतिक समझौते करने लगते हैं। गीता इस प्रवृत्ति का विरोध करती है और निष्काम कर्म को आदर्श नेतृत्व का आधार बनाती है।



उदाहरण-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (2.47)

यह श्लोक सिखाता है कि नेता को अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह पूरी ईमानदारी से करना चाहिए और केवल कर्म पर ही ध्यान देना चाहिए, चाहे तत्काल परिणाम न मिले। ऐसा नेतृत्व विश्वास, स्थिरता और नैतिक शक्ति प्रदान करता है।

2. निर्णय-निर्माण में विवेक और संतुलन

आज निर्णय-निर्माण अत्यंत जटिल और दबावपूर्ण प्रक्रिया बन गया है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक हित निर्णयों को प्रभावित करते हैं। गीता विवेक और मानसिक संतुलन को नेतृत्व का अनिवार्य गुण मानते हुए कहती है कि जो नेता भावुकता, भय या पक्षपात से मुक्त होकर निर्णय लेता है, वही न्यायपूर्ण नेतृत्व प्रदान कर सकता है। उदाहरण-

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ (2.48)

यह श्लोक नेतृत्व को सिखाता है कि आसक्ति को त्यागकर तथा सफलता और विफलता में समान भाव रखकर अपने कर्तव्यों का पालन करने और समत्व भाव से लिया गया निर्णय ही सभी के हित में होता है।

3. नैतिक और मूल्य-आधारित नेतृत्व

आज के समय में नैतिकता की कमी नेतृत्व की सबसे बड़ी चुनौती बन चुका है। भगवद् गीता नेतृत्व को धर्म-आधारित दृष्टि प्रदान करती है, जहाँ धर्म का अर्थ नैतिकता, न्याय और लोककल्याण है। गीता के अनुसार जब नेतृत्व नैतिक मूल्यों से विचलित होता है, तब समाज में असंतुलन और अव्यवस्था उत्पन्न होती है। उदाहरण-



यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ (4.7)

इसमें कहा गया है कि अधर्म की अधिकता होने पर धर्म की स्थापना करना अनिवार्य हो जाता है। यह श्लोक संकेत करता है कि मूल्य-आधारित नेतृत्व समाज में संतुलन और विश्वास की पुनर्स्थापना करता है।

4. सेवाभाव और लोककल्याण पर आधारित नेतृत्व

गीता में वर्णित नेतृत्व अहंकार के स्थान पर सेवाभाव को महत्व देता है। श्रीकृष्ण स्वयं सत्ता में न होते हुए भी अर्जुन का मार्गदर्शन करते हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक नेतृत्व को विनम्रता और उत्तरदायित्व का बोध कराता है। उदाहरण-

कर्मनैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसङ्ग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ (3.20)

यह श्लोक बताता है कि नेता को अपने कर्तव्यों का पालन करके और अपने कर्मों के माध्यम से समाज को दिशा देनी चाहिए। सेवाभावी नेतृत्व ही आम जनता के विश्वास को मजबूत करता है।

5. परिवर्तन और संकट के समय नेतृत्व

आज का युग निरंतर परिवर्तन और संकटों का युग है- चाहे वे आर्थिक हों, सामाजिक हों या वैश्विक। भगवद् गीता संकट को नेतृत्व की वास्तविक परीक्षा मानती है। संकट के समय नेतृत्व का दायित्व भय और मोह से ऊपर उठकर मार्गदर्शन करना होता है। उदाहरण -

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैत्त्व्युपपद्यते ।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ (2.3)

इसमें कहा गया है कि अपनी कमजोरियों को दूर करके अपने शत्रुओं का पराजित करो। यह श्लोक नेतृत्व को साहस, धैर्य और आत्मविश्वास के साथ कठिन परिस्थितियों का सामना करने की प्रेरणा देता है।



6. वैश्विक नेतृत्व और मानवतावादी दृष्टिकोण

आज का नेतृत्व केवल स्थानीय या राष्ट्रीय नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर प्रभाव डालता है। भगवद् गीता का नेतृत्व-दर्शन संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर समस्त मानवता के कल्याण की बात करता है। यह दृष्टिकोण वैश्विक शांति और सहअस्तित्व का आधार बनता है। उदाहरण -

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ (5.25)

इसमें कहा गया है कि जो किसी से भेदभाव नहीं करते और सदैव सभी प्राणियों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं, वे परम सत्ता को प्राप्त करते हैं। यह श्लोक मानवतावादी नेतृत्व का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो वैश्विक समस्याओं के समाधान में सहयोग और करुणा को महत्व देता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोधपत्र से यह स्पष्ट होता है कि भगवद् गीता केवल एक आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह जीवन के सभी पक्षों के लिए एक समग्र और मूल्य आधारित दर्शन प्रस्तुत करती है। गीता का नेतृत्व-दर्शन किसी विशेष काल या समाज तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन की मूल समस्याओं से जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से गीता का अध्ययन समकालीन नेतृत्व-संकट को समझने और उसका समाधान खोजने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

गीता में नेतृत्व का आधार कर्तव्य, विवेक और लोककल्याण है। गीता नेतृत्व को केवल अधिकार या सत्ता के रूप में नहीं देखती, बल्कि उसे एक नैतिक उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित करती है। निष्काम कर्म का सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि सच्चा नेता वही है जो फल की आसक्ति से मुक्त होकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है।



गीता विवेकपूर्ण और संतुलित निर्णय लेने पर विशेष बल देती है। गीता का बुद्धियोग और समत्व का सिद्धांत नेता को भावनात्मक आवेग, भय और पक्षपात से मुक्त होकर निर्णय लेने की प्रेरणा देता है। इससे नेतृत्व में स्थिरता, न्याय और विश्वसनीयता आती है।

गीता आधुनिक नेतृत्व को मानसिक संतुलन और तनाव-प्रबंधन की प्रभावी दृष्टि भी प्रदान करती है। गीता यह सिखाती है कि आंतरिक शांति व आत्मसंयम के बिना प्रभावी नेतृत्व संभव नहीं है। श्रीकृष्ण का नेतृत्व मॉडल यह दर्शाता है कि सच्चा नेता स्वयं को समाज का सेवक मानता है और लोककल्याण को महत्व देता है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भगवद् गीता में प्रतिपादित आदर्श नेतृत्व की अवधारणा आज भी उतनी ही प्रासंगिक और मार्गदर्शक है, जितनी वह प्राचीन काल में थी। यदि आज का नेतृत्व गीता के इन सिद्धांतों को अपनाए, तो न केवल वह सशक्त होगा, बल्कि समाज और राष्ट्र का समग्र विकास भी सुनिश्चित किया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामसुखदास, स्वामी; “श्रीमद्भगवद्गीता साधक संजीवनी”; गीताप्रेस, गोरखपुर
2. गोयंदका, जयदयाल; “श्रीमद्भगवद्गीता तत्वविवेचनी”; गीताप्रेस, गोरखपुर
3. प्रभुपाद, ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी (2004); “भगवद्गीता यथारूप”; भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुंबई
4. राधाकृष्णन, एस. (2010); “भगवद्गीता (अनुवाद व व्याख्या)”; हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स इंडिया, नई दिल्ली
5. श्रीकृष्णानन्द, स्वामी (2012); “भगवद्गीता का दार्शनिक विवेचन”; दिव्य जीवन सोसाइटी, ऋषिकेश
6. श्री अरविन्द (2020); “गीता पर निबंध” (अनुवाद: अरविन्द आश्रम); श्री अरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग, पांडिचेरी



7. आचार्य, श्रीराम शर्मा (2005); "गीता का तत्वज्ञान और मानव जीवन"; गायत्री तपोभूमि प्रकाशन, हरिद्वार
8. पंड्या, डॉ. प्रणब (2010); "गीता और आधुनिक जीवन"; गायत्री तपोभूमि प्रकाशन, हरिद्वार
9. मिश्र, रामचंद्र (2017); "गीता और मानव मूल्य शिक्षा"; शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली
10. चिन्मयानन्द, स्वामी (2008); "गीता का तात्त्विक संदेश"; चिन्मय मिशन ट्रस्ट, मुंबई
11. शर्मा, रामस्वरूप (2002); "गीता का कर्मयोग दर्शन"; भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी
12. अग्रवाल, शंकरदयाल (2008); "गीता और आधुनिक जीवन"; भारतीय विद्या भवन, दिल्ली
13. पाठ्य सामग्री - "एम. ए. भगवद् गीता अध्ययन"; इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
14. पाठ्य सामग्री - "एम. ए. हिंदू अध्ययन"; इंदिरा गांधी



भगवद्गीता में भारतीय मनोविज्ञान: मन, चित्त और चेतना का विवेचनात्मक अध्ययन

सोनू रानी

योग प्रशिक्षक

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।

दलीप कुमार

योग प्रशिक्षक

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।

राहुल सिंह चौहान

योग प्रशिक्षक

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।

शोध-सार

भारतीय मनोविज्ञान मानव मन को केवल व्यवहार, भावना अथवा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं मानता, बल्कि उसे चेतना-आधारित समग्र दृष्टिकोण से समझता है। इस परंपरा में मनुष्य को शरीर, मन, चित्त और चेतना की एक अविभाज्य इकाई के रूप में देखा गया है, जिसका अंतिम लक्ष्य आत्मबोध और मानसिक संतुलन है। भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक ऐसा अद्वितीय ग्रंथ है, जो अर्जुन के मानसिक विषाद और द्वंद्व के माध्यम से मानव मन की जटिलताओं का सूक्ष्म एवं व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को प्रोत्साहित करते हुए जिन सम्बोधन के शब्दों का प्रयोग किया गया है (Manglik, 2024) वे आधुनिक मनोविज्ञान के मनोवैज्ञानिक परामर्श (Psychological Counselling) से सीधे संबंधित हैं जैसे- हे पुरुषश्रेष्ठ, हे महाबाहो, हे निष्पाप, हे कुरुश्रेष्ठ, हे परंतप, हे जितेंद्रिय, हे भरतश्रेष्ठ, हे धनंजय, हे नरश्रेष्ठ, हे तपस्वी आदि। इस शोध-पत्र का उद्देश्य भगवद्गीता



में निहित भारतीय मनोविज्ञान की प्रमुख अवधारणाओं-मन, चित और चेतना-का गहन अध्ययन करना है(Patel, 2016)।

भगवद्गीता में मन को विचार, और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का केंद्र बताया गया है। मन की चंचलता और अस्थिरता को स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण उसे नियंत्रित करने के लिए अभ्यास और वैराग्य जैसे मनोवैज्ञानिक उपाय प्रस्तुत करते हैं(SRIVASTAVA & SHARMA, 2025a)। चित भारतीय मनोविज्ञान में अवचेतन स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ कर्मों और अनुभवों से उत्पन्न संस्कार संचित रहते हैं। ये संस्कार व्यक्ति के स्वभाव, आदतों और मानसिक प्रवृत्तियों को आकार देते हैं। भगवद्गीता निष्काम कर्म, भक्ति और योग के माध्यम से चित-शुद्धि पर विशेष बल देती है, जिससे मानसिक स्थिरता और विवेक शक्ति का विकास होता है।(Pestonjee & Pandey, 2017)

चेतना भगवद्गीता में आत्मतत्त्व के रूप में वर्णित है, जो मन और चित से परे नित्य, अजन्मा और अविनाशी है। चेतना का बोध व्यक्ति को भय, शोक और मोह से मुक्त करता है तथा साक्षी-भाव की अनुभूति कराता है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य का सर्वोच्च स्तर वही है, जहाँ व्यक्ति स्व में स्थित होकर जीवन की परिस्थितियों का सामना करता है(Selye, 2017)। इस प्रकार भगवद्गीता मन, चित और चेतना के समन्वय द्वारा एक समग्र मनोवैज्ञानिक ढांचा प्रस्तुत करती है।

आज के समय में, जब तनाव, अवसाद और मानसिक असंतुलन की समस्याएँ तीव्र हो रही हैं, भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य के साथ, मानव के समग्र विकास हेतु अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। यह अध्ययन आधुनिक मनोविज्ञान को चेतना-आधारित एक समग्र और मानवीय दृष्टि प्रदान करने में भी सहायक हो सकता है।

मुख्य शब्द- भगवद्गीता, भारतीय मनोविज्ञान, मन-चित-चेतना, आत्मबोध, मानसिक संतुलन, योग-दर्शन

भूमिका- मानव जीवन का मूल आधार मन है। मन के माध्यम से ही मनुष्य विचार करता है, निर्णय लेता है तथा अपने व्यवहार और कर्मों का निर्धारण करता है। आधुनिक युग में तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों के कारण मानव जीवन में तनाव, चिंता, अवसाद और मानसिक असंतुलन की समस्याएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। सामान्यतः मनोविज्ञान इन समस्याओं का अध्ययन मुख्यतः व्यावहारिक



और संज्ञानात्मक स्तर पर करता है, किंतु वह प्रायः चेतना और आत्मतत्त्व जैसे गहन आयामों को अपने अध्ययन से बाहर रखता है। जिसके परिणामस्वरूप मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं का समाधान प्रायः अधूरा रह जाता है। इसके विपरीत, भारतीय मनोविज्ञान मानव मन को केवल मानसिक प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं मानता, बल्कि उसे चेतना-आधारित समग्र दृष्टिकोण से समझता है। भारतीय दर्शन में मनुष्य को शरीर, मन, चित्त और चेतना की एक अविभाज्य इकाई के रूप में देखा गया है, जहाँ मनोविकास का अंतिम लक्ष्य आत्मबोध और मानसिक संतुलन की प्राप्ति है। इस संदर्भ में भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा का एक ऐसा अद्वितीय ग्रंथ है, जो दार्शनिक होने के साथ-साथ एक गहन मनोवैज्ञानिक ग्रंथ भी है (Pattanaik, 2015)।

भगवद्गीता का प्रारंभ अर्जुन के विषाद से होता है, जो मानव मन की द्वंद्वात्मक स्थिति, नैतिक संकट और भावनात्मक असंतुलन का प्रतीक है। श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया उपदेश न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करता है, बल्कि मानव मन की संरचना, उसकी चंचलता तथा उसके नियंत्रण के उपायों का भी स्पष्ट विवेचन करता है। गीता में मन, चित्त और चेतना की अवधारणाएँ भारतीय मनोविज्ञान की आधारशिला हैं, जिनके माध्यम से मानव व्यक्तित्व के बाह्य, आंतरिक और आत्मिक स्तरों का विश्लेषण किया गया है (Tomar, 2014)। मन को गीता में संकल्प-विकल्प और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का केंद्र माना गया है, जबकि चित्त को संस्कारों और अनुभवों का भंडार बताया गया है। चेतना इन दोनों से परे आत्मतत्त्व है, जो साक्षी रूप में स्थित रहती है। इन तीनों के समन्वय द्वारा गीता एक ऐसा समग्र मनोवैज्ञानिक मॉडल प्रस्तुत करती है, जो न केवल मानसिक समस्याओं के समाधान की दिशा दिखाता है, बल्कि मानव जीवन को संतुलित, नैतिक और सार्थक बनाने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान की अवधारणाओं-मन, चित्त और चेतना-का विश्लेषण करना तथा उनकी समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. भगवद्गीता में वर्णित भारतीय मनोविज्ञान की (Jenning & Dass, 2023a) अवधारणा का अध्ययन करना।
2. गीता में मन (Mind), चित्त (Chitta) और चेतना (Consciousness) की संकल्पना का विश्लेषण करना।



3. मन, चित्त और चेतना के पारस्परिक संबंध तथा मानव व्यवहार पर उनके प्रभाव को स्पष्ट करना।
4. अर्जुन के विषाद के संदर्भ में गीता के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझना।
5. गीता में वर्णित मन-नियंत्रण एवं मानसिक संतुलन के उपायों का विवेचन करना।
6. समकालीन जीवन में मानसिक तनाव, चिंता एवं भावनात्मक असंतुलन के समाधान हेतु गीता के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की प्रासंगिकता को रेखांकित करना।
7. मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास में चेतना की भूमिका को स्पष्ट करना।

भारतीय मनोविज्ञान: एक संक्षिप्त परिचय

भारतीय मनोविज्ञान मानव मन, चेतना और व्यवहार के अध्ययन की एक प्राचीन, गहन एवं समग्र परंपरा है, जिसकी जड़ें वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता, योगदर्शन तथा सांख्य दर्शन में निहित हैं। यह मनोविज्ञान केवल मानसिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक एवं व्यवहारिक पक्षों को भी समाहित करता है। भारतीय दृष्टिकोण में मन को केवल जैविक या संज्ञानात्मक क्रिया नहीं माना गया, बल्कि उसे चेतना के विकास का एक साधन समझा गया है (Vidyalankar, 1990)।

पाश्चात्य मनोविज्ञान जहाँ मुख्यतः व्यवहार, मस्तिष्क एवं मानसिक रोगों के अध्ययन पर केंद्रित रहा है (Sharma, 2009), वहीं भारतीय मनोविज्ञान आत्मा (आत्मनः), मन (मनसः), बुद्धि, अहंकार और चित्त जैसे सूक्ष्म तत्त्वों के माध्यम से मानव व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। इसका प्रमुख उद्देश्य केवल मानसिक समस्याओं का समाधान नहीं, बल्कि मनुष्य को आत्मबोध, मानसिक संतुलन और मोक्ष की दिशा में अग्रसर करना है।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन चंचल, अस्थिर और विषयों की ओर आकर्षित होने वाला तत्त्व है, जबकि चित्त स्मृति, संस्कार और अनुभवों का भंडार है। चेतना को सर्वोच्च तत्त्व माना गया है, जो मन और चित्त का साक्षी स्वरूप है। योग, ध्यान, आत्मसंयम और विवेक के माध्यम से मन को शुद्ध कर चेतना के उच्च स्तर तक पहुँचना ही भारतीय मनोविज्ञान का मूल लक्ष्य है।

इस परंपरा में दुःख, तनाव, भय और मोह को अज्ञान और असंयमित मन का परिणाम माना गया है। अतः मानसिक स्वास्थ्य का उपाय बाह्य साधनों के बजाय आंतरिक अनुशासन, आत्मचिंतन और साधना में निहित है।



इसी कारण भारतीय मनोविज्ञान आज के तनावग्रस्त और भौतिकतावादी समाज में भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

भगवद्गीता भारतीय मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें मानव मन की द्वंद्वात्मक स्थिति, चेतना की उन्नति और चित्त-शुद्धि के उपायों का व्यावहारिक एवं दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान न केवल एक शास्त्रीय अवधारणा है, बल्कि मानव जीवन को संतुलित, सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनाने की एक वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि भी है (SRIVASTAVA & SHARMA, 2025b)।

भगवद्गीता में मन की अवधारणा -

भगवद्गीता में मन को मानव जीवन की केन्द्रीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। गीता के अनुसार मन न तो पूर्णतः शत्रु है और न ही स्वभावतः मित्र, अपितु वह साधना और अनुशासन के आधार पर मनुष्य का मित्र या शत्रु बन जाता है। मन की यही द्वैतात्मक प्रकृति भारतीय मनोविज्ञान का मूल आधार है (डॉ. सुरेन्द्र पाल सिंह, 2025)।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए स्पष्ट करते हैं कि मन कि प्रवृत्ति अत्यंत चंचल और अस्थिर है जिसको नियंत्रित करना कठिन है। अर्जुन स्वयं स्वीकार करता है- “चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्” (गीता 6.34) अर्थात् मन चंचल, प्रमथनशील और अत्यंत बलवान है। यह कथन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की अस्थिरता और विचलन की प्रवृत्ति को रेखांकित करता है।

गीता में मन को इन्द्रियों से भी अधिक शक्तिशाली बताया गया है, क्योंकि इन्द्रियाँ मन के माध्यम से ही विषयों की ओर प्रवृत्त होती हैं। जब मन विषयासक्ति में लिप्त हो जाता है, तब वह बंधन का कारण बनता है; किंतु जब वही मन संयमित, स्थिर और आत्मा में स्थित हो जाता है, तब वह मुक्ति का साधन बन जाता है। गीता के अनुसार-

“उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्” (गीता 6.5)

मनुष्य स्वयं अपने मन के द्वारा अपना उद्धार या पतन कर सकता है (Jenning & Dass, 2023a)।

भगवद्गीता में मन के नियंत्रण हेतु अभ्यास और वैराग्य को प्रमुख साधन बताया गया है। निरंतर अभ्यास से मन को एकाग्र किया जा सकता है तथा वैराग्य के माध्यम से विषयासक्ति को क्षीण किया



जा सकता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान की आत्म-नियमन (self-regulation) की अवधारणा से भी साम्य रखता है।

इसके साथ ही भगवद्गीता में मन को तीन गुणों-सत्त्व, रजस और तमस-से प्रभावित माना गया है। सत्त्वगुणी मन शुद्ध, स्थिर और ज्ञानोन्मुख होता है, रजोगुणी मन चंचल, कामनाओं से युक्त होता है जबकि तमोगुणी मन जड़ता, प्रमाद और अज्ञान से आच्छादित रहता है। इस प्रकार मन की अवस्था व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय और मानसिक स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

भगवद्गीता में मन की अवधारणा केवल दार्शनिक न होकर गहन मनोवैज्ञानिक महत्व रखती है। मन का संयम, शुद्धि और स्थिरीकरण मानव जीवन को संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और आत्मोन्मुख बनाने का सशक्त माध्यम है।

चेतना: आत्मतत्त्व का बोध-

भारतीय दर्शन एवं मनोविज्ञान में *चेतना* को मानव अस्तित्व का मूल तत्त्व माना गया है। चेतना न केवल ज्ञान की आधारभूमि है, बल्कि वही आत्मतत्त्व का साक्षात्कार भी कराती है। भगवद्गीता में चेतना को शुद्ध, नित्य, अविनाशी और शरीर-मन से भिन्न सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह चेतना ही जीव को जड़ पदार्थ से भिन्न बनाती है।

भगवद्गीता के अनुसार आत्मा चेतन, अजर, अमर और अविकार्य है- “न जायते म्रियते वा कदाचित्...” (गीता 2.20) अर्थात् आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी नष्ट होती है। यह श्लोक चेतना के शाश्वत स्वरूप को स्पष्ट करता है (Jenning & Dass, 2023a)। आत्मा ही चेतना का मूल स्रोत है, जबकि मन, बुद्धि और चित्त इसके उपकरण (instruments) के रूप में कार्य करते हैं।

गीता में चेतना को *साक्षी भाव* से जोड़ा गया है। चेतना स्वयं कर्ता नहीं है, बल्कि वह मन, इन्द्रियों और कर्मों की साक्षी रहती है। जब व्यक्ति स्वयं को मन और इन्द्रियों से पृथक कर आत्मा रूप में अनुभव करता है, तभी उसे आत्मतत्त्व का बोध होता है। श्रीकृष्ण कहते हैं- “क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत” (गीता 13.2) अर्थात् प्रत्येक शरीर में स्थित चेतन तत्त्व ही आत्मा है।



भारतीय मनोविज्ञान में चेतना को *अवस्थाओं* के माध्यम से समझा गया है-जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन होते हुए भी चेतना सदा विद्यमान रहती है। यही चेतना अनुभवों की निरंतरता बनाए रखती है। भगवद्गीता इस निरंतर चेतना को आत्मज्ञान का आधार मानती है। चेतना की शुद्ध अवस्था को *स्थितप्रज्ञ* की अवस्था कहा गया है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुख-दुःख, लाभ-हानि और मान-अपमान में समभाव बनाए रखता है। यही समत्व चेतना की परिपक्वता का प्रतीक है-
“दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः” (गीता 2.56)(Jenning & Dass, 2023b)

आधुनिक मनोविज्ञान में चेतना (*consciousness*) को प्रायः संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं तक सीमित रखा जाता है, जबकि भारतीय दृष्टि में चेतना आध्यात्मिक विकास का साधन भी है। गीता की चेतना-संबंधी अवधारणा व्यक्ति को आत्म-बोध, नैतिकता और मानसिक संतुलन की ओर अग्रसर करती है। भगवद्गीता में चेतना आत्मतत्त्व का बोध कराने वाली केन्द्रीय शक्ति है, जो मनुष्य को अज्ञान से ज्ञान और बंधन से मुक्ति की ओर ले जाती है।

चित्तः संस्कार और स्मृति का आधार-

भारतीय मनोविज्ञान में *चित्त* को मनःसंरचना का अत्यंत सूक्ष्म और गहन स्तर माना गया है। भगवद्गीता में यद्यपि ‘चित्त’ शब्द का प्रयोग सीमित रूप में मिलता है, तथापि योग एवं सांख्य दर्शन के संदर्भ में चित्त का तात्पर्य मन, बुद्धि और अहंकार के संयुक्त क्षेत्र से है, जिसमें संस्कार, वासनाएँ और स्मृतियाँ संचित रहती हैं। चित्त मानव व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसे अनुभवों का भंडार भी कहा जा सकता है। प्रत्येक कर्म, विचार और भावना का प्रभाव चित्त पर संस्कार के रूप में अंकित हो जाता है। यही संस्कार आगे चलकर मनुष्य की प्रवृत्ति, रुचि और व्यवहार का निर्धारण करते हैं। भगवद्गीता कर्म और संस्कार के इस संबंध को स्पष्ट करती है-
“सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि” (गीता 3.33) अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति भी अपने स्वभाव (संस्कार) के अनुसार ही आचरण करता है।

गीता में चित्त की शुद्धि को आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनिवार्य माना गया है। अशुद्ध चित्त कामना, आसक्ति और मोह से युक्त रहता है, जिससे व्यक्ति बंधन में पड़ता है(Dhar, n.d.)। इसके विपरीत शुद्ध चित्त ज्ञान और विवेक की प्राप्ति में सहायक होता है। कर्मयोग के माध्यम से निष्काम कर्म करते



हुए चित्त की शुद्धि संभव बताई गई है “योगः कर्मसु कौशलम्” (गीता 2.50) चित्त का संबंध स्मृति से भी घनिष्ठ है। स्मृति के माध्यम से पूर्व अनुभव वर्तमान में सक्रिय होते हैं और निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। यदि चित्त में नकारात्मक संस्कार प्रबल हों, तो व्यक्ति बार-बार मानसिक अशांति, भय और द्वंद्व का अनुभव करता है। इसलिए गीता में अभ्यास, ध्यान और वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध पर बल दिया गया है। योगदर्शन के अनुसार “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः” चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है (निधि et al., 2025)। भगवद्गीता भी इसी सिद्धांत को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ चित्त को संस्कारों का आधार, स्मृति का केंद्र और आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र माना गया है। चित्त की शुद्धि एवं नियंत्रण के बिना न तो मानसिक संतुलन संभव है और न ही आत्मबोध की प्राप्ति। भगवद्गीता में वर्णित ध्यानयोग के माध्यम से चित्त को एकाग्र कर चेतना को आत्मतत्त्व में स्थित किया जा सकता है।

मन-चित्त-चेतना का पारस्परिक संबंध-

भारतीय मनोविज्ञान में मन, चित्त और चेतना को अलग-अलग न मानकर एक समन्वित संरचना के रूप में देखा गया है। भगवद्गीता में इन तीनों तत्त्वों का संबंध मानव व्यक्तित्व, व्यवहार और आध्यात्मिक विकास से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। मन, विचार और संकल्प-विकल्प का क्षेत्र है, चित्त अनुभवों और संस्कारों का भंडार है, जबकि चेतना आत्मतत्त्व का प्रकाश है, जो मन और चित्त को अर्थ प्रदान करती है।

मन इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत से संपर्क स्थापित करता है। जब मन विषयों की ओर प्रवृत्त होता है, तब उनके प्रभाव चित्त में संस्कार के रूप में संचित हो जाते हैं। यही संस्कार पुनः मन को प्रभावित कर उसे उसी प्रकार की वृत्तियों की ओर प्रेरित करते हैं। इस प्रकार मन और चित्त के बीच निरंतर परस्पर क्रिया होती रहती है। यदि चित्त में रजस और तमस प्रधान संस्कार हों, तो मन चंचल और अशांत रहता है (Sinha, 2012)। चेतना इन दोनों से भिन्न होते हुए भी उनके माध्यम से ही अपने अनुभव व्यक्त करती है। चेतना स्वयं निर्विकार और साक्षी स्वरूप है, किंतु जब वह मन और चित्त से तादात्म्य स्थापित कर लेती है, तब व्यक्ति स्वयं को कर्ता-भोक्ता मानने लगता है। यही अज्ञान की स्थिति है। भगवद्गीता इस तादात्म्य को दुःख का मूल कारण मानती है।

जब साधना, विवेक और ज्ञान के द्वारा मन को संयमित तथा चित्त को शुद्ध किया जाता है, तब चेतना अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित होती है। यह अवस्था *स्थितप्रज्ञ* कहलाती है। ऐसी स्थिति में मन



न तो विषयों में आसक्त होता है और न ही चित्त नए बंधनकारी संस्कार ग्रहण करता है। वह बुने हुए बीज के समान हो जाता है।

भगवद्गीता के अनुसार योग, ध्यान और निष्काम कर्म के अभ्यास से मन-चित्त की शुद्धि होती है और चेतना आत्मतत्त्व का बोध करती है। इस समन्वय से व्यक्ति मानसिक संतुलन, नैतिक दृढ़ता और आध्यात्मिक परिपक्वता प्राप्त करता है। मन, चित्त और चेतना का संतुलित एवं समन्वित कार्य ही भारतीय मनोविज्ञान की केन्द्रीय अवधारणा है, जिसे भगवद्गीता गहन दार्शनिक एवं व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है (Sinha, 2012)।

भगवद्गीता में भारतीय मनोविज्ञान की आधुनिक प्रासंगिकता-

आधुनिक युग में मानव जीवन तीव्र प्रतिस्पर्धा, तनाव, अनिश्चितता और भावनात्मक असंतुलन से ग्रस्त है। तकनीकी प्रगति के बावजूद मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ-जैसे तनाव, चिंता, अवसाद, निर्णयात्मक द्वंद्व और जीवन-अर्थ का संकट आदि तेजी से बढ़ रही हैं। ऐसे समय में भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

भगवद्गीता में वर्णित *मन* की अवधारणा आधुनिक मनोविज्ञान के आत्म-नियमन (Self-Regulation) एवं भावात्मक-संयम (Emotional Control) से मेल खाती है। यहाँ मन को अभ्यास और वैराग्य द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। साथ ही कार्यस्थलों पर तनाव प्रबंधन के लिए भी भगवद्गीता का कर्मयोग विशेष रूप से उपयोगी है। *चित्त* की अवधारणा आधुनिक मनोविज्ञान के अवचेतन मन (**subconscious mind**) से साम्यता रखती है। पूर्व संस्कार वर्तमान व्यवहार को प्रभावित करते हैं, यह सिद्धांत आधुनिक मनोचिकित्सा में व्यवहार-परिवर्तन (behaviour modification) और मनोविश्लेषण की आधारशिला है। सकारात्मक कर्मों और विचारों के द्वारा चित्त की शुद्धि की जा सकती है (Jenning & Dass, 2023a)।

यहाँ *चेतना* की अवधारणा भगवद्गीता को आधुनिक मनोविज्ञान से आगे ले जाती है। जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान चेतना को केवल संज्ञानात्मक प्रक्रिया मानता है, वहीं भगवद्गीता चेतना को आत्मतत्त्व से जोड़ती है। यह दृष्टि व्यक्ति को केवल मानसिक संतुलन ही नहीं, बल्कि जीवन के उच्च उद्देश्य की ओर भी प्रेरित करती है। आज के अस्तित्ववादी संकट (existential crisis) में यह दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी है। शिक्षा, नेतृत्व, प्रशासन और संगठनात्मक प्रबंधन के क्षेत्र में भी गीता की मनोवैज्ञानिक शिक्षाएँ



मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती हैं। निष्काम कर्म, समत्व बुद्धि और स्थितप्रज्ञ की अवधारणा मूल्य-आधारित नेतृत्व (value-based leadership) को प्रोत्साहित करती है। भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान आधुनिक मानसिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है तथा समग्र, संतुलित और सार्थक जीवन की दिशा में मानव को मार्गदर्शन प्रदान करता है।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध-अध्ययनके आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भगवद्गीता में प्रतिपादित भारतीय मनोविज्ञान मानव मन की संरचना, कार्यप्रणाली और आध्यात्मिक उन्नयन को समझने का एक समग्र एवं गहन दृष्टिकोण प्रदान करता है। गीता केवल एक धार्मिक अथवा दार्शनिक ग्रंथ न होकर मानव चेतना, मानसिक द्वंद्व और आंतरिक संघर्षों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। अर्जुन का विषाद मानवीय मानसिक संकट का प्रतीक है, जिसके समाधान के माध्यम से गीता भारतीय मनोविज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता को प्रतिपादित करती है। इस अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि भगवद्गीता में *मन*, *चित्त* और *चेतना* को पृथक इकाइयों के रूप में नहीं, बल्कि परस्पर संबद्ध और एक-दूसरे पर निर्भर तत्वों के रूप में देखा गया है। मन जहाँ विचार, भावनाओं और निर्णयों का केंद्र है, वहीं चित्त व्यक्ति के पूर्व अनुभवों, संस्कारों और स्मृतियों का आधार बनता है। चेतना इन दोनों से परे स्थित होकर साक्षी रूप में संपूर्ण मानसिक गतिविधियों को प्रकाश प्रदान करती है। जब मन और चित्त असंयमित होते हैं, तब चेतना का तादात्म्य उनसे स्थापित हो जाता है, जिससे दुःख, भय और मोह की स्थिति उत्पन्न होती है।

भगवद्गीता इस स्थिति से मुक्ति के लिए अभ्यास, वैराग्य, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, निष्काम कर्म और विवेक जैसे उपायों का प्रतिपादन करती है। ये साधन न केवल मन को स्थिर करते हैं, बल्कि चित्त को शुद्ध कर चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित करने में भी सहायक होते हैं। *स्थितप्रज्ञ* की अवस्था इसी आंतरिक संतुलन और चेतनात्मक परिपक्वता का प्रतीक है, जहाँ व्यक्ति जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव बनाए रखता है।

आधुनिक संदर्भ में, जब मानव, मानसिक तनाव, भावनात्मक असंतुलन और अस्तित्वगत संकट से जूझ रहा है, भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है। गीता की मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ आधुनिक मनोविज्ञान की आत्म-नियमन, माइंडफुलनेस, भावनात्मक बुद्धिमत्ता



और समग्र मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणाओं से सार्थक संवाद स्थापित करती हैं। शिक्षा, नेतृत्व, संगठनात्मक प्रबंधन और योग-चिकित्सा के क्षेत्र में इसके सिद्धांत व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि भगवद्गीता में प्रस्तुत भारतीय मनोविज्ञान मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की दिशा में एक सशक्त वैचारिक ढाँचा उपलब्ध कराता है। मन, चित और चेतना का समन्वय न केवल मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है, बल्कि व्यक्ति को आत्मबोध, नैतिकता और जीवन के उच्च उद्देश्य की ओर उन्मुख करता है। इस प्रकार भगवद्गीता का मनोवैज्ञानिक दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक, उपयोगी और प्रेरणादायक है जितना उसके रचनाकाल में था।

सन्दर्भ

1. Dhar, P. (n.d.). *Bondage and Liberation*.
2. Jennings, C. M., & Dass, B. H. (2023a). *Commentary on the Bhagavad Gita, Chapter 7.(bhagavadgītā: भगवद्गीता)*.
3. Jennings, C. M., & Dass, B. H. (2023b). *Commentary on the Bhagavad Gita, Chapter 7.(bhagavadgītā: भगवद्गीता)*.
4. Manglik, M. R. (2024). *मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ: Psychological Processes*. EduGorilla Publication.
5. Patel, R. M. (2016). श्रीमद् भगवद्गीता और योगतत्व समन्वयमीमांसा. *Vidhyayana-An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal-ISSN 2454-8596, 2(2)*.
6. Pattanaik, D. (2015). *Business sutra*. Manjul Publishing.
7. Pestonjee, D., & Pandey, S. (2017). *Tanaav evam Karya: Tanaav ko Samajhne evam Prabandhan Sambandhi Drishtikon*. SAGE Publishing India.
8. Selye, H. (2017). आध्यात्मिक दृष्टिकोण. *Tanaav Evam Karya: Tanaav Ko Samajhne Evam Prabandhan Sambandhi Drishtikon, 267*.
9. Sharma, C. (2009). *Pashchatya Darshan Uttar-Pradesh-Rajya Dwara Puraskrit*. Motilal Banarsidass Publishe.
10. Sinha, H. P. (2012). *Bharatiya Darshan Ki Rooprekha*. Motilal Banarsidass.
11. SRIVASTAVA, D. V., & SHARMA, D. B. (2025a). *CHARITRA NIRMAN EVAM VYAKTITVA VIKAS*. SHREE VINAYAK PUBLICATION.



12. SRIVASTAVA, D. V., & SHARMA, D. B. (2025b). *CHARITRA NIRMAN EVAM VYAKTITVA VIKAS*. SHREE VINAYAK PUBLICATION.
13. Tomar, L. R. (2014). *Bhartiya Shiksha ke Mool Tatva*. Suruchi Prakashan.
14. Vidyalankar, J. (1990). *Bhāratīya manovijñāna*. Rādḥā Pablikeśansa.
15. डॉ. सुरेन्द्र पाल सिंह. (2025). भारतीय ज्ञान परंपरा में बुद्धि की अवधारणा: अर्थ, प्रकार, मापन-उपाय और जीवनोपयोगिता. *International Journal of Emerging Voices in Education*, 1(2), 09-16.
16. निधि, प्रांशु कुमार मौर्य, & अमित कुमार. (2025). समग्र स्वास्थ्य संवर्धन के परिपेक्ष्य में पतंजलि योग सूत्र की व्यवहारिक जीवन में भूमिका. *International Journal of Advances in Social Sciences*, 13(3), 163-169.



मानवीय संवेदनाओं से जनित कर्तव्याकर्तव्य का अन्तर्द्वंद्व एवं श्रीमद्भगवद्गीता

डॉ० विश्वजीत कुमार 'विद्यालंकार'

सहायक प्राध्यापक सह विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग, आर० डी० & डी० जे० कॉलेज
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर

शोध-सार

परमपिता परमेश्वर की नित्य एवं दृढ़तापूर्ण अनुशासन से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गतिशील है। सृष्टि उत्पत्ति से ही इस अलौकिक शक्ति से संसरीत संसार की नानाविध गतिविधियों को मनुष्यों द्वारा ईश्वरीय लीला या नियति की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य जन्म से पूर्व गर्भावस्था में ही संवेदनाओं से युक्त हो जाता है, जिसकी अनुभूति से आनन्दित होने का सौभाग्य उसकी गर्भिणी माँ को प्रायः पाँचवें माह से प्राप्त होने लगता है। जन्म से ही शिशु सांसारिक जीवन की प्रायः सभी संवेदनशीलताओं यथा- सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, मोह-माया, भूख-प्यास, काम-क्रोध, लाभ-हानि, प्रेम-घृणा, भय-निर्भीकता आदि को भलीभाँति अनुभूत करता है। जैसे-जैसे उसका विकास होते जाता है, वह लोकानुकूल वातावरण के साथ अपनी संवेदनाओं का सामंजस्य स्थापित करने लगता है। इस स्थिति में जिसे कुशलता प्राप्त हो गई उसे ही लोक में मानसिक रूप से सशक्त कहा जाता है। जो लोकानुकूल कर्तव्यों के अनुरूप अपनी संवेदनाओं को स्थापित करने में सशक्त हो जाता है, विवेकपूर्वक निर्णय लेने की स्थिति में नहीं रहता अथवा हमेशा कर्तव्याकर्तव्य के द्वन्द्व के भँवर में उलझ जाता है। ऐसा प्रत्येक मानव चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, शिशु हो या किशोर, युवा हो या वृद्ध; ये सभी के सभी आज के समय में अपने जीवनरूपी कुरुक्षेत्र के मोहग्रस्त अर्जुन हैं। ऐसे मनुष्यों के संवेदना जनित कर्तव्याकर्तव्य के अंतर्द्वंद्व के निदान के नानाविध मार्ग भारतीय संस्कृति में अथवा अन्य संस्कृतियों के ज्ञानकोश में विद्यमान हैं, किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता इसके लिए ब्रह्मास्त्र सदृश है। इसमें योगीराज श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को प्रदत्त उपदेश समस्त संसार के मनुष्यों को कर्म के वास्तविक स्वरूप की तत्त्विक विवेचना प्रस्तुत करता है। गीता के तृतीय अध्याय के परिपेक्ष्य में मानवीय संवेदनाओं की समीक्षा करते हुए जीवन के विविध परिस्थितियों में कर्म करने के विवेकविवेक का निर्णय करने का प्रयास किया जाएगा। जिसमें प्रमुखता से कर्मयोग, कर्म सिद्धान्त, स्वधर्म, इन्द्रिय निग्रह, पारिवारिक-सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्तरदायित्व पर समीक्षा की जाएगी।

मुख्य शब्द- संवेदना, कर्तव्याकर्तव्य, अन्तर्द्वन्द्व, कर्मयोग, विरक्त, भक्ति, समत्व, नित्यता, अमरता, शाश्वत, मोह



मनुष्य मननशील प्राणी होता है एवं उसकी संवेदना नैसर्गिक होती है। मानवीय संवेदनाओं का सीधा सम्बन्ध उसकी भावनाओं से जुड़ा रहता है। समस्त सांसारिक भावनाओं का विनिर्माण इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष वा अनुभूत विषयों के कारण होता है। मनुष्य के प्रत्येक कर्म करने में उसकी भावनाएँ निहित रहती हैं। कर्म करने में अपेक्षित क्रियाशीलता, उत्साह, नैरन्तर्य, पुरुषार्थ आदि के निर्धारण में मानवीय संवेदनाओं का सीधा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि एक कुशल चित्रकार अपनी व्यक्तिगत दुःख की वेला में अपनी उस चित्रकला को भूल जाता है जो उसकी उंगलियों से उकेरी जाती है। एक संगीतज्ञ धनहानि जैसे दुःख के कारण अपनी राग अलाप नहीं पाता; जबकि धनहानि का उसके गले से कोई सम्बन्ध नहीं है। पारिवारिक जनों के साथ वैमनस्य के कारण उत्पन्न संघर्ष से जनित पीड़ा के कारण एक अध्यापक, कर्मचारी, व्यापारी अपने अध्यवसाय में त्रुटियाँ करने लगता है। जबकि चित्रकार, संगीतकार, अध्यापक, कर्मचारी वा व्यापारी के कार्यों को सम्पन्न करने हेतु उनका कौशल उनके पास ही रहता है, लेकिन वे अपने कार्य में उचित परिणाम नहीं दे पाते हैं। शकुन्तला सशरीर एवं समस्त इन्द्रियों सहित पूर्णतः स्वस्थ एवं सकुशल थी, लेकिन दुष्पन्त के वियोग के कारण महर्षि दुर्वासा के अनुनय भरे वचनों का श्रवण नहीं कर सकी और शापग्रस्त होकर असहनीय पीड़ा की भुक्तभोगी बनकर राजमहल के वैभव से दूर प्रतिपल प्रेमालाप के क्षणों को कोसती रही।¹

मानवीय संवेदना का अर्थ है - मनुष्य के भीतर उत्पन्न होने वाली भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ, जो दूसरों के सुख-दुःख से जुड़ी होती हैं। करुणा, सहानुभूति, दया, प्रेम, त्याग और सहिष्णुता जैसे गुण मानवीय संवेदना के सकारात्मक रूप हैं। भारतीय संस्कृति में संवेदनशीलता को मानवता का मूल गुण माना गया है। उपनिषदों और अन्य दार्शनिक ग्रंथों में भी यह विचार मिलता है कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके संवेदनात्मक और नैतिक गुणों में निहित है।

किन्तु कभी-कभी यही संवेदनाएँ मोह, आसक्ति और अज्ञान के कारण व्यक्ति को कर्तव्य से विमुख कर देती हैं। इस स्थिति में व्यक्ति सही निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है। गीता में अर्जुन की स्थिति इसी प्रकार की मानसिक और भावनात्मक दुविधा का प्रतिनिधित्व करती है।

वस्तुतः मानवीय संवेदनाएँ उसके प्रत्येक कर्म को प्रभावित करती हैं। इसके प्रभाव से रहित होकर कार्य करना एक सामान्य मनुष्य के लिए तो सर्वथा ही असम्भव है। एक शिशु जैसे-जैसे वृद्धि को प्राप्त करता है वह अपनी माँ के स्पर्श एवं उसके भावनात्मक गतिविधियों को उसके चेहरे को देखकर ही समझने लगता है। माँ के खिन्न होने पर उसका रोना एवं माँ के प्रसन्न होने पर उसका हँसना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। क्रमशः परिवार के अन्य सदस्यों की भावनाओं को समझकर ही शिशु अपनी गतिविधियाँ करता है। इसीलिए मनोवैज्ञानिक शिशु के लालन-पालन में; उसके परिजनों के दैनिकचर्या एवं उनकी अहर्निश की शारीरिक एवं मानसिक समस्त गतिविधियों में नकारात्मकता का सदैव निषेध करते हैं, ताकि उससे उनके बच्चे पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। शैशावस्था से लेकर मरणासन्न होने तक व्यक्ति के अन्तःकरण में उपजी भावनाओं से प्रभावित हुए बिना उसका कोई भी कर्म सम्पन्न नहीं हो पाता है। इसीलिए किसी विद्यार्थी को परीक्षा के दौरान घर में घटित किसी भी छोटी या बड़ी समस्याओं से सदैव दूर रखा जाता है, ताकि अन्यमनस्क होने से उसके अध्ययन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। ऐसे ही सेना के जवानों को युद्ध के समय उसके पारिवारिक वा सामाजिक परिस्थितियाँ छुपा ली जाती हैं ताकि इसे राष्ट्ररक्षा के कर्तव्याकर्तव्य में शिथिलता वा व्यवधान न उत्पन्न होवें। मैच में प्रतिभाग करते खिलाड़ी या मार्ग पर ड्राइव करते चालक के एकाग्रता के लिए आवश्यक होता है कि उसकी परिधि में होने वाले अनावश्यक कोलाहल वा सामने वाले की ओर से उत्पन्न व्यवधान-रूपी भावनाओं से प्रभावित नहीं होना होता है; अन्यथा वे अपने लक्ष्य से पहले ही भटक जाएँगे अथवा दुर्घटनाग्रस्त होकर असफलता के भागी बनेंगे। जन्म लेने के बाद से ही इन्द्रियों से अनुभूत

¹ विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधने वेत्ति न मामुपस्थितम्।

स्मरिष्यति त्वां न स चोद्यितोऽपि सन्कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/1



प्रत्येक विषयों की स्मृतियाँ हमारे चित्त में सदैव संचित रहती हैं, जिसके कारण उससे सम्बन्धित भावों के स्पर्शमात्र से ही हमारी भावनाएँ बलवती होकर हमें हमारे कर्मों से भटकाने लगती हैं। भवनाओं के अधीन होकर मानव या तो स्वधर्म रुपी कर्तव्य से च्युत हो जाता है अथवा कर्म करना ही छोड़ देता है। दोनों ही स्थितियों में हमें सर्वथा सावधानी बरतनी चाहिए।

कृष्ण कहते हैं कि निःसंदेह; कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता क्योंकि मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।² किन्तु जब भी वह अपने कर्म को करता है तो उसके प्रति उसकी सवेदनशील चेष्टाएँ उसके मन में स्थित भावनाओं के अनुरूप ही सकारात्मकता वा नकारात्मकता की स्थिति को धारण करती है। इन्द्रियाँ सदैव अपने विषयों की ओर स्वतः ही क्रियाशील होती हैं, जिसका नियंत्रण मन के अधीन रहता है। मन का चञ्चल स्वभाव हमेशा ही सक्रियतापूर्वक विषयों के प्रति भागमभाग की स्थिति में रहती है, पुनश्च इसपर नियन्त्रण चित्त में अवस्थित वृत्तियों से ही किया जा सकता है।

युद्ध के लिए सज्ज होकर, सम्पूर्ण योजनाओं के साथ, कुरुक्षेत्र में उपस्थित अर्जुन का युद्ध से मोहभंग होना एक सामान्य-सी घटना नहीं थी। बाल्यकाल से युवावस्था तक कौरवों द्वारा बारम्बार अपमानित होना, तेरह वर्षों तक वनवास की वेदना भोगना, समर्थ होने पर भी याचक बनकर अपनी माता एवं पत्नी के साथ पाण्डवों का दुःखपूर्वक जीवनयापन करना तथा लाह-गृह की दुर्घटना एवं चीरहरण जैसी मर्यादाविहीन दुष्कर्मों से पीड़ित द्रौपदी के उलाहना भरे वचनों को बारम्बार सुनना के बाद श्रीकृष्ण जैसे नीतिज्ञ सखा के मार्गदर्शन में ही अन्ततः धर्मयुद्ध की योजना बनी थी। इसके नायक भी स्वयं अर्जुन ही थे, समस्त पाण्डवों एवं उनकी सेना की आशा एवं विजय के प्रतीक भी। इस तथ्य से अनभिज्ञ थे अर्जुन ऐसा भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने स्वयं ही कहा था कि हे केशव! युद्ध से पहले दोनों सेनाओं का निरीक्षण करना चाहता हूँ। लेकिन अचानक उनके चित्त में अवस्थित भीष्मपितामह का वात्सल्यमयी नेहरुपी भावनाएँ, कौरवों के प्रति भ्रातृत्व की भावना, परिजनों का अनुपम प्रेम की भावनाएँ, सैनिकों के मृत्यु के बाद उनके परिजनों के अनिश्चित भविष्य की काल्पनिक भावनाएँ जब अर्जुन के मनोमस्तिष्क में बलवती होने लगीं; तब युद्ध का नायक होकर भी उस क्षत्रिय को अपने स्वधर्म का पालन करना भी अनुचित लगने लगा।³ संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर एक निरीह मनुष्य बन गया, जिसे युद्ध के प्रति ऐसी अरुचि हो गयी कि उसे क्षात्र धर्म से उचित मृत्यु का वरण प्रतीत होने लगा था। जिस युद्ध की योजना का निर्माणकर्ता मुख्यतः अर्जुन ही था, उसे ही कुरुक्षेत्र का युद्ध व्यर्थ प्रतीत होने लगता है, यह सब अर्जुन की तत्कालीन भावनाओं से उपजा कर्तव्याकर्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व ही था।

उस समय वहाँ जब हस्तिनापुर के साम्राज्य की प्राप्ति के लिए संकल्पित धर्मयुद्ध की; मात्र कौरव और पाण्डवों की सेनाएँ ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष से ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित होकर मात्र रणभेरी की प्रतीक्षा कर रही थी, वहाँ परिजनों के मोहमाया से उपजी अनावश्यक भावनाओं के सागर में निमग्न अर्जुन को परिवार और कर्तव्य में से परिवार की अत्यधिक चिन्ता सताने लगी थी। वे कहते हैं कि हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न ही राज्य और सुखों की इच्छा करता हूँ, हे गोविंद! हमें ऐसे राज्य, सुख अथवा इस जीवन से भी क्या लाभ होगा? जिनके साथ हमें राज्य आदि सुखों को भोगने की इच्छा है, जब वह ही अपने जीवन के सभी सुखों को त्याग करके इस युद्ध भूमि में खड़े हैं।⁴

मानवीय चित्त में अवस्थित भावनाएँ अत्यन्त ही बलवती होती हैं, जिसके प्रभाव से बचना दुरूह कर्म है। इसके मायाजाल से घिरकर कर्म के प्रति सनद्ध व्यक्ति, कर्म की पूर्णता के अन्तिम क्षणों में भी, सबकी आशाओं के विपरीत अविश्वसनीय ढंग से अपने कर्तव्य

² न हि कश्चिद्विषयमपि जातु तिष्ठत्यकर्मवृत् । कार्यते द्यायशः कर्म सर्वः प्रकृतिनैर्गुणैः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.5

³ निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्या स्वजनमाहये श्रीमद्भगवद्गीता 1.31 ॥

⁴ न काङ्क्षे विजयं कृष्णा न च राज्ये सुखानि च । किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्ये भोगाः सुखानि च । त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 1.32-33



से च्युत हो जाता है। भावनाओं के सागर में डूबकर वह अपने विवेक को खो देता है। कर्मों के प्रति उसका लगाव समाप्त होकर उसे ऐसा निष्क्रिय बना देता है कि उसका शुभचिन्तक भी उसके प्रति कठोर होने को विवश हो जाता है। यथा कुरुक्षेत्र में अर्जुन की मोहग्रत स्थिति योगीराज कृष्ण को भी उद्वेलित कर देती हैं जब उन्हें यह कहने को विवश होना पड़ता है कि हे अर्जुन! तुममें यह नपुंसकता अनायास कहाँ से आ गयीं! ⁵ मानव जीवन में संवेदना का विशेष महत्त्व है। मनोवैज्ञानिक आधार पर मानव के मन एवं मस्तिष्क दोनों से संवेदना का चिर सम्बन्ध है। हम सभी कभी न कभी संवेदना के भावों से सराबोर अवश्य होते हैं जिसकी अनुभूति करने की सहजता सबमें रहती है। जब मानव मन स्वार्थ के भावों से भर जाता है तब उसे किसी के प्रति संवेदना का एहसास नहीं होता। स्वार्थ मानव मन को क्लेश, स्पर्धा व अहं भावों से परिपूर्ण कर देता है तब करुणा, दया व प्रेम के भावों के लिए स्थान ही नहीं रहता। जहाँ सद्भावना होगी वहाँ तालमेल स्वस्थ बनता और निभता चला जाता है। इसी कारण आनन्द में रहते हैं क्योंकि उनमें पारस्परिक प्रेम एवं सद्भाव से रहते हैं। सद्भाव के अभाव से पनपते स्वार्थ और दो प्रतिद्वंद्वी स्वार्थों के टकराव से वैमनस्य बनते हैं।

इस संसार में प्रत्येक मनुष्य के समक्ष नियमित रूप से कर्तव्याकर्तव्य के द्वन्द्व की स्थिति आती रहती हैं। बाल्यकाल में पढ़ाई करने हेतु क्रीडा करने पर रोकटोक करने पर, अतिथियों वा परिजनों के समक्ष उनको अनुशासित रहने वा रुग्णावस्था में उनके रुचिकर भोज्य पदार्थों के सेवन से बारम्बार निषेध करने पर बच्चों की भावनाएँ कर्तव्याकर्तव्य के भंवर में फंसकर उसके स्वभाव को उदण्ड बना देती है। उस बालमन के भावनात्मक अन्तर्द्वन्द्व को नियंत्रित करने में कुशल अभिभावक बच्चों को दृढ़ संकल्प वाला बनाते हैं, जबकि इसमें असफल अभिभावक बच्चों को जिद्दी वा भीरु वा अनुशासनहीन वा उत्तेजक बना देते हैं। तथैव युवक वा प्रौढ़ वा वृद्ध भी दैनिकचर्या में अनायास आगत कष्ट वा बाधाओं (यथा-नौकरीपेशा को प्रायोजित कर्म हेतु अवकाश न मिलना, किसी परीक्षा में वा व्यापार में असफल हो जाना वा यथेष्ट फल प्राप्त न होना, आश्रित जनों से अकारण आर्थिक सहयोग न मिलना आदि) के आते ही हम अपने नियमित नित्यकर्म स्नान, ध्यान, भोजन तक का त्याग कर अपनी समस्याओं के समक्ष समर्पण कर उसे और अधिक बलशाली बना देते हैं।

कई बार यह जानते हुए भी कि मेरे द्वारा किया जा रहा कार्य अनुचित एवं अनुपयोगी है; हम उसके प्रति विमुख तब तक नहीं हो पाते जब तक हमारा सर्वनाश नहीं हो जाता। इसके लिए ही श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मूढ़ बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोककर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है। ⁶ किन्तु जो मनुष्य अपनी भावनाओं के आवेग में स्वयं को स्थिर रखते हुए अपने कर्तव्यपथ से विचलित नहीं होता है, अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है। गीता में कृष्ण भी अर्जुन से कहते हैं कि, जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है। ⁷ किन्तु संसाधनों की कमी, परिजनों की उलाहना वा उपेक्षा, सहयोगियों का असहयोग, बारम्बार असफलता की स्थिति में हम स्वयं को भाग्यहीन वा अपना प्रारब्ध मानकर अपने कर्तव्य को छोड़ देते हैं और अपने मूल्यवान जीवन के सम्भावित सुखों को भी पश्चाताप की अग्नि में भस्म कर देते हैं। हम सभी यह जानते हैं कि यदि जीवित हैं तो कर्मशील रहना ही होगा पुनश्च अपने कर्तव्यों की तिलांजलि देकर अपार कष्ट के भुक्तभोगी बनते हैं। इसीलिए गीता में कहा गया है कि तू शास्त्रविहित कर्तव्य-कर्म कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा। ⁸ वैसे भी यदि इस संसार में यदि जीवित रहना है तो हमें कर्मशील रहना ही चाहिए ऐसा वेदों में भी कहा गया है। ⁹

⁵ कुतस्त्वा कामलमिदं विषमे समुपस्थितम् । अनार्यजुष्टमस्वर्ण्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.2 ॥

⁶ कर्मेन्द्रियाणि संयम्य व आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्यान्विमुद्रात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.6.8

⁷ यस्विन्द्रियाणि मनसा नियम्वारभतेऽर्जुन । कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.7

⁸ नियत कुरु कर्म व कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.8

⁹ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्सातं समाः ॥ यजुर्वेद 40.2 ॥



श्रीकृष्ण भी गीता में कहते हैं कि, हे पार्थ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार परम्परा से प्रचलित सृष्टिचक्र के अनुकूल कार्य नहीं करता अर्थात् अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करता, वह इन्द्रियों द्वारा भोगों में रमण करने वाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है।¹⁰ परन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही रमण करने वाला और आत्मा में ही सन्तुष्ट हो, उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है।¹¹ इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता।¹²

कृष्ण का मोहग्रस्त अर्जुन को तृतीय अध्याय में यही सन्देश है कि, लोकानुराग से जन्मी एवं चित्त में संचित भावनाओं से प्रभावित हुए बिना अपने स्वधर्म के प्रति सदैव सचेत एवं कृतसंकल्पित रहना चाहिए। इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म को भलीभाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। मिथिलापति विदेहराज जनक जैसे ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे, इसलिए हम सभी मनुष्यों को लोकसंग्रह एवं आस्था को देखते हुए सदैव कर्म करने के ही योग्य हैं अर्थात् सबको सभी परिस्थितियों में कर्म करना ही उचित रहना है, तभी जीवन में सुख एवं शान्ति की अवाप्ति सम्भव हो सकता है।¹³ श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसी के अनुसार व्यवहार करने लग जाता है।

उत्तर वैदिककाल में अथवा मुगलकाल में श्रीमद्भगवद्गीता को धर्मप्रधान प्रतीक के रूप में स्थापित कर, इसे हिन्दुत्व के पावन-ग्रन्थ का आडम्बर बनाकर इसके ज्ञानामृत पान से आमजनों को वञ्चित कर दिया गया था। धार्मिक आवरण एवं रीति-रिवाजों के बन्धन एवं कर्मकाण्डों की नैतिकता के कारण इसमें निहित मनोवैज्ञानिक ज्ञान-वैभव की पराकाष्ठा से संसार को जितना लाभ प्राप्त होना चाहिए था, उससे लोकसमाज वञ्चित रह गया था। तत्कालीन जो भी अवधारणा परिस्थितिबश उपजी, उससे इसके श्लोकों के प्रति स्वतन्त्र चिन्तन बौद्धिक-स्तर पर न होकर सिर्फ कर्मकाण्ड तक सिमित रह गया था।

श्रीमद्भगवद्गीता केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रंथ ही नहीं वरन् जीवन में भटके हुए लोगों को मार्ग दिखानेवाली पुस्तक है, एक मनस शास्त्र है। मनुष्य के मनोविज्ञान की व्याख्या गीता में मौजूद है। मनुष्य की उलझनों का समाधान गीता है। श्रीकृष्ण जब अर्जुन के संशय को दूर कर रहे हैं तो वह मात्र अर्जुन के सवाल ही नहीं हैं, बल्कि मानव मात्र के सवाल हैं। इसीलिए गीता हर वर्ग के इंसान के लिए है, गीता तनाव मुक्त करती है, मनोबल बढ़ा देती है। इसका ज्ञान तब हुआ जब कल-कारखानों से लेकर कंप्यूटर एवं सुचना प्रौद्योगिकी के युग आते-आते मनुष्यों का न केवल शारीरिक अपितु मानसिक एवं आत्मिक क्षमताओं में एक अजीबोगरीब अन्तर्द्वन्द्व का समावेश होता गया। वर्तमान युग में जीवनशैली भागदौड़ वाली हो गयी है, चाहे कोई नौकरीपेशा हो, सेवक हो, व्यापारी हो, गृहिणी हो, विद्यार्थी हो हो चिकित्सक हो, बेरोजगार हो। अगर मनुष्य को जीवित रहना है तो उसे कर्मशील रहना होता है। कर्म करेगा तो उसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया से अनेकानेक स्मृतियाँ जन्म लेती हैं। जीवन की स्मृतियाँ अक्सर हमें भावी परिकल्पनाओं एवं अतीत की घटनाओं से प्रभावित करती हैं, जिसका अनुकूल वा प्रतिकूल प्रभाव हमारे कार्यशैली पर पड़ता है। मानवीय संवेदनाओं के आधार पर ही काम-क्रोध-लोभ-मोह-वैमनस्य आदि भावनाएँ उपजती हैं, जो किसी के साथ व्यवहार के स्तर को निर्धारित करती है, यथा स्वप्नवासवदत्तम् में अवन्तिका एवं यौगंधरायण प्रद्यावती के आश्रम में

¹⁰ एवं प्रवर्तित चक्रं नानुवर्तवतीह यः। अधापुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.16

¹¹ परलात्मरतिरत्र स्वादात्मतुमध मानवः। आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.17

¹² मैव तस्य कृतेनार्थी नाकृतेनेह कञ्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ 3.18 ॥

¹³ तस्मादसत्ताः सततं कार्यं कर्म समाचर। असको ह्याचरन्कर्म परमाप्रीति पुरुषः ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥

पद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदेवतरी जनः। स यथप्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.19-21 ॥



प्रवेश पर उसके लिए निर्धारित राजसी शिष्टाचार से खिन्न होती हैं किन्तु उसका परिचय जानकर कहती हैं- **प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते**। इसी भांति युद्ध क लिए उद्धत अर्जुन सेनाओं के निरिक्षण करते समय अनायास ही अपनी अतीत की स्मृतियों की संवेदनाओं से उपजी मोह के कारण अपने कर्म के प्रति उदासीन होने लगता है।¹⁴ इतना ही नहीं, जो युद्ध का सेनापति है, जिसने वनवास की कठिनाईयों में कौरवों से धर्मयुद्ध की योजना तैयार की थी, वही अर्जुन अपनी अकर्मण्यता को सत्य सिद्ध करने हेतु न केवल तर्क प्रस्तुत कर रहा है अपितु स्वयं को कामनाओं से रहित मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करने का निरर्थक प्रयास कर रहा है, जैसा कि अन्तर्द्वन्द्व में उलझा हरेक व्यक्ति करता है।¹⁵

प्रत्येक मानव नैसर्गिक रूप से अपने जीवन में निर्णय लेने की क्षमता से युक्त है किन्तु उसकी संवेदनाएँ इतनी शक्तिशाली रहती हैं कि वह अपने स्वधर्म एवं उद्देश्य के महत्त्व के प्रति विवेकहीन हो जाता है। इतना ही नहीं, भावी परिणाम के सापेक्ष संवेदनाओं के भँवर में उलझ जाता है, तो उसे अपनी ही योजनाओं के प्रति संदेह होने लगता है।¹⁶ प्रत्येक कर्म के प्रति उत्पन्न संशय से किसी भी निर्णय को स्वीकार करना या अस्वीकार करना उसके लिए चुनौती बन जाती है, जैसे अर्जुन के लिए कुरुक्षेत्र में बन गयी थी। कर्म से प्राप्त कीर्ति या अकीर्ति के प्रति वह विरतभाव वाला बन जाता है, जिसके प्रति गीता में सजगता उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।¹⁷

मानव जीवन मूलतः संवेदनात्मक जीवन है। मनुष्य केवल बुद्धि और तर्क से संचालित प्राणी नहीं है, बल्कि उसकी चेतना में करुणा, प्रेम, दया, भय, मोह, क्रोध, शोक, आशा और निराशा जैसी अनेक भावनाएँ विद्यमान रहती हैं। इन्हीं भावनाओं के कारण मानव जीवन में संवेदनशीलता उत्पन्न होती है, जो उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाती है। किन्तु जब यही संवेदनाएँ असंतुलित हो जाती हैं, तब वे व्यक्ति को मानसिक द्वन्द्व, अस्थिरता और निर्णयहीनता की स्थिति में पहुँचा देती हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन को स्वजन के मोहपाश में बंधा देखकर उसे सबसे पहले आत्मा की शाश्वतता का ज्ञान देते हैं। वे बताते हैं कि आत्मा न जन्म लेती है और न ही मरती है। आत्मा की नित्यता का भान कराकर अर्जुन को मानवशरीर की अनित्यता एवं उसके प्रति अत्यधिक आसक्ति की अनावश्यक संभावनाओं का निषेध करते हैं। इस सिद्धान्त का उद्देश्य यह बताना है कि शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अमर और शाश्वत है। जब मनुष्य इस सत्य को समझ लेता है, तब वह मृत्यु या हानि के कारण अत्यधिक शोक नहीं करता।¹⁸ इस प्रकार गीता मानवीय संवेदना को समाप्त नहीं करती, बल्कि उसे ज्ञान के द्वारा परिष्कृत और संतुलित बनाती है।

¹⁴ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

गाण्डीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते । न च शक्रोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता २/२८-३० ॥

¹⁵ निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च । किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च । त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः । मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥२/३१-३५ ॥

¹⁶ अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति । नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४/४० ॥

¹⁷ अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् । सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः । येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥२/३४-३५ ॥

¹⁸ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २/२०

देहि नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२/३० ॥



गीता का एक प्रमुख सिद्धान्त **कर्मयोग** है। संवेदनाओं का व्यावहारिक संतुलन करने हेतु श्रीकृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, फल की चिंता करने में नहीं। जब व्यक्ति अपने कर्तव्य को निष्काम भाव से करता है, तब वह मानसिक तनाव और भावनात्मक असंतुलन से मुक्त रहता है। फल की चिंता व्यक्ति में भय, लोभ और निराशा उत्पन्न करती है, जबकि निष्काम कर्म मन को शांत और संतुलित बनाता है। इस प्रकार कर्मयोग मानवीय संवेदनाओं को नियंत्रित करने का व्यावहारिक मार्ग प्रदान करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में मानसिक संतुलन का आदर्श समत्वभाव को दिया गया है, जिसके अभ्यास से मानवीय संवेदनाओं को अपने नियन्त्रण में रखा जा सकता है। उसे ही समत्वभाव को योग की संज्ञा दी गई है- *समत्वं योग उच्यते*। समत्वभाव का अर्थ है जीवन की सभी परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखना। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि स्थितियों में समान दृष्टि रखना ही समत्वभाव है।¹⁹ यह सिद्धांत आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। आज के तनावपूर्ण जीवन में मानसिक संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। गीता का यह सिद्धांत व्यक्ति को भावनात्मक स्थिरता प्रदान करता है।

भक्ति और समर्पण का मार्ग को भी गीता में भक्ति को भी मानवीय संवेदना को शुद्ध करने का महत्वपूर्ण साधन बताया गया है। शोक से सन्तप्त एवं अपनी मोहमाया एवं अनायास आगत अविवेकी स्थिति में अर्जुन को श्रीकृष्ण कहते हैं - *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। अर्थात्* जब मनुष्य ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण भाव अपनाता है, तब उसके मन की चिन्ता और भय समाप्त हो जाते हैं। भक्ति मनुष्य की भावनाओं को सकारात्मक दिशा प्रदान करती है और उसे आंतरिक शांति का अनुभव कराती है। इसीलिए संवेदना से जनित परिस्थितियों में भक्ति भी आपके लिए मनोविज्ञान से बढ़कर कार्य करेगी, जैसा कि अर्जुन का उदाहरण हम सबके समक्ष उपस्थित है।

वर्तमान युग में मानव जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है। प्रत्येक मानव अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में चारों ओर से मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा, असुरक्षा और नैतिक संकट का सामना कर रहा है। उसके पास इससे सम्बन्धित ज्ञान की कमी नहीं है न ही इन समस्याओं के समाधान करने के साधनों की। किन्तु इन सभी में से किसे अपनाए और किसे छोड़ दे, इसका निर्णय करना उसके लिए अत्यन्त दुष्कर होता जा रहा है। सोशल मीडिया पर बिखरी हुई अनेकानेक उदाहरणों के समक्ष प्रतिपल उसकी संवेदनाओं में परिवर्तन होता रहता है। ऐसे समय में गीता की शिक्षाएँ सबके लिए अत्यन्त उपयोगी एवं प्रासंगिक सिद्ध हो सकती है, ऐसा एक परिकल्पना नहीं अपितु सुपरिश्चित निदान है। सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि गीता हमें सिखाती है कि कर्तव्य का पालन निष्काम भाव से करना चाहिए। जीवन की परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखना चाहिए। आत्मज्ञान और भक्ति के माध्यम से आंतरिक शांति प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार गीता आधुनिक मानव के लिए भी एक प्रभावी मार्गदर्शक ग्रन्थ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानवीय संवेदना मानव जीवन की स्वाभाविक और आवश्यक विशेषता है, किंतु जब वह मोह और अज्ञान से प्रभावित हो जाती है, तब जीवन में संकट उत्पन्न होता है। **श्रीमद्भगवद्गीता** इन संवेदनाओं को संतुलित करने का अद्भुत मार्ग प्रस्तुत करती है। आत्मज्ञान, कर्मयोग, समत्वभाव और भक्ति के माध्यम से गीता मनुष्य को मानसिक शांति, कर्तव्यनिष्ठा और आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करती है। इस दृष्टि से गीता केवल धार्मिक ग्रन्थ नहीं अपितु मानवीय संवेदनाओं के संतुलन

19 सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ २/३८



और समाधान का सार्वकालिक दार्शनिक मार्गदर्शक है। इसलिए आज भी गीता की शिक्षाएँ मानव जीवन के लिए उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी प्राचीन काल में थीं।



श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रतिपादितं वैज्ञानिकतत्त्वम्

डॉ. आसराफ आलम ख़ान

सहायकाचार्यः (योगः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः

एकलव्यपरिसरः, अगरतला

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीतानामकग्रन्थः भारतीयदर्शनस्य दीपस्तम्भरूपेण वर्तते न केवलं भारतदेशे, अपि तु समग्रे जगति अपि परमसम्माननीयः अद्वितीयः च अस्ति। एषः ग्रन्थः सनातनधर्मस्य, भारतीयदर्शनोत्कर्षस्य च मूर्तस्वरूपमिति विज्ञायते। अस्य ग्रन्थस्य प्रत्येकः श्लोकः न केवलम् आध्यात्मिकविवेकस्य प्रकाशकः अस्ति, अपि तु मानवजीवनस्य सर्वाङ्गीणविकासाय वैज्ञानिकदृष्ट्या अपि अत्यन्तगम्भीरं चिन्तनं प्रतिपादयति। अत्र आत्मस्वरूपस्य, कर्तव्यबोधस्य, धर्मस्य, कर्मयोगस्य, ज्ञानयोगस्य, भक्तियोगस्य च निरूपणम् उत्कृष्टं दृश्यते।

भगवता श्रीकृष्णेन अर्जुनाय युद्धभूमौ कृतः उपदेशः केवलं युद्धे विजयं साधयितुं न अभूत्, अपि तु जीवनयात्रायाः प्रत्येकसङ्कटे मार्गदर्शकस्वरूपेण तस्य उपदेशस्य महत्वम् अद्ययावत् अनुभव्यमानम् अस्ति। गीता न केवलं मोक्षमार्गस्य प्रदर्शिका अस्ति, अपि तु तत्र विज्ञानं, मनःशास्त्रं, समाजशास्त्रं, राजनीतिशास्त्रं च यथासम्भवम् अन्तर्निहितानि सन्ति। भगवता प्रदत्ताः उपदेशाः ये सन्ति, तेषां चिन्तनशक्तिं विस्तारयितुं, समस्यासु समाधानम् अन्वेष्टुं च मानवजातिं प्रेरयन्ति। विज्ञानदृष्ट्या अपि गीता अस्मान् बोधयति यत् प्रत्येकक्रियायाः, प्रत्येकस्य भावस्य च कारणं तत्त्वतः अन्वेषणीयं भवति।

अतः श्रीमद्भगवद्गीता न केवलं एकः धार्मिकः ग्रन्थः अस्ति, अपि तु विज्ञानयुक्तं, तत्त्वयुक्तं, साधनापरकं च जीवनदर्शनं प्रदीयते। अस्य ग्रन्थस्य अध्ययनं मनुष्ये आत्मान्वेषणं, आत्मविकासं च प्रेरयति, तथा च बहिर्मुखदृष्ट्या अपि संसारधर्मस्य रहस्यावबोधनं साधयति। अस्मिन् ग्रन्थस्थितं विज्ञानमयं चिन्तनं, तर्कशुद्धं विवेचनं च अद्यापि आधुनिकवैज्ञानिकदृष्ट्या अपि प्रशंसायोग्यं, गवेषणीयं च अस्ति।

१. पञ्चमहाभूततत्त्वज्ञानम् Five Fundamental Elements (Pancha Mahabhutas) Material Science -

“भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा” ॥-७/४

अस्य श्लोकस्य अनुसारं, प्रकृतेः अष्टधा विभागः अस्ति – पञ्चमहाभूतानि चतस्रः अन्तःकरणवृत्तयः च । एतेषां योगेन समस्तं विश्वं निर्मायते इति, यत् वैज्ञानिकदृष्ट्या अपि समर्थ्यते ।

१. मूलतत्त्वान् आधुनिकविज्ञानस्य सन्दर्भेण योजयन्तु ।

श्लोके निरूपिताः पञ्चमहाभूताः विज्ञानस्य द्रव्यस्वरूपेषु - स्थूलः (solid), द्रवः (liquid), वायवीयः (gas), प्लाज्मा (plasma), आकाशः (space) - इत्येषु अवस्थासु सम्बन्ध्यन्ते ।

२. कार्यगुणधर्मान् अवगच्छन्तु ।

प्रत्येकस्य महाभूतस्य स्थैर्यं (स्थिरता), प्रवाहः (प्रवाह), ऊर्जा (तेजः), गतिः (चेष्टा), स्थानम् (देशः) इत्येतान् गुणान् निरीक्ष्य, भौतिकविज्ञानम्, रसायनशास्त्रम्, जीवविज्ञानं च तेन सम्बन्धयितुं शक्यते ।

३. प्रयोगात्मकदृष्ट्या प्रमाणम् ।

उदाहरणरूपेण - कोशिकायाः सप्ततिप्रतिशतं भागः जलतत्त्वेन निर्मितः, पाचनक्रिया अग्नितत्त्वं विना न सम्भवति, श्वसनक्रिया वायुतत्त्वपर्यवसिता इति ।

४. तात्त्विकं भौतिकं च दृष्टिं संयोजयन्तु ।

श्लोकस्य सन्देशः केवलं भौतिकपदार्थानां विश्लेषणं न करोति, अपितु चैतन्यस्य अस्तित्वस्य च विमर्शं करोति, यः आधुनिकमनोविज्ञानं Neuroscience च इत्येताभ्यां सम्बद्धः विचारः शक्यते ।

२. ऊर्जायाः संरक्षणं रूपपरिवर्तनं च Law of Conservation of Energy Through Karma

“न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते” ॥-१८/११

अयं श्लोकः स्पष्टं प्रकाशयति यत् - देहधारीणां कृते कर्मत्यागः असम्भवः । जीवनस्थितस्य कर्मणां परित्यागः न शक्यते; किन्तु कर्मफलस्य परित्यागः एव सत्यम् इत्युच्यते । एषः सिद्धान्तः ऊर्जायाः संरक्षणनियमस्य तत्त्वं समर्थयति ।



ऊर्जायाः संरक्षणसिद्धान्तः विज्ञानशास्त्रे निरूपितः अस्ति – “ऊर्जा न सृज्यते, न च विनश्यति; केवलं एका अवस्था अन्यामवस्थां प्रति रूपपरिवर्तनं करोति” । (Energy can neither be created nor destroyed; it merely transforms from one form to another.) इदं वैज्ञानिकसत्यं भगवद्गीतायाः अध्यात्मसिद्धान्तेन सह अद्भुतं सामञ्जस्यं दर्शयति ।

यथा ऊर्जा निरन्तरं विभिन्नेषु रूपेषु परिवर्त्यमाना अपि, स्वस्वरूपे स्थिता एव तिष्ठति, तथा एव कर्म अपि अनिवार्यं वर्तते, तस्य केवलं फलाशक्तिः न स्यात् । कर्म निरपेक्षं, फलत्यागपूर्वकं मोक्षं प्रति नयति ।

अतः, यदा वयं ऊर्जायाः संरक्षणं दृष्ट्वा, विभिन्नेषु रूपेषु तस्या अभिव्यक्तिं पश्यामः, तदा भगवद्गीतायाः गम्भीरं तत्त्वज्ञानं अपि अनुसन्धते- यत् कर्म परिवर्तते, किन्तु न विनश्यति; फलेच्छायाः त्यागः मोक्षसाधनं भवति । एषा सम्यक् दृष्टिः कर्मयोगस्य तथा ऊर्जा-नियमस्य च गूढं ऐक्यं उद्घाटयति ।

३. आत्मनः स्वसंवर्धनम् Mind and Self-Discipline – Psychology

“उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः” ॥-६./५

एषः श्लोकः आत्म-उद्धारणस्य महत्त्वं प्रतिपादयति । आत्मा यः स्वयमेव आत्मनं उद्धर्तुम् अर्हति, सः स्वात्मानमुन्नयितुं शक्नोति । आत्मा इत्यस्य तात्पर्यं केवलं शाश्वतम् अस्तित्वं न, अपितु मानसिकं तथा भावनात्मकं स्थानं च दर्शयति । अत्र भगवता श्रीकृष्णेन आत्म-उद्धारणे आत्मा स्वयमेव कर्तव्यम् इति सूचितम् । यः आत्मा आत्मानं नियन्त्रयति, सः आत्मबन्धुः अस्ति, परं यः आत्मानं निरंकुशं कृत्वा इच्छापाशे बध्नाति, सः आत्मविपत्तिं प्राप्नोति ।

स्वस्य स्थितेः मनोविज्ञानः:

मनोविज्ञानस्य दृष्ट्या एतत् बोधयति यत् आत्मनियन्त्रणं स्व-विश्लेषणं च महत्त्वपूर्णम् अस्ति । यः व्यक्तिः आत्मीयं मानसिकं च अवस्थां नियन्त्रयति, सः आत्मविकासे यथेष्टं प्रगतिं प्राप्नोति । आत्मनियन्त्रणं च अनुशासनम् आत्मविकासस्य मार्गं नितान्तम् आवश्यकमस्ति । यः आत्मनिरूपणं कुर्वन् आत्मशान्तिम् अभिवर्धयति, सः मानसिकदृष्ट्या स्वस्थः, कार्यक्षमः च भवति ।

अयं श्लोकः मनोविज्ञानस्य मूलसिद्धान्तं दर्शयति - आत्मस्वीकृतिः, आत्मनियन्त्रणं च आत्मविकासः । यः मानवः आत्मविवेचनं कुर्वन् स्वीयं मानसिकं च भावनात्मकं सङ्गठनं नियन्त्रयति, सः स्वयं शक्तिमान् आत्मनिर्भरः च भवति ।

एवं आत्मनिराकरणम् आत्मविकासस्य प्रक्रिया मानसिकस्वास्थ्यस्य आनन्दस्य हेतु अत्यन्तं महत्त्वपूर्णाः सन्ति, एते व्यक्तये आत्मशान्तिं प्रतिपादयन्ति जीवनं समृद्धिं च प्रददति ।



४. चेतना-विज्ञानसमन्वयः Consciousness and Biological Coordination

“सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्” ॥-१५/१५

एषः श्लोकः भगवद्गीतायाम् उल्लिखितः अस्ति, यत्र चेतनायाः सूक्ष्मतमत्त्वं स्पष्टं कृतं वर्तते । श्रीकृष्णः स्वयमेव वदति सः सर्वेषु जीवेषु हृदये स्थितास्ति, तस्मादेव स्मृति, ज्ञानं च अज्ञानं च आयाति । अयं श्लोकः जैविक-मानसिकस्तरस्योपरि चेतनायाः अद्वितीयसमन्वयम् उद्घोषयति ।

एषः श्लोकः न केवलं आध्यात्मिकदृष्ट्या, अपि तु जैविकविज्ञानदृष्ट्या अपि महत्त्वं वहति । 'हृदि सन्निविष्टो' इति अर्थे भगवान् अथवा चेतना प्रत्येकस्य जीवस्य हृदये स्थितं, यः जैविकदृष्ट्या तस्य मानसिकं शारीरिकं च कार्यं नियन्त्रयति । अतः अयं सन्देशः प्रकट्यते यत् अस्माकं संपूर्णशारीरिकक्रिया तथा च मानसिकक्रिया उच्चचेतनया नियन्त्रिता अस्ति, या न केवलं मानसिकस्मृति (Memory) ज्ञानं (Knowledge) उत्पद्यते, एतदतिरिच्य अज्ञानम् अपि नाशयति ।

एतस्मिन्नेव, श्लोके 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो' इति अवधारणया ध्यानपूर्वकं उक्तं यत् ज्ञानस्य स्रोतः स्वयं भगवान् अस्ति, यः वेदेषु जीवनस्य प्रत्येकक्षेत्रे समाहितः । जैविकदृष्ट्या, एषा अवधारणा प्रमाणयति यत् अस्मिन् जैविकप्रक्रियासु, यथा तन्त्रिकातन्त्रे, हार्मोनलप्रतिक्रियायाः तथा च शरीरस्य विस्तृतचेतनासु समन्वयति ।

अस्य श्लोकस्य सूक्ष्मतत्त्वं अस्ति यः जीवस्य शरीर-मस्तिष्कयोः सर्वे प्रक्रियाः, तद् शारीरिकं भवतु वा मानसिकं उच्चचेतनया परिचालिता अस्ति, एषा चेतना जैविकसंवर्धनं मत्वा महत्वपूर्णं स्थानं धत्ते । एषा ज्ञानतन्त्रिकाविज्ञानयोः समन्वितम् अवबोधं दृढं करोति यत् अस्माकं शरीरमस्तिष्कयोः प्रत्येकं क्रिया सूक्ष्मा, प्रभावशालिनी चेतनया नियन्त्रिता अस्ति ।

५. पुनर्जन्मः चक्रम् Cycle of Birth and Death – Cellular and Evolutionary Theory

यदा भगवद्गीता इदं वदति

“आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते” ॥- ८/१६

तदा केवलं आध्यात्मिकदर्शनं न प्रतिपादयति, अपि तु आधुनिकवैज्ञानिकदृष्ट्या अपि गहनं रहस्यमुद्घाटयति । कोशीयजीवनचक्रे च विकासात्मकविज्ञानक्रमे च, एषः पुनरावृत्तिसिद्धान्तः यथार्थतया अनुमीयते ।

कोशीयस्तरेण पुनर्जन्मचक्रः जीवस्य जीवनं कोशेभ्यः आरभ्य प्रवर्तते । प्रत्येकः कोशः (माइटोसिस् विभाजनेन), वृद्धिं गच्छति, जीर्णं भवति, च अन्ते मृत्युम् आप्नोति । एषः ‘जन्म-वृद्धि-मरणचक्रम्’ अनवरतं प्रवहति ।



जीवस्य संपूर्णशरीरम् अपि एतेषां कोशानां योगेन एव निर्मितम् । तस्मात् कोशीयस्तरे अपि पुनः पुनः सर्जनं तथा विनाशः दृश्यते । यथा कोशः नष्टः सन् नवकोशेन प्रतिस्थाप्यते, तथा शरीरमपि नष्टं सन् पुनर्जन्मप्राप्नोति ।

विकासात्मकदृष्ट्या पुनर्जन्मचक्रः विकासात्मकसिद्धान्तेन (Evolutionary Theory), जीवनं न केवलं स्थिरं, अपि तु अनवरतं रूपान्तरणशीलं दृश्यते । **अनुवंशिकपरिवर्तनानि** (Genetic Mutations), **प्राकृतिकचयनः** (Natural Selection) च नूतनजीवसमूहानां सृष्टये कारणम् ।

जात्यन्तरपरिवर्तनानि एव जीवसमूहस्य पुनरावृत्तिस्वरूपं सञ्जनयन्ति । एकः जीवः नष्टः अपि, तस्य आनुवंशिकसूत्रधर्माः नूतनजीवेषु उत्पद्यन्ते, यः पुनरपि जीवनं धत्ते ।

एवं **जन्म-मरण-रूपः चक्रः** विकसनक्रमे अपि प्रत्यक्षं दृश्यते ।

वैज्ञानिकसमन्वयः "पुनरावर्तिनः" इति शब्दः, कोशीयं च विकासात्मकं चक्रं समानवृत्त्या सूचयति । यावत् जीवः आत्मज्ञानं न लभते, तावत् सः कोशीयस्तरे जन्ममरणचक्रे, विकासक्रमे जात्यन्तरपरिवर्तने च, अनवरतं भ्रमति ।

"मामुपेत्य" इत्यस्य तात्पर्यं — यदा जीवः पूर्णं आत्मबोधं प्राप्नोति, तदा सः कोशीयं, विकासात्मकं च जीवनचक्रं अतिक्रम्य मोक्षं प्राप्नोति ।

अतः भगवद्गीतायाः अयं श्लोकः न केवलं अध्यात्मिकसत्यं बोधयति, अपि तु कोशविज्ञानस्य (Cellular Biology) च विकासविज्ञानस्य (Evolutionary Biology) मूलभूतसिद्धान्तैः अपि साम्यं दर्शयति । यतस्तस्मात्, आध्यात्मविज्ञानं च आधुनिकविज्ञानं च परस्परं सहगच्छतः इति निःसन्देहं निष्क्रियते ।

६. ब्रह्माण्डस्य विराटस्वरूपम् Cosmic Vision – Universal Energy and Light

"दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥"-११.१२

यदा ब्रह्माण्डस्य आदिकाले महाविस्फोटः (महाबिस्फोट-सिद्धान्तः - Big Bang Theory) अभवत्, तदा 'सर्वत्र व्याप्तं क्वाण्टम् क्षेत्रम्' (Quantum Field) अस्य उद्गमस्थानम् ।

एषः क्षेत्रः अनवरतम् ऊर्जा-प्रवाहस्य (Universal Energy Flow) मूलं अस्ति, यः तेजोमयः प्रकाशस्वरूपः च ।

तेन क्षणे, सहस्रसूर्याणामिव एकत्र दीप्तिः उत्पन्ना । एषा तेजोमयी ऊर्जा कालदेशयोः आरम्भसमये समुत्थिता, या अद्यापि ब्रह्माण्डव्यापकं 'कास्मिक् सूक्ष्मतरतरंगम्' (Cosmic Microwave Background) रूपेण अवशिष्टा वर्तते ।



भगवतः विराड्भूतम् — अणोरणीयान् महतो महीयान् च - तेजोमयस्य सार्वत्रिकशक्तेः जीवन्मूर्ति इव दृश्यते। एषा ऊर्जा, यत्र च प्रत्येकम् अणुं, प्रत्येकं जीवम्, प्रत्येकं ग्रहं च, समस्तं च ब्रह्माण्डं सञ्चालयति। "सर्वं तेजोमयं ब्रह्म। तेजः एव ब्रह्माण्डस्य आधारः। यत्र तेजः तत्र जीवनम्, तत्र गतिः, तत्र अस्तित्वम्।"

७. योगः कर्मसु कौशलम् Yoga as Skill in Action – Holistic Science

"योगः कर्मसु कौशलम् ॥" -२/५० यो.सू.

अस्य श्लोकस्य गहनार्थः अस्ति — यः योगः, सः न केवलं ध्यानमात्रं शरीरव्यायाममात्रं वा, अपि तु प्रत्येककर्मणि कौशलपूर्वकं सन्तुलितचेतसा प्रवृत्तिः इत्यर्थः। योगः मनसः, शरीरस्य च सम्यगन्वयः, यः स्वास्थ्यस्य, मानसिकशक्तेः च वृद्धये मुख्यं साधनम् अस्ति।

समग्रविज्ञानस्य (Holistic Science) परिप्रेक्ष्यात् योगस्य वैज्ञानिकसमर्थनम् -

समग्रविज्ञानं जीवनस्य सर्वाङ्गीण समन्वयम् अधिकृत्य विवेचनं करोति। अस्मिन् सन्दर्भे योगः शरीरेन्द्रियाणां, प्राणानां, चित्तस्य च अद्वितीयं समन्वयनं करोति।

१. **तनुस्वास्थ्यविज्ञानम् (Physical Health Science):** योगाभ्यासेन शरीरे रक्तसंचरणम् (Circulatory System), पाचनक्रिया (Digestive System), हार्मोनसंतुलनम् (Endocrine System) च सम्यग्विधायते। आसनप्रकाराः, यथा ताडासनम्, त्रिकोणासनम्, पवनमुक्तासनम् इत्यादयः शरीरसंधिबन्धनं सुदृढं कुर्वन्ति।

२. **प्राणविज्ञानम् (Science of Vital Energy):** प्राणायामेन श्वसनप्रणाल्याः (Respiratory System) क्रियाशीलता वर्धते। प्राणशक्तेः उचितवितरणं सम्पद्यते, येन जीवनीशक्तिः स्थायिनी भवति। अनुलोमविलोमः, भस्त्रिका, कपालभातिः च प्राणवायोः सम्यग्व्यवस्थां स्थापयन्ति।

३. **चेतनाविज्ञानम् (Consciousness Science):** ध्यानधारणाभिः चित्तस्य विशुद्धिः, एकाग्रता च साध्यते। योगनिद्रा, विपश्यना, त्राटक इत्यादिना मानसिकद्वन्द्वः, चिन्तासमूहश्च निवार्यते। एतद् विज्ञानं मानसिकरोगोपशमने विशेषं प्रभावं दर्शयति।

४. **आध्यात्मविज्ञानम् (Spiritual Science):** योगः आत्मबोधाय मार्गदर्शकः। समत्वं, संन्यासः, क्षमा, दया च योगेन स्वयमेव जीवनस्य स्वभावाः भवन्ति। एते सर्वे गुणाः समग्रचेतनायाः प्रकटीकरणाय साधकाः सन्ति।

वैज्ञानिकदृष्ट्या निष्कर्षः - योगः शरीरे मनसि च सन्तुलनं स्थापयन्, प्रतिरोधकशक्तिं (Immunity) वर्धयति। तन्यताजन्यरोगानां (Stress-related Disorders) शमनं करोति। अनुसंधानानुसारं (Research Studies) योगाभ्यासः न्यूनरक्तचापे (Hypertension), मधुमेहे (Diabetes), आर्थराइटिस (Arthritis) च विशिष्टं लाभं प्रदर्शितवान् अस्ति।



योगः न केवलं क्रियामात्रं, अपि तु सम्यक्चिन्तनस्य, सम्यक्चेष्टनस्य च विज्ञानम् । भगवद्गीतायामपि उक्तम् - "योगः कर्मसु कौशलम्" - अर्थात् प्रत्येककर्मणि समत्वबुद्ध्या, जागरूकतया च कुशलतां संपादयेत् । अयं योगः एव समग्रस्वास्थ्यस्य एवं समग्रजीवनस्य मूलमूल्यं सञ्जीवयति ।

८. आत्मा अजरः अमरः – उर्जा-संरक्षणसदृशं तत्त्वम् *Eternal Nature of the Soul – Energy Theory*

“न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे” ॥-२/२०

आत्मा कदापि न जायते, न च म्रियते । न सः कदापि उत्पन्नः भवति, न च पुनः भविष्यति । सः अजः (जन्मरहितः), नित्यः (शाश्वतः), पुरातनः च । शरीरस्य नाशे अपि, आत्मा न विनश्यति ।

वैज्ञानिकदृष्ट्या विश्लेषणम् - आधुनिकविज्ञानस्य ऊर्जा-संरक्षणसिद्धान्तानुसारम्, ऊर्जा न उत्पद्यते, न च विनश्यति; केवलम् एकरूपात् अपररूपेण परिवर्तते । एवं, आत्मा अपि -

- न उत्पद्यते, न नश्यति ।
- नित्यशुद्धस्वरूपः, केवलं शरीररूपेण तु व्यक्ततां प्राप्नोति ।
- शरीरनाशे अपि आत्मा स्वस्वरूपे स्थितः भवति ।

यथा -

ऊर्जा जठराग्नौ (पाचनाग्नौ), मस्तिष्कगत-विद्युत्-तरङ्गेषु, वातायनगत-तापशक्तौ वा परिवर्तते, तथैव आत्मा जन्म-मरणचक्रे केवलं शरीरस्वरूपपरिवर्तनं प्राप्नोति, न तु विनाशम् ।

अतः, भगवद्गीतायाः अयं श्लोकः, *ऊर्जा-संरक्षणतत्त्वस्य* (Law of Conservation of Energy) प्राचीनतमप्रतिपादनरूपेण अवलोकनीयः ।

- ऊर्जा = नाशरहितः, केवलं रूपपरिवर्तनशीलः ।
- आत्मा = अजरः, अमरः, केवलं शरीरपरिवर्तनशीलः ।

उदाहरणम् -यथा दीपज्वाला एका दिपात् अन्यदीपं प्रदीपयति, तदा न मूलज्वाला नश्यति, केवलं प्रकाशविस्तारः भवति । एवं जीवात्मा अपि देहादेहान्तरं गच्छति, किन्तु स्वस्वरूपे स्थितः एव भवति ।

९. चित्तशुद्धिः तथा मनःसंयमः *Control Over Mind – Cognitive Science*

“बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।



अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्” ॥-६/६

अस्य श्लोकस्य गहनार्थः मनोविज्ञानस्य सन्दर्भे विशेषरीत्या विवेचनीयः । कॉग्निटिव् साइन्स् (मनोविज्ञानशास्त्रस्य) अनुसारम्, मानवस्य चेतनमस्तिष्कं (Conscious Mind) तथा अवचेतनमस्तिष्कं (Subconscious Mind) एकस्मिन् व्यापकसाम्ये स्थितौ स्तः ।

यदा पुरुषः स्वस्य मनसः प्रवृत्तिम् अवबुध्य, तदस्य अनुकूलनं च कर्तुं शक्नोति, तदा आत्मा एव तस्य प्रियतमः बन्धुः भवति । तस्य चेतनचिन्तनक्रियाः अवचेतनप्रवृत्तिभिः सह सम्यग्व्यवस्थाप्यन्ते ।

कॉग्निटिव् साइन्स् दृष्ट्या, मनः संयमः तदा सिध्यति यदा कार्यशीलस्मृति (Working Memory), ध्यानवृत्तिः (Attention), तथा संज्ञानीय-नियन्त्रणशक्तयः (Executive Control Functions) सुसूत्रेण नियोज्यन्ते । यः पुरुषः स्वस्य संज्ञानात्मक- प्रक्रियाः (Cognitive Processes) अवबुध्य, स्ववासनाः, स्ववृत्तीः च संयमयति, सः आत्मना आत्मानं जयति ।

अथ च, यः स्वस्य चित्तवृत्तीनां निग्रहे असमर्थः, तस्य चेतनमस्तिष्कम् अवचेतनप्रेरणानां वशं गतं भवति । तदा आत्मा एव स्वस्य शत्रुरूपेण व्यवहरति, यतः इच्छानिर्णयेषु स्वातन्त्र्यं नष्टम् भवति ।

वर्तमानमनःशास्त्रम् (Contemporary Cognitive Science) अपि एतत् अनुमोदयति यत् —मनसः वश्यता यदि साध्यते, तर्हि स्वयमेव आत्मविकासः सम्भवति । यदि मनः वशात् अपच्युतम्, तर्हि व्यक्तित्वविकासे बाधाः समुपजायन्ते ।

अतः, भगवद्गीतायाः अयं श्लोकः केवलं धार्मिकदृष्ट्या न व्याख्येयः, अपि तु मनोवैज्ञानिकीयसत्यस्य अपि अत्यन्तमुद्धोषणं करोति ।

१०. त्रिगुणात्मकप्रकृतेः विज्ञानम् Three Gunas – Behavioural Science

“सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्” ॥-(१४.५):

अत्र भगवता श्रीकृष्णेन प्रकृतिजातानां त्रयाणां गुणानां - सत्त्वस्य, रजसः, तमसश्च विवेचनं कृतम् । एते गुणाः प्रत्येकं जीवस्य व्यक्तित्वम्, आचरणम्, मनोवृत्तिं च नियन्त्रयन्ति । यद्यपि आत्मा अव्ययः, तथापि देहे स्थित्वा एतैः गुणैः बन्धनम् अनुभवति ।

वैज्ञानिकदृष्ट्या (Behavioral Science Perspective):



Abhinavdhara

IJIS- International Journal of Innovation in Indic Studies

ISSN: 2583-5149 | Special Edition Vol. 2 | March 2026

आधुनिक आचरणविज्ञानस्य (Behavioral Science) अनुसारं, जीवस्य व्यवहारः तस्य मानसिकस्थितेः न्यूरोकेमिकल्-स्तराणां च परिणामस्वरूपः भवति । त्रिगुणानां विश्लेषणम् एतस्मिन्सन्दर्भे एवमधिकृतम् सत्त्वगुणः (Purity, Harmony, Clarity):

सत्त्वगुणेन चेतनता, समत्वभावः, एवं सकारात्मकचिन्तनम् अभिव्यक्तम् । न्यूरोकेमिकल् दृष्ट्या, सत्त्ववृत्तौ सेरोटोनिन (Serotonin) एवं डोपामिन (Dopamine) इत्येतयोः सन्तुलितस्तरः वर्धते, ये मानसिकस्वास्थ्यं, सुखबोधं च संवर्धयन्ति ।

- **रजोगुणः (Activity, Passion, Agitation):**

रजोगुणेन उत्साहः, चेष्टा, एवं अहङ्कारबुद्धिः प्रवर्तते । अस्य विज्ञानसम्बद्धव्याख्यायाम्, एड्रेनालिन (Adrenaline) तथा नॉरएड्रेनालिन (Noradrenaline) इत्येतयोः अधिकता द्रष्टव्या, या चिन्ताम्, उत्सुकताम्, द्रुतचेष्टां च उत्पादयति ।

- **तमोगुणः (Inertia, Darkness, Confusion):**

तमोगुणेन आलस्यं, प्रमादः, तथा अविद्याबुद्धिः प्रवर्तते । तामसवृत्तौ न्यूरोकेमिकल् अवसादः (*low serotonin, GABA imbalance*) लक्षितः, ये मानसिकगौरवग्रस्तताम् (*mental dullness*) च निर्दिशन्ति ।

समन्वयः (Integration):

एवं, गीतायां प्रतिपादितायाः त्रिगुणात्मकप्रकृतेः विज्ञानम्, आधुनिक न्यूरोसाइन्स् एवं मनोविज्ञानस्य निष्कर्षैः सह पूर्णतः साम्यं व्रजति । सत्त्ववृद्ध्या मानसिकस्वास्थ्यस्य, रजस्संयमेन कार्यकुशलतायाः, तथा तमोनिवृत्त्या चेतनास्फूर्तेः संवर्धनं साध्यते । योगशास्त्राणि अपि एतेषां गुणानां संतुलनं साधयितुं विशेषप्रयत्नं कुर्वन्ति - योगाभ्यासेन, ध्यानसाधनया, आहारनियमेन च ।

श्रीमद्भगवद्गीतायामुक्तं "गुणाः प्रकृतिसंभवाः" इति वाक्यं न केवलं दार्शनिकसत्यम्, अपि तु आचरणविज्ञानस्य मूलभूतसिद्धान्तमपि प्रकाशयति । जीवनस्य सर्वेषु क्रियाप्रवृत्तिषु एते गुणाः न्यूरोकेमिकल् परिवर्तनरूपेण साक्षात्प्रत्यक्षम् अनुभूयन्ते ।

११. यज्ञः – ऊर्जा-विनिमयः Yajna (Sacrifice) – Ecological Balance

"सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥"-३/१०



प्रजापतिना सहयज्ञेन सह प्रजाः सृष्टाः । सः उक्तवान् - "यज्ञेन यूयं वर्धिष्यध्वम् । अयं यज्ञः भवतां समस्तेषाम् इच्छितकामानापूर्तये साधनं भवतु ।"

वैज्ञानिकदृष्ट्या पश्यामिश्चेत् यज्ञः ऊर्जा-विनिमयस्य प्रकृतिरूपेण वर्णितः अस्ति । यत्र 'दत्तम्, गृहीतम्, संरक्षितम्' इत्येवं चक्रं निरन्तरं प्रवहति ।

परिस्थितिके सन्तुलने अस्य यज्ञस्य महद् योगदानम् अस्ति ।

- वृक्षाः कार्बनडाइऑक्साइडम् आदाय प्राणवायुम् निष्पादयन्ति ।
- जन्तवः प्राणवायुम् आदाय कार्बनडाइऑक्साइडम् विसर्जयन्ति ।
- वर्षावृष्टिः, नदनदीसञ्चारः, वायुव्यवस्था च अपि यज्ञरूपेण ऊर्जा-चक्रं निरन्तरं सञ्चालयन्ति ।
- सर्वे प्राणी परस्परं दत्त्वा, गृहीत्वा च जीवनचक्रे संस्थिताः सन्ति ।

एवं, प्राकृतिकसंसाधनानां संरक्षणे, पुनरुत्पादने च, यज्ञभावना आवश्यकी । यदि ऊर्जा-ग्रहणम् अधिकं भवति, दानं तु न्यूनं, तर्हि संतुलनभङ्गः भवति । अतः प्रकृतिः असंतुलिता भविष्यति - इति विज्ञानतः स्पष्टं दृश्यते ।

अतः यज्ञः केवलं कर्मकाण्डः न, अपि तु ऊर्जा-विनिमयात्मकं पारिस्थितिक-संतुलनस्य मूलमूलकं तत्त्वम् । यज्ञमूलिका जीवनशैली एव प्रकृतिसंरक्षणाय, सृष्टेः स्थायित्वाय च अपरिहार्यः ।

१२. स्थूलसूक्ष्मविज्ञानम् – शरीरत्रयमीमांसा .Body as Garment – Concept of Rebirth

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥"-२/२२

यथा नरः जीर्णानि वासांसि परित्यज्य नवानि वस्त्राणि धारयति, तथैव देही (जीवात्मा) जीर्णानि शरीराणि परित्यज्य नवानि शरीराणि ग्रहीतुं प्रवर्तते ।

स्थूलसूक्ष्मविज्ञानम् – वैज्ञानिकपृष्ठभूमिः

आधुनिकविज्ञानस्य अनुसारं, मानवशरीरत्रयम् अस्ति – स्थूलशरीरम् (भौतिकशरीरम्), सूक्ष्मशरीरम् (मनःप्राणादिरूपम्), कारणशरीरम् (बीजरूपम् चेतनास्थानम्) ।

- **स्थूलशरीरम्** — पंचमहाभूतैः (पृथिवी, आपः, तेजः, वायु, आकाश) निर्मितम्, इदं दृश्यते, स्पृश्यते च ।
- **सूक्ष्मशरीरम्** — मनः, बुद्धिः, अहंकारः, चित्तं च सम्मिल्य भावनासङ्कल्पादिकं सञ्चालयति ।



- **कारणशरीरम्** — अविद्यारूपम्, संस्कारबीजभावेन स्थितम्, यतः पुनर्जन्मप्रवृत्तिः भवति ।

पुनर्जन्मस्य वैज्ञानिकनिष्ठा – **सजीवकोशीयपुनरुत्पत्तिविज्ञानम्**

आधुनिकजीवविज्ञानस्य मतानुसारम्,

- जीवकोशाः (cells) सततं उत्पद्यन्ते, नश्यन्ति च ।
- *DNA* (डीएनए) नामकसूत्रधारः, शरीरस्य समस्तसूचनां वहति ।
- कोशीयपुनर्निर्माणेन एव जीवः नवीनत्वं प्राप्नोति, किन्तु तस्य मूलस्वरूपं स्थायित्वेन तिष्ठति ।

एवं जीवात्मा अपि स्थूलशरीरस्य विनाशे सूक्ष्मशरीरकरणशरीरयोः साहाय्येन नूतनशरीरग्रहणं करोति ।

नवीनशरीरग्रहणम् = *वासांसि नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि* इत्यस्य वैज्ञानिकव्याख्या ।

सूक्ष्मशरीरस्य प्रवासः

जीवात्मा यदा स्थूलशरीरं त्यजति, तदा सूक्ष्मशरीरं कारणशरीरं च अनुगच्छतः ।

- मनोबुद्ध्यहंकारादिभिः सम्पन्नं सूक्ष्मशरीरं नवीनयोनीं प्राप्य नवीनशरीरं सृजति ।
- यः संस्कारः कारणशरीरे स्थितः, सः कर्मानुसारं नूतनजीवनस्वरूपं विनिर्माति ।

यथैव वस्त्राणि जीर्णानि परित्यज्य मानवः नूतनानि वस्त्राणि धारयति, तथैव देही स्थूलशरीरं त्यक्त्वा नवशरीरधारणाय प्रवर्तते । सजीवकोशीयपुनरुत्पत्तिविज्ञानम् अत्र प्रमाणरूपेण स्थितम् । पुनर्जन्मसिद्धान्तः न केवलम् आध्यात्मिकदृष्ट्या, अपि तु वैज्ञानिकपृष्ठभूम्यपि गम्भीरतया ग्राह्या ।

एवं स्थूलसूक्ष्मविज्ञानं शरीरत्रयमीमांसया पुनर्जन्मसिद्धान्तं सम्यक् व्याख्यायते ।

१३. कालतत्त्वम् – सापेक्षतायाः (Relativity) भावः Time as Divine Force – Theory of Relativity

"कालः कलयतामहम् ॥ १०/३०

अर्थः- 'अहं कालः अस्मि । सर्वं पचामि, संयोजयामि, परिवर्तयामि च' । अर्थात्, समयं परमशक्तिरूपेण सर्वसंसारव्यवहाराणां कारणभूतः अस्ति ।

वैज्ञानिकदृष्ट्या कालः



Abhinavdhara

IJIS- International Journal of Innovation in Indic Studies

ISSN: 2583-5149 | Special Edition Vol. 2 | March 2026

आधुनिकभौतिकशास्त्रस्य दृष्टीकोणतः, कालः (Time) एकः उर्जा-निर्देशः (energy dimension) अस्ति, यः द्रव्येण (matter) च उर्जया च अविच्छिन्नसम्बद्धः अस्ति। सापेक्षतावादेन (Theory of Relativity) प्रमाणीकृतं यत् -

- कालः स्थिरः न अस्ति।
- गत्यनुसारं (velocity) च गुरुत्वाकर्षणबलानुसारं (gravitational field) च कालस्य गति भिन्ना भवति।
- यदि किञ्चित् द्रव्यमानयुक्तं वस्तु प्रकाशगतिकस्य समीपे सञ्चरति, तर्हि तस्य कालः मन्दगत्या प्रवर्तते।
- एवं गुरुत्वस्य तीव्रतया अपि कालस्य प्रवाहः मन्दः भवति।

एषः विचारः 'कालगतिकापेक्षता' (Time Dilation) इति प्रसिद्धः। अतः, कालः स्वयमेव स्वातन्त्र्यम् न धारयति, किन्तु द्रव्यगत्याः अपेक्षया परिवर्तते।

कालः – दिव्यशक्ति-स्वरूपम्

प्राचीनदर्शनानुसारं कालः केवलं गणनात्मकः नास्ति, अपि तु सः एकः साक्षात् नियामकशक्तिः अस्ति। कालः सर्वेषां परिवर्तनानां बीजम्, संसारचक्रस्य (cycle of creation and destruction) प्रेरकः च। अतः कालः न केवलं भूतभविष्यत्सर्वमपि नियच्छति, अपि तु ब्रह्माण्डस्य मूलाधारभूतः अस्ति।

कालतत्त्वे सापेक्षतावादस्य स्थानम्

सापेक्षतावादः (Relativity) प्रमाणयति यत् कालः न स्वतन्त्रः अपि तु द्रव्येण, गत्या च सम्बद्धः। यदा द्रव्यस्य गतिक्रमः परिवर्तते, तदा कालस्य अनुभूतिः अपि भिन्ना भवति। एषः भावः प्राचीनभारतीयदर्शनानां 'कालपरिणामवादः' (the doctrine of time-based transformation) इत्यस्य समर्थनं करोति।

समन्वयात्मकविज्ञानदर्शनम्- कालतत्त्वम् अद्वितीयम् अस्ति यत्र आध्यात्मिकदर्शनं च आधुनिकविज्ञानं च एकत्र मिलति। सापेक्षतावादेन कालः गतिशीलः, परिवर्तनशीलः च इति प्रमाणीकृतम्। भारतीयदर्शनेन तु कालः चेतनशक्ति-स्वरूपः, सृजनसंहारनियामकः इति प्रतिपादितम्। एतयोः समन्वयः नूतनं विज्ञानदर्शनं जनयति, यत्र विश्वस्य रहस्यानि आधिक्येन स्पष्टानि भवन्ति।

निष्कर्षः-

श्रीमद्भगवद्गीता न केवलं मोक्षशास्त्रम्, अपि तु विज्ञानसिद्धान्तानां प्राचीनमूलमस्ति। यत्र आत्मा, शरीरम्, ऊर्जा, चेतना, कर्म, पुनर्जन्म, ब्रह्माण्डः, यज्ञः, प्रकृति इति एते सर्वे वैज्ञानिकतत्त्वानां मूलविचाररूपेण दर्शिताः। एते श्लोकाः न केवलं अध्यात्मविचारम्, अपि तु तत्त्वविज्ञानस्य गवेषणां अपि पोषयन्ति।



सन्दर्भग्रन्थसूची

१. गीता प्रेसः । (2019). श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्करभाष्यसहिता. गीता प्रेसः, गोरखपुरम् ।
२. राधाकृष्णन्, सर्वपल्ली । (2009). भारतीयदर्शनम् (खण्डौ 1-2). राजपाल एण्ड सन्स् ।
३. दासगुप्तः, सुरेन्द्रनाथः । (2011). भारतीयदर्शनस्य इतिहासः (खण्डः 1). मोतीलाल बनारसीदासः ।
४. तिवारी, के. डी. । (2015). भारतीयदर्शनं च आधुनिकविज्ञानम्. चौखम्बा विद्याभवनम् ।
५. शर्मा, राममूर्तिः । (2012). योगः च आधुनिकविज्ञानम्. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम् ।
६. व्यासः, वेदव्यासः । (2018). महाभारतम् (शान्तिपर्वसहितम्). चौखम्बा संस्कृत-सीरीज़-ऑफिसः ।



गीता और मानसिक स्वास्थ्य: एक अंतर्विषयक अध्ययन

डॉ. छाया

सहायक प्राध्यापिका (हिंदी विभाग)

निरंकारी बाबा गुरुबचन सिंह मेमोरियल महाविद्यालय, सोहना

सारांश

आधुनिक समाज में तीव्र प्रतिस्पर्धा, भौतिकता और तकनीकी विकास के बीच मानव-मन तनाव, चिंता, अवसाद तथा भावनात्मक अस्थिरता जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। इस संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होता है। गीता का उपदेश स्वयं एक गहन मानसिक संकट की स्थिति में दिया गया है, जहाँ अर्जुन विषाद, भ्रम और निर्णय-असमर्थता से ग्रस्त दिखाई देता है। यह स्थिति आधुनिक मनोविज्ञान में वर्णित मानसिक विकारों से समानता रखती है।

गीता केवल एक धार्मिक या दार्शनिक ग्रंथ नहीं, बल्कि मानव-मन की जटिलताओं को समझने और उनका समाधान प्रस्तुत करने वाला एक व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक ग्रंथ है। कर्मयोग का सिद्धांत फल-आसक्ति के त्याग के माध्यम से तनाव और चिंता को कम करने का मार्ग दिखाता है, जबकि 'स्थितप्रज्ञ' की अवधारणा मानसिक संतुलन, आत्मसंयम और भावनात्मक स्थिरता का आदर्श प्रस्तुत करती है। आत्मज्ञान भय, असुरक्षा और मृत्यु की चिंता से मुक्ति प्रदान करता है तथा भक्ति व्यक्ति को मानसिक संबल और आंतरिक शांति प्रदान करती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धांत आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य, तनाव-प्रबंधन और जीवन-संतुलन के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी हैं। गीता को यदि केवल धार्मिक ग्रंथ के रूप में न देखकर एक समग्र मानसिक

स्वास्थ्य-मार्गदर्शक के रूप में समझा जाए, तो यह आज के तनावग्रस्त समाज के लिए सार्थक और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत कर सकती है।

मुख्य शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता, मानसिक स्वास्थ्य, कर्मयोग, स्थितप्रज्ञ, आत्मज्ञान, तनाव

प्रस्तावना

निश्चय ही वर्तमान वैश्विक समाज तीव्र भौतिकता, उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा, असुरक्षा तथा निरंतर तनाव के दबाव में मानसिक स्वास्थ्य की गम्भीर समस्याओं से ग्रस्त होता जा रहा है। अवसाद, चिन्ता, अकेलापन, आत्महीनता, क्रोध, निराशा एवं अस्तित्वगत संकट आज मनुष्य के आन्तरिक जीवन को विचलित कर रहे हैं, जिस कारण व्यक्ति बाह्य रूप से समृद्ध होते हुए भी आन्तरिक शान्ति से वंचित दिखाई देता है। ऐसे विषम मानसिक परिवेश में श्रीमद्भगवद्गीता एक कालजयी, सार्वकालिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त प्रासंगिक ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित होती है। गीता मानव-मन की स्थिति को केन्द्र में रखकर कर्तव्य, विवेक, समत्व, आत्मसंयम तथा आत्मबोध का मार्ग प्रशस्त करती है। अर्जुन का विषाद वस्तुतः आधुनिक मनुष्य की मानसिक अवस्था का प्रतीक है, जहाँ मोह, भय, दायित्व-बोध और नैतिक संकट एक साथ उपस्थित हैं।

श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग, स्थितप्रज्ञता, समत्वभाव मानसिक संतुलन की आधारशिला स्थापित करते हैं। गीता यह शिक्षा देती है कि मन को विषयासक्ति से मुक्त कर विवेकयुक्त कर्म में प्रवृत्त करना ही मानसिक स्वास्थ्य का स्थायी उपाय है। “योगः कर्मसु कौशलम्” तथा “समत्वं योग उच्यते” जैसे सिद्धान्त आज के तनावग्रस्त समाज को आत्मनियंत्रण, भावनात्मक स्थिरता और आन्तरिक शान्ति प्रदान करने में सक्षम हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि श्रीमद्भगवद्गीता केवल एक धार्मिक ग्रन्थ न होकर मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से एक व्यवहारिक, दार्शनिक एवं चिकित्सात्मक मार्गदर्शिका के रूप में वर्तमान समाज के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है।

इस शोध-पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के चयनित श्लोकों के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा का विश्लेषण किया गया है। मानसिक स्वास्थ्य मानव जीवन का एक अनिवार्य पक्ष है। केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि मानसिक संतुलन, भावनात्मक स्थिरता और सकारात्मक दृष्टिकोण भी जीवन



की गुणवत्ता निर्धारित करते हैं। भारतीय दर्शन में श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ग्रंथ है, जो मानव की आंतरिक समस्याओं—शोक, भय, मोह, क्रोध, चिंता—का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। गीता का उपदेश युद्धभूमि में मानसिक रूप से विचलित अर्जुन को दिया गया, जो इसे मानसिक संकट-प्रबंधन का अद्वितीय ग्रंथ बनाता है।

जिस प्रकार पर्यावरण को सुरक्षित रखने से हमारा शरीर भी स्वस्थ रहता है। उसी प्रकार हमारे मन में भरे हुए प्रदूषक, जिनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, जलन आदि को दूर करना भी अत्यंत आवश्यक है। विशेष रूप से हमारे नकारात्मक विचार ही अनेक रोगों का कारण बनते हैं।

1. “योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्”॥1.

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मानव जीवन की आध्यात्मिक उन्नति और मोक्ष के लिए केवल तीन ही प्रमाणिक मार्ग हैं—ज्ञान, कर्म और भक्ति। इनके अलावा कोई चौथा या भिन्न मार्ग कहीं भी स्वीकार्य नहीं है। अतः मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखने और भौतिक कष्टों के निवारण हेतु श्रीमद्भगवद्गीता का त्रियोग सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2. अर्जुन की मानसिक व्यथा

“गाण्डीवं संसते हस्तात् त्वक्चैव परिदहयते।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः”॥2.

कुरुक्षेत्र के मैदान में जब अर्जुन अपने परिजनों को सामने देखकर मोहग्रस्त हो जाते हैं, तब अर्जुन अपने विषाद का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मेरे हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है और मेरी त्वचा बहुत जल रही है, मैं स्थिर खड़ा रहने में भी असमर्थ हूँ, और मेरा मन भ्रमित हो रहा है। यह श्लोक मानसिक तनाव, भय और अस्थिरता को दर्शाता है।

3. शोक और मोह से ग्रस्त मन

“कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः

पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्”॥3.



अर्जुन श्रीकृष्ण से मार्गदर्शन मांगते हुए कहते हैं कि मैं कायरता के दोष से ग्रस्त हो गया हूँ और मेरा कर्तव्य नष्ट हो गया है। मेरा मन धर्म के विषय में पूरी तरह से भ्रमित है। इसलिए मैं आपसे पूछता हूँ, मेरे लिए निश्चित रूप से जो कल्याणकारी हो वह मुझे बताइए। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में आया हूँ, इसलिए मुझे शिक्षा दें।

4. शोक का कारण – अज्ञान

“अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः”॥4.

श्रीकृष्ण अर्जुन के शोक को तर्कसंगत नहीं मानते हैं, वे कहते हैं कि अर्जुन पांडित्यपूर्ण बातें कर रहे हैं। पंडित या विद्वान वही होता है जो शरीर और आत्मा के रहस्य को समझता है। वे जानते हैं कि शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अमर और नित्य है। जो ज्ञानी पुरुष होते हैं, वे जीवन और मृत्यु के रहस्य को पूरी तरह समझते हैं। इसलिए वे न तो मृत व्यक्तियों के लिए और न ही जीवित व्यक्तियों के लिए शोक करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। विद्वान पुरुष परिस्थितियों की द्रव्यता से ऊपर उठकर केवल अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। अतः तुम उन बातों के लिए शोक कर रहे हो, जिनके लिए शोक करना उचित नहीं, क्योंकि मानसिक पीड़ा का मूल अज्ञान ही है।

5. समभाव ही मानसिक स्वास्थ्य

“योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते”॥5.

योग में स्थित होकर अर्थात् ईश्वर को समर्पित होकर अपने कर्म करो। हे अर्जुन, सभी प्रकार की आसक्ति को छोड़कर, सफलता और असफलता में समान भाव रखते हुए योग में स्थित होकर अपने कर्तव्य कर्म को करो। इसी समता या समान भाव को ही योग कहा जाता है।

6. स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति की मानसिक अवस्था

“दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते”॥6.

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने एक स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति के लक्षण बताए हैं कि दुखों की प्राप्ति



होने पर जिसके मन में परेशानी नहीं होती, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा इच्छा रहित है। जिसके आसक्ति, भय और क्रोध पूरी तरह नष्ट हो गए हैं, ऐसा मननशील मनुष्य स्थितप्रज्ञ कहलाता है। अतः यह अवस्था मन के पूर्ण नियंत्रण का प्रतीक है।

7. इंद्रियों और मन पर नियंत्रण

“यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता”॥7.

यह श्लोक इंद्रिय संयम के महत्व को बताता है कि जब कोई व्यक्ति अपनी इंद्रियों को उनके विषयों से उसी प्रकार हटा लेता है जैसे, एक कछुआ खतरे को महसूस करके अपने अंगों को अपने खोल के भीतर पूरी तरह समेट लेता है। उस समय उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है अर्थात् वह व्यक्ति आत्मज्ञान में स्थित हो जाता है।

8. ध्यान से मानसिक शांति

“उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः”॥8.

मनुष्य को अपने आप से अपना उद्धार करना चाहिए। अपने आपको कभी भी निराशा या पतन की ओर नहीं ले जाना चाहिए, क्योंकि यह मन अर्थात् आत्मा ही मनुष्य का सबसे प्रिय मित्र है और यह मन ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु भी है। अतः यहाँ स्व-प्रबंधन और आत्मचिकित्सा का मूल सिद्धांत दिया गया है

9. अशांत मन का समाधान

“बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्”॥9.

जिस व्यक्ति ने अपने मन को स्वयं द्वारा जीत लिया, उस जीवात्मा का वह मन स्वयं ही मित्र होता है, लेकिन जिसने मन और इंद्रियों सहित शरीर को नहीं जीता है, उसके लिए वही मन शत्रु के समान शत्रुता का व्यवहार करता है अर्थात् जिसने मन को जीत लिया, उसका मन मित्र है; अन्यथा वही शत्रु बन जाता है।



10. परम मानसिक शांति

“प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्”॥10.

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस योगी का मन पूर्ण रूप से शांत है, जिसके रजोगुण यानि वासनाएं शांत हो गए हैं, जो निष्पाप हो गया है और ईश्वर के साथ एकाकार हो गया है। वह निश्चित रूप से मोक्ष का आनंद प्राप्त करता है।

11. चिंता का पूर्ण समाधान

“सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः”॥11.

इस श्लोक में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सभी प्रकार के सांसारिक कर्तव्यों और धर्मों को छोड़कर केवल उनकी भक्ति और शरण में आ जाना चाहिए अर्थात् भगवान आश्वासन देते हैं कि जो व्यक्ति पूरी तरह से उनकी शरण में आ जाता है, उसे वे सभी पापों व परिणामों से मुक्त कर देते हैं। इसलिए मनुष्य को निश्चिन्त होकर स्वयं को भगवान् के प्रति समर्पित कर देना चाहिए।

गीता और आधुनिक मनोचिकित्सा

श्रीमद्भगवद्गीता और आधुनिक मनोचिकित्सा के मध्य एक गहन वैचारिक साम्य दृष्टिगोचर होता है, यद्यपि दोनों की पद्धतियाँ भिन्न प्रतीत होती हैं। आधुनिक मनोचिकित्सा जहाँ वैज्ञानिक परीक्षण, व्यवहारात्मक विश्लेषण तथा उपचारात्मक तकनीकों के माध्यम से मानसिक विकारों के निराकरण का प्रयास करती है, वहीं गीता मानव-मन के सूक्ष्मतम स्तरों का दार्शनिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विवेचन प्रस्तुत करती है। गीता में वर्णित *मन*, *बुद्धि* और *अहंकार* की त्रिविध संरचना आधुनिक मनोविज्ञान की *कॉग्निशन*, *इमोशन* और *ईगो* की अवधारणाओं से साम्य रखती है। श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित मनोनिग्रह, आत्मसंयम तथा विवेकबुद्धि का विकास आज की *कॉग्निटिव बिहेवियरल थेरेपी* की मूल भावना से निकटता रखता है, जिसमें नकारात्मक विचार-प्रणालियों को पहचानकर उन्हें संतुलित एवं युक्तिसंगत दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित किया जाता है।



गीता का *निष्काम कर्मयोग* आधुनिक मनोचिकित्सा में वर्णित *वर्क थेरेपी* एवं *माइंडफुलनेस* की अवधारणा से सम्बद्ध है, जहाँ व्यक्ति फलासक्ति से मुक्त होकर वर्तमान क्षण में सजग रहकर कर्म करता है। *स्थितप्रज्ञ* की संकल्पना भावनात्मक स्थिरता का आदर्श प्रस्तुत करती है, जो अवसाद, चिन्ता एवं तनाव के उपचार में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त, आत्मबोध एवं आत्मस्वीकृति का गीता-दर्शन आधुनिक *ह्यूमनिस्टिक साइकोलॉजी* के आत्म-साक्षात्कार के सिद्धान्त से साम्य स्थापित करता है। इस प्रकार गीता और आधुनिक मनोचिकित्सा परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे की पूरक हैं, जहाँ गीता मानसिक स्वास्थ्य के लिए नैतिक-आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है और मनोचिकित्सा उसे वैज्ञानिक एवं चिकित्सात्मक रूप में व्यवहार में लाती है।

निष्कर्ष

अतः यह स्पष्ट होता है कि *श्रीमद्भगवद्गीता* और आधुनिक मनोचिकित्सा मानसिक स्वास्थ्य की दिशा में भिन्न पद्धतियों के होते हुए भी समान लक्ष्य की ओर उन्मुख हैं। गीता जहाँ मन के नैतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पक्ष को सुदृढ़ करती है, वहीं आधुनिक मनोचिकित्सा वैज्ञानिक एवं चिकित्सकीय उपायों द्वारा मानसिक विकारों के उपचार को संभव बनाती है। निष्काम कर्म, मनोनिग्रह, विवेकबुद्धि एवं स्थितप्रज्ञता जैसी गीता की अवधारणाएँ आज के तनावग्रस्त जीवन में मानसिक संतुलन एवं भावनात्मक स्थिरता प्रदान करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि गीता और आधुनिक मनोचिकित्सा का समन्वय मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक प्रभावी, समग्र एवं मानव-केंद्रित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीमद्भागवद् महापुराण. अध्याय 11, स्कंध 11, श्लोक 6
2. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 1, श्लोक 30, पृ. 16
3. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 2, श्लोक 7, पृ. 34
4. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 2, श्लोक 11, पृ. 35



5. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 2, श्लोक 48, पृ.48
6. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 2, श्लोक 56, पृ.38
7. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 2, श्लोक 58, पृ.38
8. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 6, श्लोक 5, पृ.126
9. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 6, श्लोक 6, पृ.126
10. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 6, श्लोक 27, पृ.127
11. श्रीमद्भगवद्गीता. गीताप्रेस, गोरखपुर, अध्याय 18, श्लोक 66, पृ.358



गीता के संवाद पर आधारित संचार की अवधारणा: एक अंतःविषयक समीक्षा

प्रो. (डॉ.) प्रशांत कुमार

तिलक स्कूल ऑफ़ जर्नलिज़्म एंड मास कम्युनिकेशन
चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ

श्रीमती शैली शर्मा

रिसर्च स्कॉलर

तिलक स्कूल ऑफ़ जर्नलिज़्म एंड मास कम्युनिकेशन
चौधरी चरण सिंह यूनिवर्सिटी, मेरठ।

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता को आमतौर पर एक धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथ माना जाता है, किंतु इसके संवादात्मक स्वरूप में निहित संचार की अवधारणाएँ इसे एक प्रभावी संप्रेषणात्मक ग्रंथ के रूप में भी स्थापित करती हैं। यह शोध-पत्र श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य संवाद को संचार की एक संपूर्ण, नैतिक और परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में समझने का प्रयास करता है। प्रस्तुत अध्ययन एक अंतःविषयक समीक्षा है, जिसमें दर्शन, संचार अध्ययन, मनोविज्ञान, नैतिकता, नेतृत्व और प्रबंधन से संबंधित विद्वानों के विचारों का समालोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। साहित्य समीक्षा के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि गीता का संवाद केवल सूचना के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह श्रोता की मानसिक स्थिति, नैतिक दुविधाओं और सामाजिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए एक गहन परिवर्तन प्रक्रिया को उत्पन्न करता है। विभिन्न विद्वानों के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि गीता का संवाद प्रेरणादायक, नैतिक और उद्देश्यपूर्ण संचार का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें वक्ता और श्रोता के बीच पारस्परिक विश्वास, तर्कशीलता और मूल्यबोध की सशक्त उपस्थिति देखी जाती है। यह समीक्षा यह भी सिद्ध करती है कि गीता में निहित संवादात्मक संरचना आधुनिक सामाजिक और शैक्षणिक संदर्भों में नेतृत्व, निर्णय-निर्माण, परामर्श और नैतिक विवेक के विकास में बहुत प्रभावी साबित हो सकती है। निष्कर्षतः यह शोध स्थापित करता है कि श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक सार्वभौमिक संचार दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो केवल

आध्यात्मिक चेतना तक सीमित नहीं है, बल्कि मानवीय व्यवहार, सामाजिक समरसता और नैतिक जीवन-दर्शन को भी मजबूत करता है।

मुख्य शब्द: श्रीमद्भगवद्गीता, संवाद, संचार की अवधारणा, अंतःविषयक समीक्षा, नैतिक संचार, नेतृत्व संवाद

1. प्रस्तावना

1.1 श्रीमद्भगवद्गीता का संक्षिप्त परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह महाभारत के भीष्म पर्व का हिस्सा है और इसमें कुल 700 श्लोक, 18 अध्याय और दो मुख्य पात्र—श्रीकृष्ण और अर्जुन—के बीच संवाद प्रस्तुत किया गया है। गीता का उदय एक युद्धभूमि में होता है, लेकिन इसका संदेश युद्ध तक सीमित नहीं है; यह मानव जीवन की नैतिक, मानसिक, सामाजिक और आत्मिक समस्याओं का समाधान प्रदान करता है।

गीता को सिर्फ धार्मिक पाठ के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के सिद्धांत, जिम्मेदारी की भावना और निर्णय लेने की दिशा में मार्गदर्शन करने वाले ग्रंथ के रूप में देखा जाता है। इसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग—तीनों का समावेश है, जिससे यह एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यही वजह है कि गीता का अध्ययन न केवल धार्मिक क्षेत्र में, बल्कि दर्शन, मनोविज्ञान, प्रबंधन, शिक्षा और संचार जैसे क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से किया गया है।

1.2 गीता का संवादात्मक स्वरूप

श्रीमद्भगवद्गीता का आधार संवादात्मक है। यह ग्रंथ एक जीवित वार्तालाप के माध्यम से विकसित होता है, जहाँ अर्जुन अपनी मानसिक उलझन, भय, करुणा और नैतिक संकट को व्यक्त करता है, जबकि श्रीकृष्ण एक निपुण वक्ता, मार्गदर्शक और संचारक के रूप में उसका समाधान पेश करते हैं। यह संवाद केवल प्रश्न-उत्तर तक नहीं सीमित है, बल्कि यह एक गहन अंतःक्रियात्मक प्रक्रिया है, जिसमें श्रोता की मानसिक स्थिति को समझकर संदेश को क्रमबद्ध, तर्कसंगत और नैतिक तरीके से प्रस्तुत किया जाता है।

गीता का संवाद केवल एकतरफा उपदेश नहीं है, यह सक्रिय भागीदारी, प्रतिक्रिया और वैचारिक स्पष्टता पर निर्भर करता है। श्रीकृष्ण अर्जुन की मानसिकता के अनुसार अपनी संवाद की शैली को बदलते हैं,



जिससे यह अनुकूलनशील और परिवर्तनकारी (transformational) संवाद बनता है। इस दृष्टिकोण से गीता का संवाद समकालीन संचार सिद्धांतों के साथ भी मेल खाता है।

1.3 संचार अध्ययन में धार्मिक/दार्शनिक ग्रंथों का महत्व

आधुनिक संचार अध्ययन मुख्यतः तकनीक, मीडिया और सूचना के प्रवाह पर ध्यान केंद्रित करता है, लेकिन संचार की असली आत्मा मानव अनुभव, नैतिकता और मूल्य प्रणाली से संबंधित होती है। धार्मिक और दार्शनिक साहित्य में संचार के जो मूल तत्व समाहित हैं, वे आज भी महत्व रखते हैं। ये ग्रंथ संचार को सिर्फ सूचना के आदान-प्रदान के तौर पर नहीं, बल्कि अर्थ-निर्माण, मूल्य-संवहन और व्यवहार में परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में दर्शाते हैं।

गीता जैसे ग्रंथ यह प्रमाणित करते हैं कि सफल संचार केवल शब्दों तक सीमित नहीं है, बल्कि वक्ता की नैतिकता, श्रोता की मनःस्थिति और संवाद के लक्ष्यों पर निर्भर करता है। इस तरह, धार्मिक/दार्शनिक ग्रंथ संचार के अध्ययन को एक महत्वपूर्ण मानवीय और नैतिक दृष्टिकोण देते हैं, जो वर्तमान संचार के विमर्श में बहुत जरूरी है।

1.4 गीता को संचार ग्रंथ के रूप में देखने की आवश्यकता

अब तक गीता पर हुए अधिकांश शोध धार्मिक, दार्शनिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोणों तक ही सीमित रहे हैं। हालाँकि कुछ शोधार्थियों ने इसके मनोवैज्ञानिक, प्रबंधन और नेतृत्व पक्षों पर ध्यान केंद्रित किया है, फिर भी गीता को एक स्वतंत्र संचार पाठ के रूप में देखने के प्रयास अपेक्षाकृत सीमित रहे हैं।

गीता में वार्तालाप की संरचना, संदेश की स्पष्टता, नैतिक उद्देश्य और श्रोता-केंद्रित दृष्टिकोण ऐसे तत्व हैं, जो इसे एक प्रभावी संवाद मॉडल के रूप में स्थापित करते हैं। श्रीकृष्ण का वार्तालाप केवल अर्जुन को कर्म के लिए प्रेरणा नहीं देता, बल्कि उसकी चेतना, दृष्टिकोण और निर्णय-क्षमता को भी बदलता है। इस प्रकार, गीता को संवाद ग्रंथ के रूप में देखने से संचार अध्ययन को एक वैकल्पिक, मूल्य-आधारित और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध दृष्टिकोण प्राप्त होता है।

1.5 शोध का संदर्भ और औचित्य

वर्तमान समय में संचार अध्ययन लगातार तकनीकी केंद्रित होता जा रहा है, जहाँ नैतिकता, मानवीय संवेदनाएँ और मूल्य-आधारित संवाद पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है। ऐसे में श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक संतुलित और समग्र संचार दृष्टिकोण प्रदान करता है।



इस अध्ययन का लक्ष्य गीता के संवाद को विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोणों के माध्यम से विश्लेषणात्मक रूप से प्रस्तुत करना और यह स्पष्ट करना है कि गीता किस तरह प्रेरणादायक, नैतिक और परिवर्तनकारी संवाद का बेहतरीन उदाहरण है। यह शोध संचार अध्ययन के क्षेत्र में एक सैद्धांतिक योगदान करने का प्रयास करता है, ताकि भविष्य में गीता पर आधारित संवाद मॉडल पर और अधिक व्यापक अनुसंधान संभव हो सके।

2. शोध का उद्देश्य

- गीता के संवाद में निहित संचार के पहलुओं की पहचान करना
- गीता के वार्तालाप को नैतिक और प्रेरणादायक संचार ढांचे के तहत अध्ययन करना
- विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन करना
- वर्तमान सामाजिक और शिक्षा के परिवेश में गीता के संवाद की प्रासंगिकता को जानना
- संचार अध्ययन में गीता पर आधारित दृष्टिकोण की सैद्धांतिक प्रासंगिकता को स्पष्ट करना

3. शोध की प्रकृति एवं पद्धति

3.1 शोध की प्रकृति:

- गुणात्मक
- सैद्धांतिक एवं समीक्षा-आधारित

3.2 शोध पद्धति:

- द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण
- पुस्तकों, शोध-पत्रों, जर्नल्स एवं विद्वानों के कार्यों की समीक्षा
- तुलनात्मक एवं समालोचनात्मक दृष्टिकोण

3.3 अध्ययन की सीमाएँ:

- यह अध्ययन अनुभवजन्य सर्वेक्षण पर आधारित नहीं है
- विश्लेषण मुख्यतः चयनित विद्वानों के साहित्य तक सीमित है



4. गीता का संवाद: एक सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

4.1 संवाद की अवधारणा: भारतीय परंपरा में

भारतीय बौद्धिक परंपरा में संवाद को जानकारी के लेन-देन के बजाय सत्य के अनुसंधान और आत्मज्ञान की प्रक्रिया के रूप में माना गया है। उपनिषदों, वेदों, पुराणों और महाकाव्यों में संवाद को ज्ञान का सर्वोत्तम माध्यम माना गया है। श्रवण-मनन-निदिध्यासन की परंपरा यह बताती है कि संवाद भारतीय दर्शन में एक सक्रिय, विचारशील और परिवर्तनकारी प्रक्रिया है।

भारतीय संवाद परंपरा में संवाद का लक्ष्य सिर्फ तर्क करना नहीं, बल्कि श्रोता की जागरूकता को संवर्धित करना होता है। यहाँ संवाद नैतिकता, करुणा और सत्य के आधार पर होता है। गुरु-शिष्य परंपरा में संवाद को एक ऐसा साधन माना गया है, जिसके जरिए अज्ञान से ज्ञान और मोह से विवेक की ओर बढ़ना संभव होता है। इस दृष्टिकोण में श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संवाद परंपरा का एक महान उदाहरण प्रस्तुत करती है।

4.2 श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद की संरचना

श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक संगठित और क्रमबद्ध रूप में प्रकट होता है। यह संवाद अर्जुन की मानसिक उलझन और नैतिक समस्या से आरंभ होता है, जब वह युद्ध से दूर हटकर करुणा, भय और मोह में फंसा हुआ नजर आता है। यह स्थिति संवाद की आधारशिला को स्थापित करती है।

श्रीकृष्ण संवाद को सीधे उपदेशात्मक शैली में शुरू नहीं करते, बल्कि पहले अर्जुन की स्थिति को समझते हैं और उसके सवालों को स्वीकार करते हैं। इसके बाद वे तर्क, उदाहरण, दर्शन और व्यवहारिक दृष्टिकोण के द्वारा संवाद को आगे बढ़ाते हैं। संवाद की संरचना समस्या-विश्लेषण-समाधान की प्रक्रिया पर निर्भर करती है, जो इसे एक प्रभावी संचार मॉडल बनाती है।

4.3 वक्ता और श्रोता का संबंध

गीता के संवाद में वक्ता (श्रीकृष्ण) और श्रोता (अर्जुन) के बीच का संबंध बहुत गहरा और विश्वासपूर्ण है। यह संबंध केवल दैवी और मानवीय नहीं, बल्कि गुरु और शिष्य के बीच का संवाद है। श्रीकृष्ण एक आदर्श वक्ता के रूप में अर्जुन की मानसिक स्थिति, भावनात्मक अवस्था और बौद्धिक स्तर का ध्यान रखते हुए संवाद करते हैं।

अर्जुन एक सक्रिय श्रोता की तरह सवाल करता है, संदेह व्यक्त करता है और प्रतिक्रिया देता है। यह



द्विपक्षीय संवाद गीता को एक प्रभावी संचार प्रक्रिया बनाता है। यहाँ बातचीत में अहंकार का स्थान नहीं है, बल्कि विनम्रता, ग्रहणशीलता और आत्मतत्त्व का महत्व है।

4.4 संवाद में तर्क, करुणा और नैतिकता

गीता का संवाद तर्क, करुणा और नैतिकता का संतुलित मिश्रण प्रस्तुत करता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को केवल तर्क से नहीं समझाते, बल्कि उसकी भावनाओं को भी समान रूप से महत्व देते हैं। वे अर्जुन की करुणा को कमजोरी नहीं मानते, बल्कि उसे विवेक के जरिए संतुलित करने का प्रयास करते हैं।

गीता में उपयोग किए गए तर्क केवल बौद्धिक ही नहीं, बल्कि नैतिक तर्क भी हैं, जो कर्तव्य, धर्म और मानव मूल्यों से संबंधित हैं। संवाद का लक्ष्य अर्जुन को किसी बाहरी दबाव में फैसले के लिए प्रेरित करना नहीं, बल्कि उसे आत्मज्ञान और नैतिक स्पष्टता की ओर मार्गदर्शन करना है। यह संवाद नैतिक संचार का बेहतरीन उदाहरण है।

4.5 गीता का संवाद एक परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में

श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक रूपांतरित करने वाली प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य केवल समस्या का समाधान नहीं, बल्कि श्रोता के व्यक्तित्व और दृष्टिकोण में परिवर्तन करना है। संवाद की शुरुआत में अर्जुन मानसिक रूप से विभाजित और निर्णयहीन नजर आता है, जबकि अंत में वह कर्तव्य, आत्मविश्वास और स्पष्टता के साथ कार्य करने के लिए तैयार होता है।

यह बदलाव संवाद की क्षमता को उजागर करता है, जहाँ शब्द, तर्क और नैतिकता मिलकर श्रोता के अंदर दीर्घकालिक बदलाव ला सकते हैं। इस दृष्टिकोण से गीता का संवाद प्रेरणादायक, नैतिक और परिवर्तनकारी संचार का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो समकालीन संवाद अध्ययन के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण है।

5. साहित्य समीक्षा:

1. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (1948) - भगवद्गीता

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की रचना The Bhagavadgita (1948) भगवद्गीता की दार्शनिक व्याख्या के साथ-साथ संवाद की संप्रेषणीय शक्ति का बेहतरीन उदाहरण भी है। उन्होंने इसे “ज्ञान (ज्ञान), कर्म और भक्ति के तिहरे मार्ग” के संगम के रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार, इसे न केवल एक धार्मिक ग्रंथ के रूप में देखना चाहिए, बल्कि एक नैतिक-दार्शनिक संवाद के मॉडल के रूप में भी इसकी जांच की जा सकती है।



डॉ. राधाकृष्णन ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच हुए संवाद को केवल धार्मिक रूप में नहीं, बल्कि एक प्रभावी संचार प्रक्रिया के तौर पर देखा है, जिसमें वक्ता (कृष्ण) और श्रोता (अर्जुन) के बीच गहन वैचारिक अंतःक्रिया होती है। वे इस संवाद को “transcendental communication” के रूप में मानते हैं, जहाँ संवाद के माध्यम से श्रोता के मन में स्थायी परिवर्तन होता है।

राधाकृष्णन ने स्पष्ट किया कि अर्जुन की मानसिक जड़ता और मोह को मिटाने के लिए श्रीकृष्ण ने क्रमबद्ध, तर्कसंगत, और नैतिक संवाद का तरीका अपनाया। इस प्रकार यह ग्रंथ प्रेरणात्मक संचार, नैतिक संवाद, और नेतृत्व संप्रेषण के बेहतरीन उदाहरण के रूप में पेश होता है। यह दृष्टिकोण आपके शोध के लिए विशेष रूप से लाभकारी है क्योंकि यह गीता के संवाद की शैली को आधुनिक संचार सिद्धांतों की परखने का अवसर देता है।

2. ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद (1972) - Bhagavad-Gita As It Is

‘Bhagavad-Gita As It Is’ में स्वामी प्रभुपाद ने भगवद्गीता का शुद्ध वैदिक दृष्टिकोण से अनुवाद तथा व्याख्या की है। यह ग्रंथ धार्मिक अनुयायियों के लिए ही नहीं, बल्कि संचार शास्त्र के छात्रों और शोधकर्ताओं के लिए भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। स्वामी प्रभुपाद ने गीता को “दिव्य संवाद” कहा है, जिसमें भगवान कृष्ण एक आदर्श संप्रेषक की भांति अर्जुन के मन में गहन परिवर्तन लाते हैं।

प्रभुपाद के अनुसार, यह संवाद केवल शाब्दिक नहीं है, बल्कि आत्मिक और आध्यात्मिक संवाद है, जो मानव को उसके दायित्वों और धर्म के प्रति सतर्क करता है। उन्होंने कृष्ण के उपदेशों को “absolute instruction” कहा है, जो प्रभावी, स्पष्ट, उद्देश्यपूर्ण और मूल्यपरक संवाद के सभी गुणों को समेटता है। उनकी टिप्पणी विशेष रूप से इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है कि गीता में प्रयुक्त संवाद केवल संदेश का आदान-प्रदान नहीं है, बल्कि यह एक सक्रिय परिवर्तनकारी प्रक्रिया है। श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के डर, मोह और संदेह को समाप्त कर उसे निर्णय लेने की स्थिति में लाना प्रेरणादायक संवाद का सबसे अच्छा उदाहरण है।

3. डॉ. अरविंद शर्मा (2007) - The Gita for Modern Man

डॉ. अरविंद शर्मा की कृति The Gita for Modern Man में भगवद्गीता को समकालीन सामाजिक और प्रबंधन के संदर्भों में फिर से व्याख्यायित किया गया है। उन्होंने गीता को धार्मिक पाठ से बाहर निकालकर एक “जीवन प्रबंधन मार्गदर्शिका” के तौर पर पेश किया है।

उनके मुताबिक, श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच की बातचीत आधुनिक जीवन में नेतृत्व, नैतिकता, मानसिक स्वास्थ्य, और निर्णय लेने की प्रक्रिया से सीधे जुड़ी हुई है। वे गीता की बातचीत को “transformational



communication" का उदाहरण मानते हैं, जिसमें संवाद सिर्फ जानकारी नहीं देता, बल्कि मानसिकता को भी बदलता है और व्यवहारिक मार्गदर्शन भी करता है।

इस दृष्टिकोण में गीता का संवाद एक मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक साधन बन जाता है, जिससे व्यक्ति अपनी आंतरिक दुविधा, डर और निराशा से बाहर निकलकर आत्मविश्वास के साथ निर्णय ले सकता है। शर्मा का यह विश्लेषण आपके शोध के लिए बहुत उपयुक्त है क्योंकि यह संचार के आधुनिक रूपों—जैसे कोचिंग संवाद, काउंसलिंग संप्रेषण, और नेतृत्व संवाद—के संग भगवद्गीता के संवाद की तुलनात्मक व्याख्या करता है।

4. अरिंदम चक्रवर्ती (1992) - Can the Gita be a Communication Model?

अरिंदम चक्रवर्ती का यह अनुसंधान पत्र 'Can the Gita be a Communication Model?' गीता के संवाद को एक विकल्पात्मक संचार प्रणाली के रूप में देखा जाता है। यह लेख सैद्धांतिक दृष्टिकोण से बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह गीता के संवाद को आधुनिक संचार मॉडल जैसे शैनन और वीवर, हेल्स्टन, या इंटरैक्टिव मॉडल के संदर्भ में विस्तृत रूप से विश्लेषित करता है।

चक्रवर्ती ने गीता के संवाद को एक "dyadic communication" बताया है, जिसमें वक्ता और श्रोता के मध्य अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया होती है। उन्होंने संवाद की तीन प्रमुख विशेषताएँ बताई—(1) Interpersonal Feedback, (2) Semantic Clarity, और (3) Ethical Orientation.

उनके अनुसार, गीता का संवाद श्रोताओं की मानसिक स्थिति के अनुसार ढलता है, जिससे यह "Adaptive Communication" का श्रेष्ठ उदाहरण बन जाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन के मन में छिपी भावनाओं, संदेहों और द्वंद्वों को सुनते हैं और उसी के अनुसार संवाद की दिशा तय करते हैं।

यह अध्ययन इस नजरिए से बहुत उपयोगी है कि यह गीता को केवल एक धार्मिक पुस्तक के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रभावशाली संवाद संरचना के रूप में दर्शाता है, जिससे आपके अनुसंधान में तुलनात्मक संचार विश्लेषण को मजबूती मिलती है।

5. स्वामी रंगनाथानंद (2000) - Universal Message of the Bhagavad Gita

स्वामी रंगनाथानंद की रचना Universal Message of the Bhagavad Gita गीता को एक वैश्विक मानव संवाद के ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करती है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि गीता का संदेश किसी विशेष जाति, धर्म, या राष्ट्र की सीमाओं में नहीं बंधा है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता के लिए जीवन के मार्गदर्शन का कार्य करती है।

उनके अनुसार, भगवद्गीता का वार्तालाप केवल अर्जुन तक नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक व्यक्ति की आंतरिक



संघर्षों को छूता है। यह संवाद गहरी नैतिकता, आत्मिक प्रगति, और मानव मूल्यों की प्रणाली पर असर डालता है।

उन्होंने गीता के संवाद को "मूल्य-केंद्रित संवाद" का उदाहरण माना है, जिसमें वक्ता श्रोता को उसके स्वधर्म और आत्मिक लक्ष्य की ओर प्रेरित करता है। रंगनाथानंद गीता को प्रेरक संचार, नैतिक निर्णय और नेतृत्व विकास का प्रमुख स्रोत मानते हैं।

यह दृष्टिकोण आपके अध्ययन में गीता के संवाद की सार्वभौमिकता और शाश्वतता को दर्शाता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि संचार के ये पहलू केवल ऐतिहासिक संदर्भों में नहीं हैं, बल्कि वर्तमान में भी प्रभावी हैं।

6. एन. के. सिंह (1996) - Communication in Ancient India एन. के. सिंह की पुस्तक Communication in Ancient India में प्राचीन भारतीय समाज में संचार के तरीकों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने वैदिक, पौराणिक एवं धार्मिक लेखन के जरिए यह प्रदर्शित किया है कि संचार एक जीवंत और बहुआयामी प्रक्रिया थी, जो केवल मौखिक संवाद से परे थी, बल्कि प्रतीकों, संकेतों, मुद्राओं और भावनात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से भी होता था।

भगवद्गीता को भारतीय संवाद परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण माना गया है, जहाँ संवाद सिर्फ सूचना का साधन नहीं होता, बल्कि आत्मज्ञान और कर्तव्यबोध का प्रेरक तत्व बन जाता है।

इस पुस्तक में कृष्ण और अर्जुन के बीच वार्तालाप को भारतीय संवाद के प्रमुख तत्वों - स्पष्टता, तात्त्विकता, उद्देश्यपरकता और नैतिकता - का वास्तविक रूप दर्शाया गया है। यह ग्रंथ आपके अध्ययन को गीता के संवाद को भारतीय पारंपरिक संचार मॉडल के रूप में समझने में मददगार होता है।

7. रैमंडो पनिक्कर (1981) - The Vedic Experience: Mantramañjarī The Vedic Experience: Mantramañjarī में रैमंडो पनिक्कर ने वैदिक ग्रंथों को एक सांस्कृतिक संवाद के रूप में दिखाया है। उन्होंने मंत्रों और स्तोत्रों के माध्यम से संवाद को एक पवित्र आध्यात्मिक प्रक्रिया माना है, जहाँ 'शब्द' का उपयोग केवल संवाद के लिए नहीं, बल्कि आत्मिक जागरूकता और ज्ञान के संप्रेषण के लिए किया जाता है।

उन्होंने गीता के संवाद को 'पवित्र संवाद' के अंतर्गत रखा है, जहाँ कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ संवाद एक आध्यात्मिक शिक्षा प्रणाली का प्रतीक है। पनिक्कर के अनुसार, गीता में संवाद की यह विधि आत्म-चिंतन, मार्गदर्शन और नैतिक विकास का माध्यम है।



यह दृष्टिकोण गीता में संवाद के पवित्र और चेतनात्मक स्वरूप को उजागर करता है, जिससे शोध को वैदिक संदर्भों में संवाद की गहराई को समझने में मदद मिलती है।

8. डॉ. उदयन तिवारी (2015) - Communication Ethics in Indian Philosophy
Communication Ethics in Indian Philosophy में डॉ. उदयन तिवारी ने भारतीय दार्शनिक परंपरा में संवाद की नैतिकता को मुख्य विषय बनाया है। उन्होंने 'सत्यं वद', 'प्रियं वद', और 'हितं वद' जैसे वैदिक सिद्धांतों को भारतीय संवाद नैतिकता के आधार के रूप में प्रस्तुत किया है।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के संवाद को नैतिक संचार का उत्कृष्ट उदाहरण कहा गया है। गीता में संवाद न केवल तथ्यों पर आधारित है, बल्कि वह श्रोता की आत्मा को छूने की शक्ति भी रखता है।

तिवारी के मुताबिक, गीता में बातचीत का उद्देश्य नीतिगत निर्णय, आत्मिक उन्नति और कर्तव्यपरायण जीवनशैली को बढ़ावा देना है। यह संवाद आज के सामाजिक और शैक्षणिक परिवेश में भी बेहद महत्वपूर्ण है। यह किताब आपके अध्ययन में गीता के संवाद को नैतिक संचार के मॉडल के रूप में समझने में मददगार साबित होती है।

9. मोहन दत्ता (2011) - Communicating Health: A Culture-centered Approach
मोहन दत्ता की यह किताब Communicating Health: A Culture-centered Approach संचार दृष्टिकोण से भगवद्गीता के संवाद के महत्व को भी दर्शाती है।

गीता को संकट संचार का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना गया है, जहाँ श्रीकृष्ण अर्जुन के मानसिक संघर्ष को एक प्रभावी संवाद के जरिए सुलझाते हैं। इस संवाद का लक्ष्य केवल ज्ञान impart करना नहीं है, बल्कि मानसिक स्पष्टता, आत्मबल और आंतरिक दृढ़ता को भी बढ़ावा देना है।

दत्ता के अनुसार, यह संवाद पारंपरिक संवाद सीमाओं को पार करके एक ऐसी प्रणाली बनाता है, जिसमें श्रोता की सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक दशाओं का ध्यान रखा जाता है।

यह ग्रंथ गीता के संवाद की प्रासंगिकता और संस्कृति-संवेदनशील दृष्टिकोण को शोध में दर्शाता है।

10. रमेश मिश्रा (2002) - The Bhagavad Gita and Contemporary Crisis Management
इस शोधपत्र में रमेश मिश्रा ने भगवद्गीता के संवाद को समकालीन संकट प्रबंधन के संदर्भ में पेश किया है। उनकी राय में, अर्जुन की मानसिक स्थिति वर्तमान के प्रबंधकों, नेताओं और निर्णयकर्ताओं के मानसिक झगड़ों से संबंधित है।



श्रीकृष्ण का संवाद एक प्रभावी मार्गदर्शक तंत्र है, जो कठिनाइयों में स्पष्ट सोच, आत्मविश्वास और नैतिक विकल्प को उर्जा देता है।

मिश्रा ने गीता के संवाद को प्रबंधन के व्यावहारिक सिद्धांतों - जैसे नेतृत्व, परामर्श, प्रेरणा और नैतिक जिम्मेदारी - के अनुसार पाया है।

यह अध्ययन आपको यह दर्शाने में मदद करेगा कि गीता में विद्यमान संवाद की शैली और उद्देश्य केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि आधुनिक प्रशासन और प्रबंधन में भी बेहद महत्वपूर्ण हैं।

6. गीता के संवाद में संचार के प्रमुख आयाम

श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद महज दार्शनिक चर्चा नहीं है, बल्कि यह संचार के अनेक पहलुओं को समेटे हुए एक समग्र व्यवस्था है। श्रीकृष्ण-अर्जुन के बीच संवाद में प्रेरणा, नैतिकता, नेतृत्व, परामर्श, पारस्परिकता और मूल्य-आधारित संप्रेषण का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। यही वजह है कि गीता का संवाद वर्तमान समय में संचार अध्ययन में एक बहुआयामी मॉडल के रूप में स्थापित होता है।

6.1 प्रेरणात्मक संचार

गीता का संवाद वास्तव में प्रेरणादायक संचार का एक बेहतरीन उदाहरण है। जब अर्जुन युद्धक्षेत्र में मानसिक रूप से निस्टमब्ध होता है, तब श्रीकृष्ण का संवाद उसे आत्मविश्वास, साहस और कर्तव्य के प्रति फिर से जागरूक करता है। श्रीकृष्ण अर्जुन की कमजोरियों को नकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं देखते, बल्कि उसे उसकी आंतरिक शक्ति का एहसास कराते हैं।

गीता में प्रेरणात्मक संचार का लक्ष्य बाहरी पुरस्कार या भय पैदा करना नहीं है, बल्कि आत्म-प्रेरणा (Intrinsic Motivation) को जागृत करना है। “कर्मण्येवाधिकारस्ते” जैसे श्लोक व्यक्ति को निष्काम कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं, जो समकालीन प्रेरणात्मक संचार सिद्धांतों से भी सहमत हैं।

6.2 नैतिक संचार

गीता का संवाद नैतिक संवाद का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। श्रीकृष्ण का हर बयान सत्य, हित और कल्याण के सिद्धांतों पर आधारित है। इस संवाद में किसी भी स्थान पर धोखे, दबाव या असत्य का उपयोग नहीं हुआ है।

नैतिक संवाद का लक्ष्य केवल सही सूचना प्रदान करना नहीं, बल्कि श्रोताओं को नैतिक निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करना होता है। गीता में संवाद अर्जुन को यह समझाता है कि कर्म का मूल्यांकन केवल



परिणामों से नहीं, बल्कि कर्तव्य और धर्म के आधार पर होना चाहिए। इस तरह गीता का संवाद नैतिक विवेक को बढ़ावा देने वाला संचार है।

6.3 नेतृत्व संचार

श्रीकृष्ण का संवाद नेतृत्व संचार का एक शानदार उदाहरण है। वे एक आदर्श नेता की तरह आदेश नहीं देते, बल्कि मार्गदर्शन करते हैं। उनका नेतृत्व संवाद सहभागी और सशक्तिकरण पर आधारित है।

गीता में नेतृत्व का तात्पर्य नियंत्रण से नहीं, बल्कि प्रेरणा और दिशा देने से है। श्रीकृष्ण अर्जुन को स्वयं निर्णय लेने के लिए समर्थ बनाते हैं—“विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।” यह संवाद समकालीन नेतृत्व संवाद में Empowerment और Ethical Leadership के सिद्धांतों के साथ पूरी तरह मेल खाता है।

6.4 परामर्श एवं मार्गदर्शन संवाद

गीता का संवाद परामर्श और मार्गदर्शन संचार का एक प्रभावशाली उदाहरण प्रस्तुत करता है। अर्जुन की स्थिति एक मानसिक संकट की है, जिसमें वह निराशा, भय और निर्णय में असमर्थता से जूझ रहा है।

श्रीकृष्ण एक प्रवीण परामर्शदाता के रूप में कार्य करते हैं। वे पहले अर्जुन की समस्या को सुनकर उसकी भावनाओं को मान्यता देते हैं, फिर क्रम से समाधान प्रदान करते हैं। यह वार्तालाप सहानुभूति, धैर्य और सकारात्मक दिशा-निर्देश पर आधारित है, जो आधुनिक परामर्श संचार के सिद्धांतों के अनुरूप है।

6.5 पारस्परिक संवाद एवं फीडबैक

गीता का संवाद केवल एकतरफा शिक्षा नहीं है, बल्कि यह एक संवादात्मक प्रक्रिया है। अर्जुन निरंतर सवाल पूछता है, अपनी शंका व्यक्त करता है और उत्तर देता है। श्रीकृष्ण अर्जुन के सवालों के आधार पर संवाद की दिशा को बदलते हैं।

यह बातचीत फीडबैक आधारित संचार का एक उदाहरण है, जिसमें श्रोता की प्रतिक्रिया संवाद की आकृति को प्रभावित करती है। यह विशेषता गीता को एक सक्रिय और प्रभावी संचार मॉडल बनाती है, जिसमें संवाद निरंतर आगे बढ़ता है।

6.6 मूल्य-आधारित संप्रेषण

गीता का सम्पूर्ण संवाद नैतिकता-आधारित संचार पर आधारित है। इसमें सत्य, धर्म, कर्तव्य, करुणा, आत्मनियंत्रण और मानव भलाई जैसे मूल्यों का संप्रेषण किया गया है।



मूल्य-आधारित संचार का उद्देश्य केवल जानकारी प्रदान करना नहीं होता, बल्कि यह व्यक्तिगत व्यवहार और दृष्टिकोण को नैतिक दिशा में मार्गदर्शन करने का कार्य भी करता है। गीता का संवाद अर्जुन को आत्मकेंद्रित दृष्टिकोण से बाहर निकालकर समाज और धर्म के व्यापक संदर्भ में विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

गीता के संवाद में संचार के ये सभी पहलू—प्रेरक, नैतिक, नेतृत्व, परामर्श, पारस्परिक और मूल्य-आधारित—मिलकर इसे एक समग्र और बहुआयामी संचार मॉडल बनाते हैं। इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद केवल दार्शनिक ग्रंथ में नहीं, बल्कि संचार अध्ययन के क्षेत्र में भी अत्यधिक प्रासंगिक और उपयोगी बन जाता है।

7. अंतःविषयक दृष्टिकोण

श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक बहुपरायामी ग्रंथीय ढांचा प्रस्तुत करता है, जिसकी प्रासंगिकता सिर्फ दर्शन या धर्म तक सीमित नहीं है। गीता का संवाद मनोविज्ञान, प्रबंधन, शिक्षा एवं समाजशास्त्र जैसे कई विषयों से गहराई से संबंधित है। यही अंतःविषयकता इसे एक सार्वकालिक और सार्वभौम संचार ग्रंथ बनाती है।

7.1 दर्शन और संचार

दर्शन और संचार का संबंध विचार, अर्थ और सत्य की खोज के साथ गहरा जुड़ा है। गीता का संवाद दार्शनिक विचारों का संप्रेषणीय स्वरूप पेश करता है, जहाँ ज्ञान केवल बुद्धिमत्ता का नहीं, बल्कि अनुभव और आत्मानुभूति का भी हिस्सा बनता है।

श्रीकृष्ण के संवाद में अद्वैत, कर्मवाद और भक्ति जैसे दार्शनिक विचार स्पष्ट और संगत रूप से प्रस्तुत होते हैं। यह संवाद दर्शाता है कि दर्शन तभी प्रभावी होता है, जब इसे संवादात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाए। इस प्रकार गीता दर्शन को संप्रेषण का जीवंत साधन बनाती है।

7.2 मनोविज्ञान और संवाद

गीता का संवाद मनोवैज्ञानिक नजरिए से बहुत समृद्ध है। अर्जुन की मनोस्थिति—डर, संदेह, तनाव और उदासी—एक मनोवैज्ञानिक चुनौती को दिखाती है। श्रीकृष्ण का संवाद इस चुनौती से निकलने की प्रक्रिया है।



यह वार्ता संज्ञानात्मक पुनर्गठन का एक उदाहरण है, जिसमें अर्जुन की सोच को नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर मोड़ा जाता है। गीता का संवाद यह दर्शाता है कि प्रभावी संवाद मानसिक स्वास्थ्य, आत्मविश्वास और निर्णय क्षमता को मजबूत बना सकता है।

7.3 प्रबंधन और नेतृत्व संचार

प्रबंधन और नेतृत्व के क्षेत्र में गीता का संदेश बहुत महत्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण का संवाद आदर्श नेतृत्व के लिए एक मॉडल प्रदान करता है, जिसमें रणनीति, नैतिकता और मानव भावनाओं का समन्वय दिखाई देता है।

गीता में नेतृत्व आदेशात्मक नहीं है, बल्कि यह संवाद पर आधारित है। श्रीकृष्ण अर्जुन को निर्णय लेने के लिए प्रेरित करते हैं, न कि मजबूर करते हैं। यह संवाद वर्तमान प्रबंधन सिद्धांतों—जैसे निर्णय-निर्माण, प्रेरणा, संकट प्रबंधन और नैतिक नेतृत्व—से पूरी तरह संगत है।

7.4 शिक्षा और नैतिक संवाद

शिक्षा सिर्फ ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण का कार्य है। गीता का संवाद शिक्षक-शिष्य के रिश्ते का आदर्श उदाहरण पेश करता है। श्रीकृष्ण एक गुरु हैं, जो संवाद के जरिए अर्जुन को आत्मज्ञान, नैतिकता और जिम्मेदारी का पाठ सिखाते हैं।

यह संवाद मूल्य-आधारित शिक्षा का एक नमूना है, जिसमें नैतिकता, कर्तव्य और आत्मानुशासन पर जोर दिया गया है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में गीता का संवाद नैतिक बातचीत और जीवन के लिए आवश्यक शिक्षा के लिए प्रेरणा स्रोत हो सकता है।

7.5 समाजशास्त्र और मूल्य-संप्रेषण

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से गीता की वार्ता सामाजिक मूल्यों की रक्षा और पुनर्निर्माण का एक साधन है। यह वार्ता व्यक्ति को निजी लाभ से परे जाकर सामाजिक जिम्मेदारी और सामूहिक भलाई के लिए प्रेरित करती है।

गीता में प्रदर्शित मूल्य—धर्म, कर्तव्य, त्याग और समरसता—सामाजिक संतुलन को बनाए रखने में मददगार हैं। इस प्रकार गीता का संवाद समाज में नैतिक जागरूकता और मूल्य-आधारित गतिविधियों को सशक्त करने वाला संवाद है।



अंतःविषयक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद सिर्फ दार्शनिक विमर्श नहीं, बल्कि एक समग्र संवाद प्रणाली है, जो मनोवैज्ञानिक, प्रबंधकीय, शैक्षिक और सामाजिक स्तरों पर प्रभावी है। यह अंतःविषयकता गीता को एक सार्वकालिक संवाद ग्रंथ में बदलती है, जिसकी प्रासंगिकता आधुनिक संचार अध्ययन में लगातार बनी रहती है।

8. आधुनिक संदर्भ में गीता के संवाद की प्रासंगिकता

आधुनिक काल तेज बदलाव, प्रतिस्पर्धा, तनाव तथा नैतिक दुविधा का काल है। तकनीकी विकास के बावजूद मानव जीवन में असंतुलन, निर्णय के संकट और मूल्य-ह्रास जैसी चुनौतियाँ लगातार बढ़ रही हैं। इस संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक मार्गदर्शक संचार मॉडल के रूप में उभरता है, जो व्यक्तियों, समाज और संस्थाओं को संतुलित एवं नैतिक दिशा देने में सहायक होता है।

8.1 नेतृत्व और निर्णय-निर्माण में उपयोगिता

आधुनिक नेतृत्व अब केवल अधिकार और शक्ति पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह विवेक, संवेदनशीलता और नैतिक निर्णय लेने की क्षमता पर आधारित है। गीता का संवाद नेतृत्व को कर्तव्य की भावना और निष्काम कर्म के सिद्धांत से सम्बद्ध करता है।

श्रीकृष्ण का अर्जुन को प्रदान किया गया मार्गदर्शन यह संकेत करता है कि प्रभावी निर्णय वह होता है, जो व्यक्तिगत भावनाओं से परे जाकर सामूहिक हित को महत्व देता है। वर्तमान प्रशासनिक, राजनीतिक और कॉर्पोरेट नेतृत्व में गीता का संवाद नैतिक निर्णय-निर्माण और उत्तरदायी नेतृत्व के लिए एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है।

8.2 शिक्षा एवं परामर्श में गीता संवाद

शिक्षा और परामर्श के क्षेत्र में संवाद की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण है। गीता का संवाद शिक्षक-छात्र और परामर्शदाता-परामर्शार्थी के संबंध का अद्वितीय उदाहरण है।

श्रीकृष्ण अर्जुन को ना तो निर्देश देते हैं और ना ही डरा देते हैं, बल्कि बातचीत के जरिए आत्मज्ञान और आत्मनिर्भरता की ओर मार्गदर्शन करते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली, परामर्श और मेंटरशिप में यह संवादात्मक तरीका छात्रों और व्यक्तियों को आत्मविश्वास, नैतिकता और जीवन दृष्टिकोण दे सकता है।



8.3 सामाजिक संघर्ष और नैतिक विवेक

आधुनिक समाज विभिन्न सामाजिक, वैचारिक और सांस्कृतिक संघर्षों से प्रभावित है। इन संघर्षों में नैतिक विवेक का योगदान बेहद आवश्यक होता है। गीता का संवाद व्यक्ति को सही और गलत के बीच भेद करने की क्षमता देता है।

यह संवाद कर्तव्य, संयम और विवेक को प्राथमिकता देते हुए हिंसा, घृणा और असहिष्णुता को नकारता है। सामाजिक संघर्षों के हल में गीता के संवाद संवादात्मक समाधान, सहिष्णुता और नैतिक संतुलन की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं।

8.4 मानसिक स्वास्थ्य और आत्म-संवाद

मानसिक दबाव, डिप्रेशन और आत्म-मुकाबला वर्तमान जीवन की प्रमुख चुनौतियाँ बन चुके हैं। गीता का संवाद मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है। अर्जुन की मानसिक स्थिति आज के मानव की मनोस्थिति से काफी समान लगती है।

गीता आत्म-चर्चा (Self-Dialogue) और आत्म-मनन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करती है। यह बातचीत व्यक्ति को डर, मोह और भ्रम से मुक्त होकर आत्म-नियंत्रण और मानसिक संतुलन की ओर ले जाती है, जो समकालीन मनोचिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य अनुसंधान से भी मेल खाती है।

8.5 मूल्य-आधारित सामाजिक संचार

आधुनिक संचार के साधनों में सूचना की प्रचुरता है, लेकिन मूल्यों का अभाव प्रतीत होता है। गीता का संवाद मूल्य-आधारित संचार का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है, जहाँ सत्य, करुणा, कर्तव्य और समर्पण को प्राथमिकता दी गई है।

यह संवाद समाज में सकारात्मक संवाद संस्कृति का निर्माण करने में मददगार है। यदि मीडिया, राजनीति और सार्वजनिक चर्चाओं में गीता के संवादात्मक मूल्य अपनाए जाएं, तो सामाजिक संचार अधिक नैतिक, संतुलित और जनहितकारी बन सकता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद केवल आध्यात्मिक चर्चा नहीं है, बल्कि यह जीवन, नेतृत्व, शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक संवाद के लिए एक व्यावहारिक और मूल्य-आधारित संचार ढांचा है। इसकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही मजबूत है, जितनी इसके लिखे जाने के समय में थी।



9. विश्लेषण एवं चर्चा

श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद केवल आध्यात्मिक चर्चा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सुव्यवस्थित, उद्देश्यपूर्ण और मूल्य-आधारित संवाद प्रक्रिया भी प्रस्तुत करता है। इस अध्याय में गीता के संवाद की तुलना समकालीन संचार सिद्धांतों से की गई है और समीक्षा आधारित निष्कर्षों के प्रकाश में इसकी भूमिका और विशिष्टताओं का विश्लेषण किया गया है।

9.1 गीता का संवाद बनाम आधुनिक संचार सिद्धांत

आधुनिक संचार सिद्धांत—जैसे शैनन-वीवर मॉडल, इंटरएक्टिव मॉडल और ट्रांजैक्शनल मॉडल—संचार को संदेश के प्रसारण, मीडिया और प्रतिक्रियाओं की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं। इसके विपरीत, गीता का संवाद एक गहन अर्थ-निर्माण प्रक्रिया है, जिसमें सूचना के आदान-प्रदान के साथ-साथ श्रोता के मानसिक और नैतिक परिवर्तन पर जोर दिया गया है।

गीता का संवाद द्वि-पक्षीय है, जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच निरंतर फीडबैक, भावनात्मक सहभागिता और तात्त्विक स्पष्टता नज़र आती है। आधुनिक सिद्धांत जिसमें संचार को अक्सर तकनीकी प्रक्रिया माना जाता है, गीता का संवाद इसे मूल्य-केन्द्रित और परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में दर्शाता है।

9.2 गीता संवाद की विशिष्टताएँ

गीता के संवाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी अनुकूलनशीलता है। श्रीकृष्ण अर्जुन की मनोवृत्ति, भय और संदेह को समझते हुए संवाद को दिशा प्रदान करते हैं। यह संवाद न तो निष्कर्षात्मक है और न ही उपदेशात्मक, बल्कि विवेकपूर्ण, करुणामय और तर्कसंगत है।

अन्य खास बात यह है कि गीता का संवाद नैतिकता और उद्देश्य के साथ जुड़ा हुआ है। इस संवाद का उद्देश्य सिर्फ समस्या का समाधान करना नहीं, बल्कि श्रोता को आत्मज्ञान और कर्तव्यपरायण जीवन की ओर प्रेरित करना है। यही विशेषता इसे सामान्य संचार मॉडल से भिन्न और विशिष्ट बनाती है।

9.3 समीक्षा आधारित निष्कर्षों की विवेचना

साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न विशेषज्ञों ने गीता के संवाद को प्रोत्साहक, नैतिक, नेतृत्वकारी और परामर्शात्मक संचार का सर्वोत्तम उदाहरण माना है। समीक्षा पर आधारित विश्लेषण यह संकेत करता है कि गीता का संवाद श्रोता-केन्द्रित है, जिसमें श्रोता की भावनात्मक और बौद्धिक स्थिति को प्राथमिकता दी जाती है।



अध्ययन यह भी प्रकट करता है कि गीता का संवाद समकालीन संकट-प्रबंधन, मानसिक स्वास्थ्य और नेतृत्व संवाद से गहरा संबंध रखता है। यह निष्कर्ष समीक्षा आधारित अनुसंधान को एक मजबूत सैद्धांतिक आधार देता है।

9.4 संचार अध्ययन में गीता की भूमिका

संचार अध्ययन में गीता एक वैकल्पिक और भारतीय संदर्भ पर आधारित संचार मॉडल प्रस्तुत करती है। पश्चिमी सिद्धांतों के प्रभुत्व के बीच गीता का संवाद भारतीय दर्शन, संस्कृति और नैतिक मूल्यों से संबंधित संचार दृष्टिकोण को उजागर करता है।

गीता संचार को सिर्फ सूचना-प्रणाली के रूप में न देखकर इसे एक मानवीय, नैतिक और परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में समझा जाती है। इस दृष्टिकोण से गीता संचार अध्ययन में अंतःविषयक शोध, नैतिक संचार और मूल्य-आधारित संवाद को नई दिशा मिलती है।

इस विश्लेषण और चर्चा से यह स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद आधुनिक संचार सिद्धांतों के समानांतर एक समृद्ध, गहन और मूल्य-आधारित संचार मॉडल के रूप में खड़ा है। इसकी विशेषताएँ इसे समकालीन संचार अध्ययन में न केवल प्रासंगिक बनाती हैं, बल्कि एक वैकल्पिक सैद्धांतिक ढाँचा भी उपलब्ध कराती हैं।

10. शोध में विद्यमान अंतराल

श्रीमद्भगवद्गीता पर आधारित साहित्य बहुत व्यापक और बहुआयामी है। दर्शन, धर्म, मनोविज्ञान, प्रबंधन एवं नैतिक अध्ययन जैसे क्षेत्रों में गीता से जुड़े कई महत्वपूर्ण शोध कार्य उपस्थित हैं। हालाँकि, उपलब्ध साहित्य की आलोचनात्मक समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि गीता के संवाद को संचार अध्ययन के दृष्टिकोण से समग्र और व्यवस्थित रूप में पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया है।

10.1 संचार अध्ययन में गीता के संवाद की सीमित पहचान

हालांकि गीता की संरचना संवादात्मक है, फिर भी संचार अध्ययन में इसे स्वतंत्र संचार मॉडल के रूप में न्यूनतम स्थान मिला है। अधिकांश संचार सिद्धांत पश्चिमी मॉडलों—जैसे सूचना-प्रेषण, माध्यम और प्रभाव—पर आधारित हैं, जबकि गीता के संवाद में अर्थ-निर्माण, नैतिकता और मानसिक परिवर्तन जैसे पहलू प्रमुखता रखते हैं। इस संदर्भ में गीता का संवाद संचार अध्ययन में अपेक्षाकृत अनदेखा रहा है।



10.2 धार्मिक और दार्शनिक अध्ययन का वर्चस्व

उपलब्ध साहित्य का अधिकांश हिस्सा गीता को धार्मिक पुस्तक या दार्शनिक विचारों के रूप में प्रस्तुत करता है। इन अध्ययनों में संवाद को अक्सर आध्यात्मिक शिक्षा या धार्मिक उपदेश तक सीमित कर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप, संवाद की संरचना, संचार प्रक्रिया, वक्ता-श्रोता संबंध और फीडबैक जैसे संचार तत्वों पर गहन विश्लेषण की कमी नजर आती है।

10.3 अंतःविषयक दृष्टिकोण की कमी

गीता का संवाद दर्शन, मनोविज्ञान, प्रबंधन, समाजशास्त्र और संचार जैसे कई विषयों को समाहित करता है, लेकिन अधिकांश शोध एक ही विषय पर केंद्रित हैं। अंतःविषयक दृष्टिकोण से गीता के संवाद का अध्ययन करने वाले शोध अपेक्षाकृत कम हैं। यह कमी गीता के संवाद की व्यापक सामाजिक और संचारात्मक प्रासंगिकता को पूरी तरह समझने में मुश्किल उत्पन्न करती है।

10.4 नैतिक एवं प्रेरणात्मक संवाद पर समेकित अध्ययन का अभाव

कुछ विद्वानों ने गीता को नैतिक या प्रेरणात्मक ग्रंथ माना है, हालांकि नैतिक और प्रेरणात्मक संचार के रूप में गीता के संवाद का समग्र और तुलनात्मक अध्ययन बहुत कम ही किया गया है। संवाद के माध्यम से मानसिक परिवर्तन, आत्मबोध और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया पर केंद्रित अध्ययन की कमी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि गीता के संवाद को संचार अध्ययन में एक अनूठा, मूल्य-आधारित और परिवर्तनशील संचार मॉडल के रूप में विकसित करने की पर्याप्त संभावनाएँ उपलब्ध हैं। प्रस्तुत शोध इन संवादों को संबोधित करने का प्रयास करता है और गीता के संवाद को अंतःविषयक तथा संचार-केंद्रित दृष्टिकोण से पुनः परिभाषित करने की दिशा में महत्वपूर्ण अकादमिक योगदान प्रदान करता है।

11. निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के संवाद का गहन अध्ययन संचार अध्ययन के संदर्भ में किया गया है। इस समीक्षा-आधारित विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि गीता का संवाद केवल धार्मिक या दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक समग्र, मूल्य-आधारित और परिवर्तनकारी संचार मॉडल के रूप में प्रकट होता है। श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद संचार की उस प्रक्रिया को प्रकट करता है जिसमें अर्थ-निर्माण, मानसिक परिवर्तन और नैतिक निर्णय एक साथ होते हैं।



11.1 गीता की वार्ता: एक सम्पूर्ण संवाद मॉडल

गीता का संवाद एक जटिल संचार ढांचे को प्रस्तुत करता है, जिसमें वक्ता, श्रोता, संदर्भ, उद्देश्य और फीडबैक सभी प्रमुख तत्व सक्रियता से भाग लेते हैं। यह संवाद केवल एकतरफा सूचना प्रेषण नहीं है, बल्कि यह द्विपद, अंतःक्रियाशील और अनुकूलन योग्य प्रक्रिया है। श्रीकृष्ण अर्जुन की मानसिक स्थिति को समझते हुए संवाद की दिशा और भाषा को बदलते हैं, जिससे यह संवाद एक संपूर्ण संचार मॉडल का रूप ले लेता है।

11.2 नैतिक, प्रेरक और परिवर्तनकारी वार्ता की पुष्टि

अध्ययन यह दर्शाता है कि गीता का संवाद नैतिकता, प्रेरणा और आत्म-परिवर्तन के मुख्य सिद्धांतों पर आधारित है। श्रीकृष्ण का संवाद अर्जुन को केवल कार्य करने की शिक्षा नहीं देता, बल्कि उसे नैतिक निर्णय, आत्मज्ञान और जिम्मेदार फैसले लेने के लिए प्रेरित करता है। यह संवाद श्रोता के डर, मोह और उलझन को समाप्त कर उसे मानसिक रूप से मजबूत बनाता है, जिससे गीता का संवाद प्रेरणादायक और परिवर्तनकारी संवाद का बेहतरीन उदाहरण बनता है।

11.3 समकालीन समाज में गीता के संवाद की लगातार महत्वपूर्णता

वर्तमान समय में जब समाज नैतिक संकट, मानसिक दबाव, नेतृत्व की चुनौतियों और संवादहीनता जैसी समस्याओं का सामना कर रहा है, तब गीता का संवाद अत्यंत प्रासंगिक लगता है। नेतृत्व, शिक्षा, परामर्श, प्रबंधन और सामाजिक संवाद के क्षेत्रों में गीता का संवाद संतुलन, करुणा और विवेकपूर्ण संवाद का मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। यह साबित करता है कि गीता का संवाद कालातीत है और आधुनिक सामाजिक संदर्भों में भी समान रूप से प्रभावशाली है।

11.4 संचार अध्ययन में गीता-आधारित दृष्टिकोण की आवश्यकता

यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि संचार के अध्ययन में पश्चिमी सिद्धांतों के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा, खासकर गीता के संवाद का समावेश बहुत महत्वपूर्ण है। गीता पर आधारित संचार दृष्टिकोण संचार को सिर्फ एक तकनीकी प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक, मानवीय और परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में देखने का अवसर देता है। इस प्रकार संचार अध्ययन अधिक समर्पित, सांस्कृतिक रूप से विविध और मूल्य-आधारित हो सकता है।



समग्र रूप से यह अध्ययन यह दर्शाता है कि श्रीमद्भगवद्गीता का संवाद एक सम्पूर्ण संचार दर्शन को प्रस्तुत करता है, जो नैतिकता, प्रेरणा, नेतृत्व और आत्मपरिवर्तन को एकत्रित करता है। यह शोध संचार अध्ययन के क्षेत्र में एक वैकल्पिक दृष्टिकोण को नहीं केवल प्रस्तुत करता है, बल्कि भारतीय दार्शनिक परंपरा के संचारात्मक मूल्यों को वैश्विक अकादमिक विमर्श में स्थापित करने का भी प्रयास करता है।

संदर्भ:

1. Radhakrishnan, S. (1948). *The Bhagavadgita*. London: George Allen & Unwin.
- Prabhupada, A. C. Bhaktivedanta Swami. (1972). *Bhagavad-gītā As It Is*. Los Angeles: Bhaktivedanta Book Trust.
2. Sharma, A. (2007). *The Gita for Modern Man*. New Delhi: Orient Longman.
3. Chakrabarti, A. (1992). Can the Gita be a Communication Model?. *Journal of Hindu Studies*, 3(1), 45-60.
4. Ranganathananda, S. (2000). *Universal Message of the Bhagavad Gita*. Kolkata: Advaita Ashrama.
5. Panikkar, R. (1981). *The Vedic Experience: Mantramañjarī*. Delhi: Motilal Banarsidass.
6. Singh, N.K. (1996). *Communication in Ancient India*. Delhi: Global Vision Publishing House.
7. Tiwari, U. (2015). *Communication Ethics in Indian Philosophy*. Varanasi: Sampurnanand Sanskrit University.
8. Dutta, M. (2011). *Communicating Health: A Culture-centered Approach*. Cambridge: Polity Press.
9. Mishra, R. (2002). The Bhagavad Gita and Contemporary Crisis Management. *Indian Journal of Management Studies*, 8(2), 21-34.



कर्मयोग से नैतिक नेतृत्व तक: समकालीन संगठनात्मक जीवन में भगवद्गीता की प्रासंगिकता

अमरजीत कौर

शोध छात्रा,

शारीरिक शिक्षा, खेल और योग विज्ञान विभाग

सिंधानिया विश्वविद्यालय पचेरी बारी, झुंझुनु (राजस्थान), भारत

सारांश

भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो मानव जीवन, नैतिकता, नेतृत्व और कर्तव्यबोध के विषय में गहन मार्गदर्शन प्रदान करता है। आधुनिक वैश्विक और प्रतिस्पर्धात्मक संगठनात्मक वातावरण में संस्थानों को अनेक नैतिक चुनौतियों, हितधारकों के बीच हितों के टकराव तथा जटिल प्रबंधन संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में भगवद्गीता की शिक्षाएँ नैतिक नेतृत्व, उत्तरदायी निर्णय-निर्माण तथा संतुलित संगठनात्मक व्यवहार के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सकती हैं।

भगवद्गीता भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक प्रमुख दार्शनिक स्रोत है, जो नैतिक जिम्मेदारी, नेतृत्व की प्रकृति और मानव कर्म के उद्देश्य को समझने के लिए एक सशक्त वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करती है। यद्यपि यह ग्रंथ प्राचीन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में रचित है, तथापि इसके सिद्धांत आज के संगठनात्मक जीवन में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं, जहाँ नैतिक अनिश्चितता, प्रदर्शन का दबाव तथा मनोवैज्ञानिक तनाव सामान्य स्थिति बन चुके हैं।

यह शोध-पत्र भगवद्गीता के प्रमुख सिद्धांतों—धर्म, कर्मयोग, निष्काम कर्म, समभाव तथा यज्ञ—की समकालीन संगठनात्मक जीवन और नैतिक नेतृत्व के संदर्भ में प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि



गीता से प्रेरित सिद्धांत किस प्रकार नैतिक निर्णय-निर्माण, भावनात्मक संतुलन, सामूहिक उत्तरदायित्व तथा सतत संगठनात्मक विकास को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि गीता का कर्मयोग सिद्धांत नेताओं को कर्तव्यनिष्ठा, निस्वार्थता और उत्तरदायित्व की भावना के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। इसी प्रकार समभाव और निष्काम कर्म का सिद्धांत नेतृत्व को मानसिक संतुलन, निष्पक्षता तथा दीर्घकालिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। गीता का यह दृष्टिकोण भौतिक सफलता के साथ-साथ सामाजिक कल्याण, नैतिक उत्तरदायित्व और मानव मूल्यों के संतुलन पर बल देता है।

यह शोध मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों—जैसे पुस्तकों, शोध-पत्रों, दार्शनिक ग्रंथों तथा अकादमिक लेखों—पर आधारित है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यदि आधुनिक प्रबंधन और संगठनात्मक नेतृत्व में भगवद्गीता के सिद्धांतों को समुचित रूप से समाहित किया जाए, तो संगठनों में नैतिकता, कर्मचारी कल्याण, उत्तरदायी नेतृत्व तथा सतत विकास को सुदृढ़ किया जा सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि भगवद्गीता केवल एक आध्यात्मिक ग्रंथ ही नहीं, बल्कि एक समग्र और मूल्य-आधारित प्रबंधन दर्शन भी है, जो इक्कीसवीं सदी में संगठनों और नेताओं के समक्ष उपस्थित नैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा संस्थागत चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।

मुख्य शब्द-भगवद्गीता, भारतीय ज्ञान प्रणाली, नैतिक नेतृत्व, कर्मयोग, निष्काम कर्म, संगठनात्मक नैतिकता, कॉर्पोरेट गवर्नेंस, संगठनात्मक संस्कृति, प्रबंधन दर्शन, मानव उत्कृष्टता

1. परिचय

वर्तमान संगठनात्मक परिदृश्य तीव्र तकनीकी विकास, वैश्विक आर्थिक एकीकरण और बढ़ती प्रतिस्पर्धा से गहराई से प्रभावित है। डिजिटल तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और वैश्विक बाजारों के विस्तार ने संगठनों की कार्यप्रणाली, उत्पादकता और नवाचार क्षमता को नए आयाम दिए हैं। इसके साथ ही संगठनात्मक जीवन में नैतिक दुविधाएँ, नेतृत्व से जुड़ी चुनौतियाँ, कार्यस्थल तनाव, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व और सामाजिक अपेक्षाएँ भी बढ़ी हैं। इस कारण केवल आर्थिक सफलता पर आधारित प्रबंधन मॉडल अब पर्याप्त नहीं माने जाते; संगठनों के सतत विकास के लिए नैतिकता, पारदर्शिता और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी समान महत्व देना आवश्यक हो गया है।

आधुनिक नेतृत्व की अवधारणा भी इसी संदर्भ में विस्तृत हुई है। आज नेताओं से केवल प्रशासनिक दक्षता



या आर्थिक परिणामों की अपेक्षा नहीं की जाती, बल्कि उनसे नैतिक संवेदनशीलता, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, दीर्घकालिक दृष्टिकोण और संस्थागत विश्वास को बनाए रखने की जिम्मेदारी भी अपेक्षित होती है। हालांकि प्रबंधन सिद्धांतों का बड़ा भाग पश्चिमी परंपरा से विकसित हुआ है, जहाँ दक्षता और प्रतिस्पर्धा पर अधिक बल दिया गया है, वहीं इन प्रतिमानों में कई बार आंतरिक नैतिक अनुशासन और मानवीय मूल्यों जैसे आयाम अपेक्षाकृत कम दिखाई देते हैं। इसी कारण प्रबंधन अध्ययन में स्वदेशी ज्ञान परंपराओं की ओर पुनः ध्यान आकर्षित हुआ है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली इस संदर्भ में एक समृद्ध दार्शनिक आधार प्रदान करती है, जिसमें ज्ञान को नैतिकता, आत्मसंयम और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा गया है (Baig, 2014)। भारतीय दार्शनिक परंपरा के प्रमुख ग्रंथों में से भगवद्गीता को विशेष स्थान प्राप्त है, क्योंकि यह मानव जीवन की जटिल परिस्थितियों में कर्तव्य, नैतिकता और आत्मनियंत्रण के सिद्धांतों को स्पष्ट करती है (Dasgupta, 1991)। महाभारत के संदर्भ में कृष्ण और अर्जुन के संवाद के माध्यम से प्रस्तुत यह ग्रंथ उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ व्यक्ति नैतिक दुविधाओं और जिम्मेदारियों के बीच संतुलन खोजने का प्रयास करता है।

गीता का दर्शन कर्म, कर्तव्य और आंतरिक संतुलन पर आधारित है। निष्काम कर्म का सिद्धांत व्यक्ति को अपने दायित्वों का पालन स्वार्थ और फल की आसक्ति से मुक्त होकर करने की प्रेरणा देता है, जिससे नैतिक स्पष्टता और आत्मसंयम विकसित होता है (Bhatt, 2018)। इसी प्रकार कर्मयोग कार्य को केवल आर्थिक साधन के रूप में नहीं बल्कि जिम्मेदारी और आत्मविकास के माध्यम के रूप में देखने की प्रेरणा देता है। समभाव का सिद्धांत सफलता और असफलता जैसी परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखने की शिक्षा देता है, जो आधुनिक संगठनात्मक जीवन में विशेष रूप से प्रासंगिक है।

इस प्रकार भगवद्गीता केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह नेतृत्व, निर्णय-निर्माण और संगठनात्मक नैतिकता के लिए एक महत्वपूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। इसके सिद्धांत नेताओं को कर्तव्यनिष्ठा, नैतिक उत्तरदायित्व और संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देते हैं। इसी आधार पर यह अध्ययन समकालीन संगठनात्मक जीवन के संदर्भ में गीता के प्रमुख सिद्धांतों—जैसे कर्मयोग, निष्काम कर्म, धर्म और समभाव—की प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि ये सिद्धांत आधुनिक नेतृत्व और कॉर्पोरेट गवर्नेंस को किस प्रकार सुदृढ़ बना सकते हैं।

2. साहित्य समीक्षा

भारतीय ज्ञान प्रणाली विश्व की प्राचीन और व्यापक बौद्धिक परंपराओं में से एक है, जिसमें दार्शनिक



चिंतन के साथ-साथ नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व, आत्मविकास और मानव कल्याण से जुड़े विचार समाहित हैं। इस परंपरा में ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे जीवन को संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और नैतिक बनाने के साधन के रूप में समझा गया है ((बैंग, 2014))। भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह सैद्धांतिक चिंतन के साथ-साथ व्यावहारिक जीवन के लिए भी मार्गदर्शन प्रदान करता है। दासगुप्ता (1991) के अनुसार भारतीय दार्शनिक परंपरा मानव जीवन की वास्तविकताओं को समझते हुए नैतिक आचरण, आत्मबोध और सामाजिक जिम्मेदारी को विकसित करने पर बल देती है।

वैश्वीकरण और पश्चिमी प्रबंधन प्रतिमानों के प्रभाव के कारण लंबे समय तक शिक्षा और प्रबंधन अध्ययन में स्वदेशी ज्ञान परंपराओं को अपेक्षित महत्व नहीं मिला। किन्तु हाल के वर्षों में विद्वानों ने यह अनुभव किया है कि केवल आधुनिक प्रबंधन सिद्धांत संगठनात्मक जीवन की जटिल नैतिक और सामाजिक चुनौतियों का पूर्ण समाधान प्रदान नहीं कर सकते। इस संदर्भ में चौधरी (2018) ने यह सुझाव दिया है कि स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को पुनः प्रासंगिक बनाना आवश्यक है, क्योंकि वे समाज को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हुए मूल्य-आधारित दृष्टिकोण प्रदान करती हैं।

भारतीय दार्शनिक परंपरा के प्रमुख ग्रंथों में भगवद्गीता का विशेष स्थान है। यह ग्रंथ मानव जीवन, कर्तव्य और नैतिकता के प्रश्नों को गहराई से संबोधित करता है तथा व्यक्ति को अपने दायित्वों का पालन करते हुए मानसिक संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देता है। गीता में वर्णित कर्मयोग, निष्काम कर्म, धर्म और समभाव जैसे सिद्धांत व्यक्ति के आचरण और निर्णय-निर्माण के लिए एक संतुलित दार्शनिक ढाँचा प्रस्तुत करते हैं। इसी कारण कई विद्वानों ने गीता को नेतृत्व और प्रबंधन के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण माना है।

भट्ट (2018) के अनुसार गीता के सिद्धांत आधुनिक प्रबंधन के विभिन्न आयामों—जैसे नेतृत्व विकास, निर्णय-निर्माण और संगठनात्मक व्यवहार—में उपयोगी हो सकते हैं। कर्मयोग का सिद्धांत कार्य को कर्तव्य और सामाजिक योगदान के रूप में देखने की प्रेरणा देता है, जबकि निष्काम कर्म नेताओं को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर निष्पक्ष और नैतिक निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है। इसी प्रकार समकालीन संगठनात्मक अध्ययन में नैतिक नेतृत्व की अवधारणा को भी महत्वपूर्ण माना गया है। चौहान और माहेश्वरी (2023) का मत है कि गीता से प्रेरित नेतृत्व मॉडल संगठनात्मक संस्कृति में पारदर्शिता, विश्वास और उत्तरदायित्व को सुदृढ़ कर सकते हैं।

शिक्षा और नेतृत्व विकास के संदर्भ में भी कई विद्वानों ने प्राचीन भारतीय ग्रंथों के महत्व को रेखांकित



किया है। रामासामी (2017) के अनुसार आधुनिक शिक्षा केवल तकनीकी ज्ञान तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसमें नैतिकता और मानवीय मूल्यों का भी समावेश होना चाहिए। इसी प्रकार कृष्णमूर्ति (1981) ने आत्मजागरूकता और आंतरिक अनुशासन को वास्तविक ज्ञान का आधार बताया है, जबकि विवेकानंद (2004) ने गीता के संदेश को आत्मसंयम, कर्तव्यनिष्ठा और मानव सेवा से जोड़ा है।

उपलब्ध साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि भगवद्गीता के सिद्धांत नेतृत्व, नैतिकता और संगठनात्मक व्यवहार के अध्ययन में महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। फिर भी आधुनिक प्रबंधन शोध में इन सिद्धांतों के व्यवस्थित और व्यावहारिक विश्लेषण की संख्या अभी सीमित है। इसी अंतर को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन गीता के प्रमुख सिद्धांतों की प्रासंगिकता को समकालीन संगठनात्मक जीवन, नैतिक नेतृत्व और कॉर्पोरेट गवर्नेंस के संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

3. शोध उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य समकालीन संगठनात्मक जीवन और आधुनिक प्रबंधन के संदर्भ में भगवद्गीता के सिद्धांतों की प्रासंगिकता को समझना और उनका विश्लेषण करना है। विशेष रूप से यह शोध यह जांचने का प्रयास करता है कि गीता में वर्णित नैतिक और दार्शनिक विचार आधुनिक नेतृत्व, संगठनात्मक संस्कृति तथा कॉर्पोरेट गवर्नेंस को किस प्रकार प्रभावित और सुदृढ़ कर सकते हैं।

अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. भगवद्गीता के प्रमुख सिद्धांतों—कर्मयोग, निष्काम कर्म, धर्म और समभाव—की नैतिक नेतृत्व के संदर्भ में प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
2. यह समझना कि गीता से प्रेरित नेतृत्व संगठनात्मक संस्कृति, कर्मचारियों के व्यवहार और संस्थागत विश्वास को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है।
3. आधुनिक कॉर्पोरेट गवर्नेंस के संदर्भ में गीता के नैतिक सिद्धांतों की उपयोगिता का अध्ययन करना, विशेष रूप से पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और न्यायपूर्ण निर्णय-निर्माण के संदर्भ में।

4. अनुसंधान पद्धति

इस अध्ययन का उद्देश्य समकालीन संगठनात्मक जीवन और नैतिक नेतृत्व के संदर्भ में भगवद्गीता के सिद्धांतों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शोध में मुख्यतः गुणात्मक अनुसंधान पद्धति को अपनाया गया है, जो दार्शनिक और वैचारिक विषयों के गहन विश्लेषण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।



अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसके अंतर्गत विभिन्न पुस्तकों, शोध-पत्रों, अकादमिक लेखों तथा प्रबंधन और भारतीय दर्शन से संबंधित साहित्य का अध्ययन किया गया।

शोध में व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए भगवद्गीता के प्रमुख सिद्धांतों—जैसे कर्मयोग, निष्काम कर्म, धर्म और समभाव—का अध्ययन किया गया तथा यह विश्लेषण किया गया कि ये सिद्धांत आधुनिक संगठनात्मक जीवन, नैतिक नेतृत्व और कॉर्पोरेट गवर्नेंस के संदर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक हैं। चयनित साहित्य के विषयगत और तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से विभिन्न विद्वानों के विचारों को समन्वित करते हुए एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया।

इस प्रकार यह अध्ययन एक **वैचारिक और विश्लेषणात्मक गुणात्मक शोध** है, जिसका उद्देश्य भगवद्गीता के दार्शनिक सिद्धांतों और आधुनिक संगठनात्मक संदर्भों के बीच संबंधों को स्पष्ट करना है।

5. भारतीय ज्ञान प्रणाली के भीतर भगवद्गीता

भारतीय ज्ञान प्रणाली एक समृद्ध और बहुआयामी बौद्धिक परंपरा है, जिसका विकास हजारों वर्षों में हुआ है। इसमें दर्शन, नैतिकता, शासन, शिक्षा, मनोविज्ञान और आध्यात्मिक चिंतन जैसे विविध क्षेत्रों का समावेश है। इस परंपरा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि मानव जीवन को नैतिक, संतुलित और उद्देश्यपूर्ण बनाना भी रहा है। भारतीय चिंतन में ज्ञान, आचरण और सामाजिक उत्तरदायित्व को परस्पर जुड़ा हुआ माना गया है, जहाँ वास्तविक ज्ञान वही है जो व्यक्ति और समाज दोनों के कल्याण में योगदान दे।

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रमुख स्रोतों में वेद, उपनिषद, महाकाव्य और विभिन्न दार्शनिक विद्यालय शामिल हैं। वेद ब्रह्मांड और जीवन के मूल सिद्धांतों की व्याख्या करते हैं, जबकि उपनिषद आत्मा और ब्रह्म से संबंधित गहन दार्शनिक चिंतन प्रस्तुत करते हैं। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य मानव जीवन के नैतिक और सामाजिक आयामों को कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। इसी परंपरा के भीतर भगवद्गीता का विशेष स्थान है, क्योंकि यह विभिन्न दार्शनिक विचारों—जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—का समन्वय प्रस्तुत करती है (दासगुप्ता, 1991)।

भगवद्गीता का संवाद उस समय होता है जब अर्जुन युद्धभूमि में अपने कर्तव्य को लेकर गहरी नैतिक



दुविधा में होते हैं। इस स्थिति में भगवान कृष्ण उन्हें धर्म, कर्म और आत्मसंयम के सिद्धांतों के माध्यम से मार्गदर्शन देते हैं (ज़ेह्नर, 1969)। अर्जुन का यह संकट केवल ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों का प्रतीक है जहाँ व्यक्ति को जटिल नैतिक निर्णय लेने पड़ते हैं। आधुनिक संगठनात्मक जीवन में भी नेताओं को अक्सर इसी प्रकार के नैतिक और व्यावहारिक द्वंद्वों का सामना करना पड़ता है।

गीता के प्रमुख सिद्धांत—धर्म, कर्मयोग, निष्काम कर्म, समभाव और यज्ञ—नेतृत्व और सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। धर्म नैतिक कर्तव्य और जिम्मेदारी को दर्शाता है, जबकि कर्मयोग समर्पण और निष्ठा के साथ अपने कार्य को करने की प्रेरणा देता है। निष्काम कर्म का सिद्धांत सिखाता है कि व्यक्ति को अपने कार्य को फल की अपेक्षा से मुक्त होकर करना चाहिए, जिससे मानसिक संतुलन और स्वतंत्रता प्राप्त होती है (भट्ट, 2018)। इसी प्रकार समभाव सफलता-असफलता जैसी परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखने की शिक्षा देता है, जो आधुनिक नेतृत्व के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण गुण है।

इसके अतिरिक्त, यज्ञ की अवधारणा सामूहिक उत्तरदायित्व और सहयोग की भावना को दर्शाती है, जहाँ व्यक्ति अपने कार्य को व्यापक सामाजिक हित से जोड़ता है। इस प्रकार भगवद्गीता भारतीय ज्ञान प्रणाली के भीतर एक समन्वित दार्शनिक ढाँचा प्रस्तुत करती है, जो नैतिकता, कर्तव्य और आत्मसंयम को नेतृत्व और सामाजिक जीवन का आधार मानता है।

अंततः, भगवद्गीता केवल एक आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह आधुनिक नेतृत्व और प्रबंधन के लिए भी मूल्य-आधारित और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रदान करती है। इसके सिद्धांत समकालीन संगठनों में नैतिक नेतृत्व, संतुलित निर्णय-निर्माण और जिम्मेदार प्रबंधन को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

6. नेतृत्व के नैतिक आधार के रूप में धर्म

भगवद्गीता में धर्म को मानव जीवन के नैतिक और सामाजिक आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धर्म का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस व्यापक नैतिक व्यवस्था को



दर्शाता है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने कर्तव्यों, जिम्मेदारियों और सामाजिक दायित्वों को समझता है। गीता में धर्म को एक कठोर नियम के रूप में नहीं, बल्कि एक संदर्भगत नैतिक सिद्धांत के रूप में देखा गया है जो व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुसार न्यायपूर्ण और जिम्मेदार आचरण करने के लिए प्रेरित करता है (दासगुप्ता, 1991)।

अर्जुन के नैतिक संकट के माध्यम से गीता धर्म की अवधारणा को स्पष्ट करती है। युद्धभूमि में अर्जुन अपने कर्तव्य को लेकर दुविधा में पड़ जाते हैं, तब भगवान कृष्ण उन्हें यह समझाते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का एक विशिष्ट कर्तव्य होता है जिसे व्यापक नैतिक व्यवस्था और सामाजिक उत्तरदायित्व के अनुरूप निभाना चाहिए (ज़ेहनर, 1969)। इस प्रकार धर्म व्यक्ति को सही आचरण का मार्गदर्शन प्रदान करता है।

नेतृत्व के संदर्भ में धर्म विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है। आधुनिक संगठनों में नेतृत्व केवल अधिकार का प्रयोग नहीं, बल्कि नैतिकता, पारदर्शिता और सामाजिक जिम्मेदारी का पालन भी है। धर्म नेतृत्व को एक नैतिक आधार प्रदान करता है, जो नेताओं को यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि उनके निर्णय कर्मचारियों, हितधारकों और समाज पर प्रभाव डालते हैं। इसलिए एक जिम्मेदार नेता को अपने निर्णयों में व्यापक सामाजिक और नैतिक परिणामों को ध्यान में रखना चाहिए।

धर्म-आधारित नेतृत्व में ईमानदारी, निष्पक्षता, पारदर्शिता, करुणा और उत्तरदायित्व जैसे गुण महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ऐसे नेता व्यक्तिगत लाभ के बजाय संगठन और समाज के व्यापक हित को प्राथमिकता देते हैं तथा कर्मचारियों के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं। इससे संगठन में विश्वास, सम्मान और सकारात्मक कार्य-संस्कृति विकसित होती है।

आधुनिक प्रबंधन अध्ययन में भी नैतिक नेतृत्व (Ethical Leadership) को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है, जो सत्यनिष्ठा, न्याय और जवाबदेही जैसे मूल्यों पर आधारित होता है (चौहान एवं माहेश्वरी, 2023)। इसी प्रकार कॉर्पोरेट गवर्नेंस की अवधारणा भी पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और नैतिकता पर बल देती है, जो गीता के धर्म सिद्धांत के साथ सामंजस्य रखती है।

अंततः, गीता का धर्म सिद्धांत यह सिखाता है कि नैतिक आचरण केवल बाहरी नियमों से नहीं, बल्कि व्यक्ति की आंतरिक चेतना और आत्मानुशासन से उत्पन्न होना चाहिए। जब नेता इस आंतरिक नैतिकता



को अपनाते हैं, तो वे संगठन में विश्वास, स्थिरता और दीर्घकालिक सफलता को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार धर्म आधुनिक नेतृत्व और संगठनात्मक जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण नैतिक मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

7. निष्काम कर्म और नैतिक निर्णय-निर्माण

भगवद्गीता के दार्शनिक विचारों में निष्काम कर्म का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इसका अर्थ है—अपने कर्तव्यों का पालन पूरी निष्ठा और ईमानदारी से करना, लेकिन उनके परिणामों के प्रति अत्यधिक आसक्ति न रखना। गीता के प्रसिद्ध श्लोक.....

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”

(भगवद् गीता 2.47)

के अनुसार मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने पर है, न कि उसके फल पर। यह सिद्धांत व्यक्ति को अपने कार्य को समर्पण और जिम्मेदारी के साथ करने की प्रेरणा देता है, जबकि परिणामों के प्रति अत्यधिक चिंता से मुक्त रहने का संदेश देता है (भट्ट, 2018)।

आधुनिक संगठनात्मक जीवन में यह सिद्धांत विशेष रूप से प्रासंगिक है। वर्तमान कॉर्पोरेट वातावरण में अक्सर लाभ, प्रतिस्पर्धा और प्रदर्शन लक्ष्यों पर अत्यधिक जोर दिया जाता है, जिससे कर्मचारियों और नेताओं पर दबाव बढ़ सकता है। कई बार परिणामों पर अत्यधिक ध्यान अनैतिक व्यवहार, अल्पकालिक सोच और मानसिक तनाव को भी जन्म देता है। ऐसे में निष्काम कर्म का सिद्धांत एक संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो कार्य की गुणवत्ता, नैतिकता और कर्तव्यपरायणता पर ध्यान केंद्रित करने की प्रेरणा देता है।

नेतृत्व और नैतिक निर्णय-निर्माण के संदर्भ में यह सिद्धांत विशेष महत्व रखता है। जब नेता केवल परिणामों—जैसे लाभ या प्रतिष्ठा—पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो वे अल्पकालिक लाभ के लिए ऐसे निर्णय ले सकते हैं जो दीर्घकाल में हानिकारक सिद्ध हों। इसके विपरीत निष्काम कर्म का दृष्टिकोण नेताओं को नैतिकता, न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व को प्राथमिकता देने के लिए प्रेरित करता है।

इसके अतिरिक्त यह सिद्धांत व्यक्तियों और नेताओं को मानसिक संतुलन, भावनात्मक स्थिरता और लचीलेपन (resilience) का विकास करने में भी सहायता करता है। जब व्यक्ति अपने प्रयासों पर ध्यान



केंद्रित करता है और परिणामों की अत्यधिक चिंता से मुक्त रहता है, तो वह चुनौतियों और असफलताओं का सामना अधिक सकारात्मक और संतुलित दृष्टिकोण से कर सकता है ।

संगठनात्मक स्तर पर निष्काम कर्म सहयोग, विश्वास और नैतिकता पर आधारित सकारात्मक कार्य-संस्कृति को भी बढ़ावा देता है। जब नेता इस सिद्धांत को अपनाते हैं, तो वे कर्मचारियों को प्रेरित करते हैं कि वे अपने कार्य को केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि संगठन और समाज के व्यापक हित के लिए करें।

इस प्रकार भगवद्गीता का निष्काम कर्म सिद्धांत आधुनिक नेतृत्व और संगठनात्मक जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण नैतिक मार्गदर्शक प्रदान करता है। यह व्यक्तियों और नेताओं को कर्तव्यनिष्ठा, नैतिकता और संतुलित दृष्टिकोण के साथ कार्य करने की प्रेरणा देता है, जिससे दीर्घकालिक संगठनात्मक सफलता और सामाजिक कल्याण दोनों को प्रोत्साहन मिलता है।

8. कर्मयोग: अनुशासित और सार्थक क्रिया के रूप में कार्य

भगवद्गीता के दार्शनिक संदेश में **कर्मयोग** की अवधारणा केंद्रीय स्थान रखती है। कर्मयोग वह सिद्धांत है जो कार्य, कर्तव्य और नैतिक जिम्मेदारी के बीच संतुलन स्थापित करता है। गीता के अनुसार मानव जीवन में कर्म अनिवार्य है और कोई भी व्यक्ति कर्म किए बिना नहीं रह सकता। इसलिए मुक्ति या आत्मिक उन्नति का मार्ग कर्म से पलायन में नहीं, बल्कि कर्तव्य को सही दृष्टिकोण के साथ निभाने में निहित है।

गीता यह स्पष्ट करती है कि आध्यात्मिकता का अर्थ संसार से दूर भागना नहीं, बल्कि जीवन की जिम्मेदारियों को निष्ठा, अनुशासन और जागरूकता के साथ निभाना है। भगवान कृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि कर्तव्यों से बचना व्यक्ति को आंतरिक शांति नहीं देता, बल्कि असंतोष और नैतिक संघर्ष को बढ़ाता है । इसलिए कर्मयोग का मूल संदेश है कि व्यक्ति अपने कार्य को समर्पण, सचेतनता और कर्तव्यभाव के साथ करे, जबकि अहंकार, स्वार्थ और अत्यधिक फल-आसक्ति से दूर रहे ।

आधुनिक संगठनात्मक जीवन में कर्मयोग का सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक है। वर्तमान कार्यस्थलों में प्रतिस्पर्धा, कार्यभार और प्रदर्शन के दबाव के कारण तनाव, मानसिक थकान और असंतोष जैसी समस्याएँ



बढ़ रही हैं। जब कार्य को केवल वेतन या पदोन्नति प्राप्त करने का साधन माना जाता है, तो वह प्रेरणा के बजाय दबाव का कारण बन सकता है। कर्मयोग इस स्थिति में कार्य के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जहाँ कार्य को आत्मविकास, सामाजिक योगदान और नैतिक जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है।

नेतृत्व के संदर्भ में भी कर्मयोग महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है। जब नेता अनुशासन, समर्पण और नैतिक उद्देश्य के साथ कार्य करते हैं, तो वे कर्मचारियों के लिए प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इससे संगठन में विश्वास, सहयोग और जिम्मेदारी की संस्कृति विकसित होती है।

इसके अतिरिक्त कर्मयोग सचेतनता), आत्मअनुशासन और लचीलेपन जैसे गुणों को भी विकसित करता है। जब व्यक्ति अपने कार्य को उद्देश्य और अर्थ से जोड़कर करता है, तो उसकी कार्यक्षमता, रचनात्मकता और संतुष्टि दोनों बढ़ती हैं। इस प्रकार कर्मयोग कार्य को केवल पेशेवर गतिविधि न मानकर एक नैतिक और सामाजिक योगदान के रूप में स्थापित करता है।

अतः भगवद्गीता का कर्मयोग सिद्धांत आधुनिक नेतृत्व और संगठनात्मक जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक है। यह नेताओं और कर्मचारियों दोनों को प्रेरित करता है कि वे अपने कार्य को समर्पण, अनुशासन और नैतिक उद्देश्य के साथ करें, जिससे संगठन में सकारात्मक संस्कृति, दीर्घकालिक प्रभावशीलता और सतत विकास को बढ़ावा मिल सके।

9. समभाव: भावनात्मक संतुलन और मनोवैज्ञानिक लचीलापन

भगवद्गीता के दार्शनिक संदेश में **समभाव** की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। समभाव का अर्थ है जीवन की विभिन्न परिस्थितियों—जैसे सफलता और असफलता, लाभ और हानि, सुख और दुख—में मानसिक संतुलन बनाए रखना। गीता के अनुसार व्यक्ति को इन परिस्थितियों में समान दृष्टि रखते हुए आत्मनियंत्रण और आंतरिक स्थिरता बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए। यह सिद्धांत व्यक्ति को स्पष्ट सोच और संतुलित निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करता है।

समभाव केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक जीवन से भी जुड़ा है। जब व्यक्ति अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर पाता है और परिस्थितियों से अत्यधिक



प्रभावित नहीं होता, तब वह अधिक विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम होता है। इसलिए गीता में समभाव को मानसिक परिपक्वता और नेतृत्व क्षमता का महत्वपूर्ण गुण माना गया है।

नेतृत्व के संदर्भ में समभाव विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि नेताओं को अक्सर जटिल और दबावपूर्ण परिस्थितियों में निर्णय लेने पड़ते हैं। यदि नेता भावनात्मक आवेग में निर्णय लेते हैं, तो इससे संगठनात्मक परिणाम प्रभावित हो सकते हैं। इसके विपरीत समभाव रखने वाले नेता संकट और चुनौतियों के समय भी शांत, संतुलित और विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।

आधुनिक संगठनात्मक वातावरण में प्रतिस्पर्धा, अनिश्चितता और परिवर्तन के कारण तनाव और मानसिक दबाव बढ़ गया है। ऐसे में समभाव का सिद्धांत भावनात्मक संतुलन और मानसिक लचीलेपन के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह व्यक्ति को बाहरी परिस्थितियों के प्रभाव से ऊपर उठकर आंतरिक स्थिरता बनाए रखने की प्रेरणा देता है।

समकालीन प्रबंधन अध्ययन में **भावनात्मक बुद्धिमत्ता** को भी नेतृत्व का महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। गीता का समभाव सिद्धांत इसी भावनात्मक संतुलन का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। समभाव विकसित करने वाले नेता तनाव प्रबंधन, संघर्ष समाधान और संतुलित प्रतिक्रिया देने में अधिक सक्षम होते हैं।

इसके अतिरिक्त समभाव संगठनात्मक संस्कृति को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। संतुलित और संयमित नेता कर्मचारियों में विश्वास, सुरक्षा और सहयोग की भावना विकसित करते हैं, जिससे संगठन में स्वस्थ और स्थिर कार्य वातावरण बनता है।

इस प्रकार भगवद्गीता का समभाव सिद्धांत आधुनिक नेतृत्व के लिए एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक और नैतिक आधार प्रदान करता है। यह नेताओं को भावनात्मक संतुलन, मानसिक लचीलापन और विवेकपूर्ण निर्णय-निर्माण की दिशा में प्रेरित करता है, जिससे संगठन में विश्वास, स्थिरता और सतत विकास को बढ़ावा मिलता है।

10. संगठनों में यज्ञ और सामूहिक जिम्मेदारी

व्यक्तिगत नैतिकता से परे, भगवद् गीता यज्ञ की अवधारणा का परिचय देती है, जो सहयोग, आपसी



निर्भरता और सामूहिक जिम्मेदारी का प्रतीक है। भगवद्गीता में यज्ञ की अवधारणा केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सहयोग, परस्पर निर्भरता और सामूहिक जिम्मेदारी का प्रतीक है। संगठनात्मक संदर्भ में यज्ञ का अर्थ है—व्यक्तिगत प्रयासों को सामूहिक लक्ष्यों और साझा मूल्यों के साथ जोड़ना।

संगठनात्मक दृष्टि से, यज्ञ सामूहिक लक्ष्यों और साझा मूल्यों के साथ व्यक्तिगत प्रयासों के संरेखण का प्रतिनिधित्व करता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

(भगवद् गीता 3.21)

" यह श्लोक संगठनात्मक संस्कृति पर नेतृत्व आचरण के प्रभाव को रेखांकित करता है। नेता न केवल नीतियों के माध्यम से बल्कि व्यक्तिगत उदाहरण के माध्यम से मानदंडों को आकार देते हैं। यज्ञ की अवधारणा इस विचार को पुष्ट करती है कि संगठनात्मक सफलता अलग-अलग व्यक्तिगत उपलब्धि के बजाय सहयोग, विश्वास और साझा उद्देश्य पर निर्भर करती है।

परिणामों को प्रसाद, या अनुग्रह के रूप में स्वीकार करना, विनम्रता और कृतज्ञता को और विकसित करता है। ऐसा दृष्टिकोण पात्रता को कम करता है, असफलता से सीखने को प्रोत्साहित करता है, और संगठनात्मक सद्भाव का समर्थन करता है।

से ही नहीं, बल्कि अपने व्यक्तिगत उदाहरण से भी संगठन में मानदंड और व्यवहारिक मूल्यों को स्थापित करते हैं।

यज्ञ की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि संगठनात्मक सफलता केवल व्यक्तिगत उपलब्धियों पर नहीं, बल्कि सहयोग, विश्वास और साझा उद्देश्य पर आधारित होती है। जब व्यक्ति अपने कार्य को सामूहिक हित से जोड़कर देखते हैं, तो संगठन में टीमवर्क, जिम्मेदारी और समर्पण की भावना विकसित होती है।

इसके साथ ही गीता यह भी सिखाती है कि कार्य के परिणामों को प्रसाद या अनुग्रह के रूप में स्वीकार करना चाहिए। यह दृष्टिकोण विनम्रता और कृतज्ञता को बढ़ावा देता है, असफलताओं से सीखने की प्रेरणा देता है और संगठन में सद्भावपूर्ण वातावरण बनाए रखने में सहायक होता है। इस प्रकार यज्ञ की



अवधारणा सहयोगात्मक नेतृत्व और स्वस्थ संगठनात्मक संस्कृति के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती है।

11. भगवद्गीता और कॉर्पोरेट गवर्नेंस

आधुनिक कॉर्पोरेट गवर्नेंस ढाँचे में नैतिक आचरण, पारदर्शिता और हितधारकों के प्रति जिम्मेदारी को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इस संदर्भ में भगवद्गीता इन सिद्धांतों को और मजबूत बनाती है, क्योंकि यह बाहरी जवाबदेही के साथ आंतरिक आत्म-नियमन और नैतिक अनुशासन पर भी बल देती है। गीता के अनुसार नेतृत्व केवल नियमों के पालन तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें नैतिक कर्तव्य, आत्मसंयम और दीर्घकालिक दृष्टिकोण भी शामिल होना चाहिए।

इस प्रकार भगवद्गीता के सिद्धांत कॉर्पोरेट गवर्नेंस को एक व्यापक नैतिक आधार प्रदान करते हैं, जो संगठनों में जिम्मेदार नेतृत्व, पारदर्शिता और सतत संगठनात्मक विकास को प्रोत्साहित करने में सहायक होते हैं।

12. गीता को समकालीन प्रबंधन विचार के साथ एकीकृत करना

आधुनिक प्रबंधन सिद्धांतों ने संगठनों की कार्यक्षमता, उत्पादकता और प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रबंधन के विभिन्न सिद्धांत—जैसे वैज्ञानिक प्रबंधन, मानव संबंध सिद्धांत, रणनीतिक प्रबंधन और नेतृत्व सिद्धांत—संगठनात्मक संरचना और प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए विकसित किए गए हैं। हालांकि, इन सिद्धांतों का प्रमुख ध्यान अक्सर दक्षता, लाभ और परिणामों पर केंद्रित रहा है, जबकि नेतृत्व के नैतिक, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक आयाम अपेक्षाकृत कम महत्व प्राप्त करते रहे हैं।

वर्तमान समय में संगठनों को केवल आर्थिक सफलता ही नहीं, बल्कि नैतिक जिम्मेदारी, सामाजिक उत्तरदायित्व, कर्मचारी कल्याण और दीर्घकालिक स्थिरता जैसे अनेक जटिल मुद्दों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे संदर्भ में प्रबंधन के पारंपरिक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं माने जाते। इस स्थिति में भगवद्गीता जैसे दार्शनिक ग्रंथ आधुनिक प्रबंधन विचार को एक व्यापक और मानवीय दृष्टिकोण प्रदान कर सकते हैं।

भगवद्गीता नेतृत्व और कार्य के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जिसमें प्रदर्शन और उद्देश्य, अनुशासन और करुणा, तथा सफलता और जिम्मेदारी के बीच संतुलन स्थापित किया जाता है। यह



संतुलन आधुनिक संगठनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि केवल परिणाम-केंद्रित दृष्टिकोण अक्सर कर्मचारियों में तनाव, असंतोष और नैतिक दुविधाओं को जन्म देता है .

गीता के सिद्धांतों को समकालीन प्रबंधन विचार के साथ एकीकृत करने के लिए सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि गीता केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह मानव व्यवहार, निर्णय-निर्माण और नेतृत्व से संबंधित गहन दार्शनिक अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। यदि इसे धार्मिक सिद्धांत के रूप में नहीं बल्कि मानवीय और दार्शनिक ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया जाए, तो यह विभिन्न सांस्कृतिक और संगठनात्मक संदर्भों में समान रूप से उपयोगी हो सकती है

13. चुनौतियाँ और अवसर

संगठनात्मक संदर्भों में भगवद्गीता के सिद्धांतों को लागू करने में कुछ चुनौतियाँ सामने आती हैं। सबसे प्रमुख चुनौती इसकी धार्मिक प्रकृति को लेकर बनी हुई गलत धारणाएँ हैं। कई बार यह माना जाता है कि गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ है और इसलिए इसे आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष और बहुसांस्कृतिक संगठनों में लागू करना उपयुक्त नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, प्रबंधन अध्ययन में लंबे समय तक पश्चिमी सिद्धांतों का प्रभुत्व रहा है, जिसके कारण स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों) को अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाया है

हालाँकि, वर्तमान समय में स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। संगठनों में नैतिक नेतृत्व, सतत विकास और मानसिक कल्याण जैसे विषयों पर बढ़ती रुचि ने गीता के सिद्धांतों को समझने और अपनाने के लिए नए अवसर प्रदान किए हैं .यदि गीता को धार्मिक शिक्षाओं के बजाय दार्शनिक और नैतिक दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया जाए, तो इसके विचार आधुनिक नेतृत्व विकास, संगठनात्मक नैतिकता और कर्मचारी कल्याण कार्यक्रमों में प्रभावी रूप से उपयोग किए जा सकते हैं।

इस प्रकार, यद्यपि कुछ वैचारिक और सांस्कृतिक चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी समकालीन प्रबंधन में नैतिकता और मानवीय मूल्यों की बढ़ती आवश्यकता भगवद्गीता के सिद्धांतों के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करती है।

14. निष्कर्ष

भगवद्गीता नैतिक नेतृत्व, अनुशासित कर्म और संतुलित संगठनात्मक जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण



और कालातीत दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती है। इसमें वर्णित धर्म, कर्म योग, निष्काम कर्म, समभाव और यज्ञ जैसे सिद्धांत व्यक्ति और संगठन दोनों के लिए नैतिक दिशा प्रदान करते हैं . ये सिद्धांत आधुनिक संगठनों के सामने आने वाली नैतिक, मनोवैज्ञानिक और प्रबंधकीय चुनौतियों को समझने और उनका संतुलित समाधान खोजने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं).

वर्तमान समय में जब संगठन अनिश्चितता, प्रतिस्पर्धा और नैतिक जटिलताओं का सामना कर रहे हैं, तब गीता का दर्शन नेताओं को जिम्मेदारी, आत्मसंयम और नैतिक निर्णय-निर्माण की प्रेरणा देता है। इस दृष्टि से गीता केवल एक आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह आधुनिक नेतृत्व और प्रबंधन के लिए व्यावहारिक दार्शनिक मार्गदर्शन भी प्रदान करती है.

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ पुनः जुड़ाव आधुनिक संगठनों को अधिक नैतिक, लचीला और मानव-केंद्रित बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ

1. बैग, एके (2014) भारतीय ज्ञान प्रणाली: इतिहास और विकास। नई दिल्ली: ज्ञान पब्लिशिंग हाउस।
2. भगवद गीता। (2003)। भगवद गीता (द. राधाकृष्णन, ट्रांस। नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स।
3. भगवद गीता। (2015). श्रीमद्भगवद गीता (स्वामी गंभीरानंद, ट्रांस। कोलकाता: अद्वैत आश्रम।
4. चक्रवर्ती, एसके (1995) प्रबंधन में नैतिकता: वेदांत दृष्टिकोण। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. चक्रवर्ती, एस.के., और चक्रवर्ती, पी. (2017) एक प्रबंधकीय अवधारणा के रूप में कर्तव्य: भगवद गीता से अंतर्दृष्टि। इंडियन जर्नल ऑफ इंडस्ट्रियल रिलेशंस, 53(2), 221-234।
6. चौधरी, वीके (2018) वैश्वीकृत दुनिया में स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को पुनः प्राप्त करना। नई दिल्ली: स्प्रिंगर।
7. दलाल, एस (2010) गीता को जीना: कर्म की भावना। नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया।
8. दासगुप्ता, एसएन (1991) भारतीय दर्शन। नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
9. गुप्ता, बी. (2012) नैतिकता, नेतृत्व और भगवद गीता। नई दिल्ली: स्प्रिंगर।
10. अयंगर, बीकेएस (2002) दैनिक जीवन के लिए भगवद गीता। मुंबई: जैको पब्लिशिंग हाउस।
11. मुखर्जी, एस. (एनडी) भगवद गीता: आधुनिक प्रबंधन का प्रमुख स्रोत। डिब्रूगढ़: सेंटर फॉर मैनेजमेंट स्टडीज।
12. राधाकृष्णन, एस. (1951) भारतीय दर्शन (खंड 1-2) लंदन: जॉर्ज एलन और अनविन।



13. राव, एस. (2018) भारतीय ज्ञान प्रणाली और प्रबंधन शिक्षा। *जर्नल ऑफ इंडियन नॉलेज सिस्टम्स*, 1(1), 23-35।
14. शर्मा, एस., और तलवार, बी. (2007) मूल्य-आधारित प्रबंधन: भगवद गीता परिप्रेक्ष्य। *प्रबंधन और श्रम अध्ययन*, 32(3), 345-359।
15. सिंह, एन., और कृष्णन, वीआर (2008) आत्म-बलिदान और परिवर्तनकारी नेतृत्व: भारत से साक्ष्य, *नेतृत्व और संगठन विकास जर्नल*, 29(3), 261-275।
16. सिन्हा, जेबीपी (2014) *भारत में संस्कृति और नेतृत्व* नई दिल्ली: ऋषि प्रकाशन।
17. विवेकानंद, एस. (2004) *स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण रचनाएँ* (खंड 1-8)। कोलकाता: अद्वैत आश्रम।
18. जेहनर, आरसी (1969) *भगवद गीता: एक नया अनुवाद*। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
19. पतंजलि। (सं. *योग सूत्र*, गोरखपुर: गीता प्रेस।
20. स्वामी विवेकानन्द. (2014). *राजयोग*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम।
21. स्वामी रामदेव. (2016). *योग: एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण*. हरिद्वार: पतंजलि योगपीठ।
22. योगेन्द्र, स्वामी. (2018). *योग और स्वस्थ जीवन*. नई दिल्ली: नवभारत प्रकाशन।
23. भारत सरकार, आयुष मंत्रालय. (2021). *योग और जीवनशैली*. नई दिल्ली: आयुष मंत्रालय।
24. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS). (2020). *योग द्वारा तनाव प्रबंधन*. नई दिल्ली।
25. **कल्याण (योगांक)**. (विभिन्न वर्ष). गोरखपुर: गीता प्रेस।
26. **योग संदेश**। हरिद्वार: पतंजलि योगपीठ द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका।
27. **दैनिक जागरण**. (विभिन्न तिथियाँ). योग, नैतिकता एवं कार्यस्थल जीवन पर संपादकीय लेख।
28. **हिंदुस्तान**. (विभिन्न तिथियाँ). योग, मानसिक स्वास्थ्य एवं नेतृत्व पर लेख।
29. **नवभारत टाइम्स**. (विभिन्न तिथियाँ). योग, कर्मयोग और जीवन मूल्यों पर स्तंभ।



गीता के कर्मयोग, नैतिक जीवन एवं नेतृत्व का मनुष्य जीवन में आध्यात्मिक प्रभाव

कुमारी शीतला

शोधछात्रा

दर्शनविभाग केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयभोपाल परिसर

सारांश

भारतीय ज्ञान परम्परा के विविध शाखाओं में श्री मद्भागवत गीता का धार्मिक और आध्यात्मिक रूप से ही नहीं अपितु दार्शनिक ग्रंथ के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है। यह ग्रंथ महाभारत के भीष्मपर्व में संग्रहीत हैं। जिसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य हुए संवाद में मानव जीवन के विविध गूढतम समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। युद्ध की तनावपूर्ण स्थिति में भी आत्मा, कर्म, धर्म, योग और मुक्ति जैसे दार्शनिक विषयों में व्याख्या करता है। गीता के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यह केवल तत्कालीन सन्दर्भों तक सीमित नहीं है अपितु सार्वभौमिक और सर्वकालिक है। गीता का उपदेश नैतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक रूप से मानव जीवन को दिशा प्रदान करता है। वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का हास हो रहा है, ऐसे में गीता का ज्ञान अत्यंत प्रासंगिक है। गीता भारतीय संस्कृति, आध्यात्म, और जीवन - दर्शन की धरोहर है। गीता में ज्ञान-कर्म -भक्तियोग, कर्तव्यबोध, स्वधर्म पालन, आदि वर्णित है। ज्ञानयोग, भक्तियोग, और कर्मयोग। इनमें से कर्मयोग को सर्वाधिक व्यावहारिक, सहज और जीवनोपयोगी माना गया है। गीता में कर्मयोग का स्वरूप निष्काम कर्म, कर्तव्य बोध, समत्व बुद्धि. और स्वधर्म पालन पर आधारित है। यह योग व्यक्ति को कर्म से भागने की नहीं, बल्कि कर्म में पूर्ण तन्मयता के साथ स्थित होने की प्रेरणा देता है। कर्मयोग की यह अवधारणा केवल क्रिया के बाह्य रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के आंतरिक भावों, मनोवृत्तियों और चेतना के स्तर पर परिवर्तन की मांग करती है। इसका मूल उद्देश्य है 'कर्म करते हुए भी आसक्ति और फल की इच्छा से मुक्त रहना।' यह दृष्टिकोण न केवल व्यक्ति को आत्मिक रूप से परिपक्व बनाता है, बल्कि उसे सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति सजग भी करता है।

इस शोध पत्र कर्मयोग, नैतिकजीवन, नेतृत्व से संबंधित दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का अध्ययन किया गया है। समकालीन समाज की समस्याओं के समाधान करने में उत्तम मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। अतः गीता में निहित कर्मयोग, नैतिक जीवन, नेतृत्व की अवधारणा को समझने के लिए आधुनिक जीवन में उसकी उपयोगिता और प्रासंगिकता को दर्शाने का प्रयत्न है ।

प्रस्तावना - भारतीय दर्शन की परंपरा में श्रीमद्भगवद्गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि अमूल्य निधि एवं मानव जीवन के समग्र विकास का मार्गदर्शक ग्रंथ है। यह ग्रंथ कर्म, नैतिकता और नेतृत्व जैसे जीवन के मूलभूत मूल्यों को आध्यात्मिक दृष्टि से परिभाषित करता है । गीता सहस्रों वर्षों के पश्चात् भी मानव समाज के लिए हितकारक , प्रासंगिक, एवं उपादेय सिद्ध हो रही है । श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्याय महाभारत के भीष्म पर्व के 23 से 40 तक के अध्याय है इसमें श्लोकों की संख्या 700 है । गीता महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन के अन्तर्द्वन्द्व को शान्त करते हुए क्या करना चाहिए और क्यों करना चाहिए यह समझाने के लिए उपदेश दिया गया जो कि आज के संघर्षपूर्ण और मूल्य-संकट से ग्रस्त जीवन में भी उतना ही प्रासंगिक है। “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन” गीता का कर्मयोग मनुष्य को कर्तव्यनिष्ठ बनाता है, नैतिक जीवन आत्मिक शुद्धि की ओर ले जाता है और उसका नेतृत्व-दर्शन सेवा, विवेक तथा जिम्मेदारी का आदर्श प्रस्तुत करता है। इस प्रकार गीता के ये सिद्धांत मनुष्य के जीवन पर गहरा आध्यात्मिक प्रभाव डालते हैं और उसे एक संतुलित, सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं । गीता का समग्र दृष्टि से अध्ययन करने पर पता चलता है कि समकालीन दृष्टिकोण से भी अत्यन्त प्रासंगिक है । कर्मयोग का सिद्धान्त कर्तव्य पालन , फलासक्ति का त्याग , निष्काम कर्म , समत्व भाव , सेवा भाव को महत्व देता है । जो मानव को अपने कर्तव्य का बोध कराता है ।

कर्मयोग - कर्मयोग का अर्थ- कर्म द्वारा आत्म-साक्षात्कार और मोक्ष प्राप्त करना ।

कर्म दो प्रकार के होते हैं- सकाम और निष्काम। सकाम कर्म बन्धन के जनक हैं, निष्काम कर्म बन्धन के उच्छेदक हैं । हम किसी कामना या इच्छा से प्रेरित होकर ही शारीरिक या मानसिक कर्म करते हैं, यही सकाम कर्म कहा जाता है। उदाहरणार्थ, स्त्री, पुत्र, धन आदि सभी के लिये किये गये कर्म सकाम हैं । हम कामना से प्रेरित हो या फलाकांक्षा के वशीभूत हो कर्म करते हैं तथा उसका शुभ या अशुभ फल भोगते हैं। पुनः कामना से आक्रान्त ही कर्म करते हैं और फल भोगते हैं। इस प्रकार कर्म की अनवरत धारा चलती रहती है। इस कर्म बन्धन के कारण ही हम नाना योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। दूसरे प्रकार का कर्म निष्काम-कर्म है। इसमें कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है। इन कर्म से बन्धन नहीं होता क्योंकि बन्धन के मूल कारण कामना का इसमें अभाव रहता है।



गीता में कर्मयोग का तात्पर्य निष्काम कर्म से ही है। निष्काम कर्म तृष्णारहित कर्म है। तृष्णा के अभाव में मनुष्य कर्म करते हुए कर्म-फल का कारण नहीं बनता। निष्काम-कर्म ही गीता में कर्मयोग कहा गया है। इसका उपदेश करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥¹

'तेरा कर्म करने में ही अधिकार है. उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तु कर्मों के फल का हेतु न हो तथा तेरी कर्म में आसक्ति भी हो।' अर्जुन को निमित्त बना कर भगवान् संसार को उपदेश दे रहे कि मानव कर्म करने में ही स्वतन्त्र है, फल भोगने में नहीं। मनुष्य जो जो भी कर्म करता है उसका फल किस जन्म में और कहा किस प्रकार प्राप्त होगा, इसका ज्ञान मनुष्य को नहीं है, अतः फल का विधान करना विधाता के अधीन है।

निष्काम-कर्म के दो अंग हैं- कर्तापन या ममता का त्याग और आसक्ति या तृष्णा का त्याग। किसी भी कायिक या मानसिक कर्म में कर्तृत्व (मैं इस कार्य का कर्ता हूँ) का अभाव और कामना का अभाव (निस्पृहभाव से कर्म करना) यदि रहे तो वह कर्म निष्काम या अनासक्त कर्म कहलाता है। यह कर्म बन्धन का साधक नहीं बाधक है। भूजे हुए बीज में वपन शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार राग-द्वेष से रहित कर्म में बन्धन की शक्ति नहीं होती है। इस प्रकार के कर्म को करता हुआ भी मनुष्य अकर्ता है क्योंकि इन कर्मों में फलोत्पादिका शक्ति नहीं होती।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥²

हे अर्जुन! आसक्ति को त्यागकर योग में स्थित होकर कर्म करो। सिद्धि और असिद्धि (सफलता-असफलता) में समान भाव रखना ही योग है।

नैतिक जीवन एवं नेतृत्व -

शरणागत के प्रति आचरण - भगवान् श्री कृष्ण और अर्जुन के मध्य संवाद के दौरान अर्जुन श्री कृष्ण के प्रति पूर्ण शरणागति का भाव प्रदर्शित करता है। जिस तरह भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन की सारी बातें धैर्य से सुनते हैं उसके उपरांत अर्जुन की समस्याओं का समाधान करते हैं। अर्थात् हमारे जीवन में भी ऐसी कई परिस्थितियां बनती हैं उस समय उस शरणागत की उपेक्षा किए बिना उसकी समस्याओं को सुनकर उसके जीवन का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। श्रीमद् भागवत गीता में मन को मनुष्य का शत्रु और मित्र दोनों बताया गया है।



बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥³

आत्मतुष्टि - गीता में आत्मतुष्टि का अर्थ शारीरिक सुख या अहंकार से जुड़ी संतुष्टि नहीं है, बल्कि आत्मा में स्थित होकर मिलने वाली गहरी शांति और तृप्ति है। मनुष्य अपनी सारी इच्छाओं को त्याग कर अपने आत्मा में ही संतुष्ट रहता है तब वह स्थितप्रज्ञ होता है ।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥⁴

जिस वक्त हम सांसारिक सुख सुविधाओं के बारे में चिन्तन करते हैं तब उसके प्रति हमारी आसक्ति बढ़ती जाती है। अतः इस स्थिति में मनुष्य सही गलत का विवेक नहीं कर पाता और अपनी कामनाओं की पूर्ति में अत्यंत उत्तेजित रहता है। किंतु इनके कारण ही दुःख भी प्राप्त होता है। इसलिए आत्मसंतुष्टि से मनुष्य सर्वोच्च स्तर को प्राप्त करता है गीता के यह दो श्लोक में जीवन को व्यवस्थित करने का सम्पूर्ण सार क्षिपा हुआ है -

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥⁵
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥⁶

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अनर्थों कि श्रेणी बतायी है - जो मनुष्य के पतन का कारण है। मनुष्य को इसलिए अपने विवेक का ही आलम्बन लेना चाहिए। इन्द्रिय जनित विषयों के चिन्तन से क्रमशः आसक्ति ,सम्मोह, स्मृतिविभ्रम , बुद्धिनाश, और जीवन का पतन होता है । मानसिक शांति - मनुष्य जीवन को सुव्यवस्थित और सुखमय बनाने के मन की शान्ति आवश्यक है । संवेगों को कैसे नियंत्रित करें इसके लिए गीता में बहुत सुन्दर उपदेश दिया गया है -

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतम्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥⁷

निष्काम कर्म - मनुष्य को आसक्ति रहित होकर कर्म करना चाहिए अर्थात् कर्म स्वतः फल का उत्पादक है । जब हम फल की इच्छा से कोई कार्य करते हैं तो सफलता मिलने सुख एवं असफल होने पर दुःख और निरासा प्राप्त होता है । इसलिए ईश्वर को याद करते हुए फलासक्ति से रहित होकर निष्काम भाव से किया गया कर्म निश्चय ही अच्छा होता है।



इस तरह के कर्म - कर्मयोग का प्रेरक है साथ ही स्व नेतृत्व हेतु सत्प्रेरक है।

निःश्वार्थ कर्म-

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽसवकर्मणि ॥⁸**

मनुष्य जीवन में आध्यात्मिक प्रभाव -

उपनिषद् के ज्ञान को सार रूप में भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को उपदेश रूप में दिया है अर्थात् गीता उपनिषदों का सार है। गीता ज्ञान का अथाह सागर है इसका कोई पारावार नहीं है । यहां अनन्त अनुभवों एवं भावों का सम्मेलन है। जीव के हर दशा का वर्णन है इसलिए सर्वशास्त्रमयी गीता का ज्ञान होने से समस्त शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है। महाभारत में गीता के लिए लिखा गया है - सर्वशास्त्रमयी गीता (भीष्म पर्व ४३/२) श्रीमद्भगवत गीता में पद-पद पर आध्यात्म का चिन्तन किया गया है । चूंकि आध्यात्म के बारे में विचार करते हैं तब उसे ब्रह्मतत्त्व, जीवतत्त्व, जगततत्त्व और पुरुषोत्तम के माध्यम से निरूपित किया गया है। श्रीमद्भगवत गीता में ब्रह्मतत्त्व - गीता में ब्रह्मतत्त्व का विवेचन अष्टम एवं त्रयोदश अध्याय में प्राप्त होता है। गीता में ब्रह्म का सगुण एवं निर्गुण दोनों रूप प्राप्त है क्योंकि ये दोनों उस परमतत्त्व के रूप हैं। दोनों में सर्वथा विरोधाभाव है।

**सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
असक्तमं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च।⁹**

वह स्वयं समस्त इन्द्रियों से हीन है। वह सभी तरह के देहादिक सम्बन्धों से रहित हैं परन्तु सभी को धारण करता है। वह निर्गुण है तथापि गुणों का भोक्ता है वह न तो सत् और न तो असत् कहा जाता है। जैसा -

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।¹⁰

जीवतत्त्व -जीव को गीता में ईश्वर का एक अंश कहा गया है-

ममैवांशो जीवलोके जीव भूतः सनातनः ।¹¹

जीवात्मा परमात्मा का सनातन अंश है। इससे स्पष्ट होता है कि जीव अंश है और परमात्मा अंशी। इन्द्रिय, मन, अहंकार तथा शरीर की उपाधियों से भरा हुआ और पृथक् पृथक् किया गया आत्मा ही जीव है। आत्मा एक है पर उपाधि भेद के कारण वह अनेक जीवों के रूप में प्रतीत होता है।



श्रीमद्भगवद्गीता में जगततत्त्व-

जगत की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय भगवान के कारण है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान को समस्त भूतों का सनातन अविनाशी अव्यय बीज बताया गया है ।

'बीज मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।'¹²

श्रीमद्भगवद्गीता में पुरुषोत्तम- पुरुषोत्तम तत्त्व श्रीमद्भगवद्गीता का परम रहस्ययुक्त तथा महत्वपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्व माना जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में अव्यक्त तथा अक्षर शब्द का प्रयोग व्यक्ताव्यक्त से परे प्रकृति पुरुष के ऊपर एक विशिष्ट तत्त्व के लिये भी किया गया है।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥'¹³

अर्थात् जीव मात्र भी उस ब्रह्म का अंश है जो मनुष्य के अन्दर एकत्व की भावना का प्रकाशन करता है।

निकर्ष-

गीता का कर्मयोग मनुष्य को निष्काम भाव से कर्म करने के लिए प्रेरित करता है जब कर्मफल का आसक्ति को त्यागकर कर्म किये जाते हैं तब मनुष्य मानसिक शांति ,आत्मसंयम , संतुलन प्राप्त करता है । जीवन सुव्यवस्थित और तनाव कम होता है । नैतिक जीवन में गीता सत्य, अहिंसा, कर्तव्यनिष्ठा और आत्मनियन्त्रण पर बल देती है । आचरण को शुद्ध , समाज में सद्भाव विश्वास को बढ़ता है । नैतिकता से युक्त जीवन व्यक्ति को आत्मगौरव, आत्मसंतोष और आध्यात्मिक बनाता है । एक नैतिक व्यक्ति ही समाज को अच्छा नेतृत्व कर सकता है। लोककल्याण ,निष्पक्ष निर्णय और अहंकार से मुक्त होकर सेवा भाव से प्रेरित रहता है । गीता का कर्मयोग नैतिकजीवन को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों समृद्ध करते हैं। जिससे मानव जीवन सार्थक और संतुलित बना रहें ।

सन्दर्भ-

1. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/47
2. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/48
3. श्रीमद्भगवद्गीता- 6/6
4. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/55



5. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/62
6. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/63
7. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/56
8. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/47
9. श्रीमद्भगवद्गीता- 13/14
10. श्रीमद्भगवद्गीता- 13/12
11. श्रीमद्भगवद्गीता- 15/7
12. श्रीमद्भगवद्गीता- 7/10
13. श्रीमद्भगवद्गीता- 15/18
14. भगवद्गीता। अनुवाद और व्याख्या: स्वामी विवेकानंद। रामकृष्ण मिशन, 2005
15. राधाकृष्णन, एस। द भगवद्गीता. हार्पर कॉलिन्स, 2013
16. शर्मा, अरविंद। फिलॉसफी ऑफ कर्मयोग: ए स्टडी इन द भगवद्गीता. मोतीलाल बनारसिदास, 1999।
17. राधाकृष्णन, 'भगवद्गीता', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1969, पृ. 16
18. श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य श्लोक, 13, गीता प्रेस, गोरखपुर
19. 19. भागीरथ दीक्षित भगवद्गीता एक नया अध्ययन प्रथम संस्करण 1987 नवा भारत प्रिंटिंग प्रेस शाहदरा दिल्ली पृष्ठ-2
20. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गीता की प्रासंगिकता, प्रमोद कुमार यादव, शोधार्थी हिंदी विभाग, हैदराबाद, पृष्ठ स. 15-16
21. श्रीमद्भगवद्गीता 6.6
22. संस्कृत वाक्य में निहित विविध विमर्शः एक अवलोकन श्रीमद्भगवद्गीत यथारूप, श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट श्लोक
23. गीता की व्याख्या, पृष्ठ सं. 207
24. डॉ. रविन्द्र कुमार शर्मा "गीता में कर्मयोग की दार्शनिक व्याख्या" वर्ल्ड आर्गेनाइजेशन आफ अकेडमिक रिसर्च, वाल्यूम -13 1 जनवरी - जून 2025
25. ऋचा राजपुत, "श्रीमद्भगवद्गीता के नैतिक, दार्शनिक और प्रबंधन सिद्धान्तों की आधुनिक सन्दर्भ संबंध में प्रासंगिकता" अन्थोलॉजी द रिसर्च , 2025



गीता में मानवता

डॉ. प्रवीण पाठक
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
स्टारेक्स यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम

सारांश

श्रीमद्भागवत गीता यह एक ग्रंथ ही नहीं अपितु अपने आप में जीवनपुंज है। जीवनपुंज अर्थात् जीवन को प्रकाशित करने का एक व्यवस्थित स्रोत हैं। आज की व्यावहारिक जीवनशैली में जो भाव, जो उद्देश्य चाहिए वो सम्पूर्ण रूप से इस ग्रंथ में परिभाषित है। व्यक्ति की कार्य को लेकर एवं कार्य को निर्धारित करने वाली हर वो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिस्थिति की परिभाषा एवं उद्देश्य इसमें पाया जा सकता है। कर्म, धर्म में निहित है या धर्म, कर्म में निहित है इन विरोधाभासों को भी गीता हल करती है। कथा-प्रवचनों से लेकर घर-घर तक जीवन-सुधार परक उपदेश, नीति-नियमों का जो भी ज्ञान दिया जाता है, उसमें गीता का प्रकाश कहीं न कहीं अवश्य पड़ता है। महाभारत से पूर्व शंका एवं त्रुटियों से भरा अर्जुन कैसे अपने कर्म और धर्म के भेद को समझ पाये। इसी परिलक्ष्य में श्रीकृष्ण द्वारा स्वरचित और कंठित इस 18 अध्याय वाली महागीत को गीता के रूप में हम सभी नमन करते हैं। आज मानव स्वयं से लड़ रहा है और सही-गलत, अच्छा-बुरा भेद कर पाना दुर्गम है क्योंकि आज कोई भी चरित्र किस पाले में आता है इसका निर्णय करना अत्यंत कठिन है गीता, महाभारत की परिस्थिति में ही नहीं बल्कि आज की परिस्थिति में भी बहुत उपयोगी है। आज हम सभी उस अर्जुन की तरह जीवन रूपी महाभारत के समक्ष हैं परंतु आज श्री कृष्ण अपने रूप में भले ही न हों परंतु स्वर और ज्ञान स्रोत हमारे पास उपलब्ध हैं। दूसरे अध्याय की कर्म परिभाषा से लेकर मोक्षप्राप्ति के मार्गों का विश्लेषण करने वाले अंतिम अध्याय तक, गीता जीवन के हर पहलू को स्पर्श करती है। हम आज जिन आसक्तियों से घिरे हैं मोह, बंधन, विलास, भोग, पाखंड, ईर्ष्या, लोभ, इनके प्रमुख हैं और गीता के छठे, चौदहवें एवं सोलहवें अध्याय इतनी बारीकी से इसपर अध्ययन करते हैं कि कोई गूढ़ विचारक भी पढ़ने पर आश्चर्यचकित एवं अभिभूत हो जाये।

विशेषकर कई पश्चिमी एवं गैर भारतीय चिंतक जो गीता से अनभिज्ञ हैं वो जब गीता का पाठ करते हैं तब उनकी वैचारिक सुंदरता और भी बढ़ जाती है।

मुख्य शब्द- गीता, मानवता, श्रीकृष्ण, कर्मयोग, महाभारत

प्रस्तावना

भगवद् गीता दिव्य ज्ञान का एक शाश्वत गीत मानवता ने सहस्राब्दियों से जिन पवित्र ग्रंथों और शास्त्रों के विशाल सागर को संजोकर रखा है, उसमें भगवद् गीता एक प्रकाशस्तंभ की तरह चमकती है श्रीमद् भगवद् गीता मानवता के लिए दिव्य ज्ञान का अमूल्य उपहार है। कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का समन्वित संदेश प्रदान करने करते हैं भगवद् गीता का मानवता को दिया गया। उपहार सही कर्म के चरण-दर-चरण निर्देश हैं, कर्म योग का अद्वितीय खाका है, जो व्यक्तिगत पूर्णता और सामूहिक समृद्धि की ओर ले जाएगा। मानवता को बचाने व इसका मार्गदर्शन करता है। इसलिए हर व्यक्ति को गीता ज्ञान प्राप्त कर मानवता के उत्थान में अपना योगदान देना चाहिए। गीता का मूल संदेश युद्ध में संयम का भाव बनाए रखना है। यह सुझाव देती है कि संयम की भावना योद्धा के भीतर समाहित हो जानी चाहिए ताकि अराजकता की स्थिति में वह अपनी इच्छाओं के बहकावे में न आ जाए, गीता का एक प्रमुख संदेश है "कर्म किए जाओ, फल की चिंता मत करो।" इसका अर्थ है कि हमें अपने कार्यों में लगे रहना चाहिए और उनके परिणामों की चिंता नहीं करनी चाहिए। गीता मनुष्य को जीने की कला सिखाती है। गीता का अर्जुन केवल पाण्डुपुत्र अर्जुन नहीं है अपितु यह अर्जुन सारी मानवता का प्रतिनिधि है। भगवद् गीता एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक है जो व्यक्तियों को योग, ध्यान और भक्ति के अभ्यास के माध्यम से एक पूर्ण जीवन जीने का तरीका सिखाती है। श्रीमद्भागवत गीता यह एक ग्रंथ ही नहीं अपितु अपने आप में जीवनपुंज है। जीवनपुंज अर्थात् जीवन को प्रकाशित करने का एक व्यवस्थित स्रोत। आज की व्यावहारिक जीवनशैली में जो भाव, जो उद्देश्य चाहिए वो सम्पूर्ण रूप से इस ग्रंथ में परिभाषित है। व्यक्ति की कार्य को लेकर एवं कार्य को निर्धारित करने वाली हर वो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिस्थिति की परिभाषा एवं उद्देश्य इसमें पाया जा सकता है। कर्म, धर्म में निहित है या धर्म, कर्म में निहित है इन विरोधाभासों को भी गीता हल करती है। कथा- प्रवचनों से लेकर घर-घर तक जीवन-सुधार परक उपदेश, नीति-नियमों का जो भी ज्ञान दिया जाता है, उसमें गीता का प्रकाश कहीं न कहीं अवश्य पड़ता है। महाभारत से पूर्व शंका एवं त्रुटियों से भरा अर्जुन कैसे अपने कर्म और धर्म के भेद को समझ पाये। इसी परिलक्ष्य में श्रीकृष्ण



द्वारा स्वरचित और कंठित इस 18 अध्याय वाली महागीत को गीता के रूप में हम सभी नमन करते हैं। समय का खेल देखिये, सतयुग में दो लोकों में युद्ध होता है, त्रेता में दो साम्राज्यों के प्राणी राम-अयोध्या , रावण-लंका में युद्ध होता है। द्वापर में दो परिवार युद्ध करते हैं। युगों के साथ ही युद्ध करने वालों की आसन्नता या निकटता देखी जा सकती है। आज मानव स्वयं से लड़ रहा है और सही-गलत, अच्छा-बुरा भेद कर पाना दुर्गम है क्योंकि आज कोई भी चरित्र किस पाले में आता है इसका निर्णय करना अत्यंत कठिन है । गीता, महाभारत की परिस्थिति में ही नहीं बल्कि आज की परिस्थिति में भी बहुत उपयोगी है। आज हम सभी उस अर्जुन की तरह जीवन रूपी महाभारत के समक्ष हैं परंतु आज श्री कृष्ण अपने रूप में भले ही न हों परंतु स्वर और ज्ञान स्रोत हमारे पास उपलब्ध हैं दूसरे अध्याय की कर्म परिभाषा से लेकर मोक्षप्राप्ति के मार्गों का विश्लेषण करने वाले अंतिम अध्याय तक , गीता जीवन के हर पहलू को स्पर्श करती है। हम आज जिन आसक्तियों से घिरे हैं मोह, बंधन, विलास, भोग, पाखंड, ईर्ष्या, लोभ, इनके प्रमुख हैं और गीता के छठे, चौदहवें एवं सोलहवें अध्याय इतनी बारीकी से इसपर अध्ययन करते हैं कि कोई गूढ़ विचारक भी पढ़ने पर आश्चर्यचकित एवं अभिभूत हो जाये। विशेषकर कई पश्चिमी एवं गैर भारतीय चिंतक जो गीता से अनभिज्ञ हैं।

गीता के अनुसार जो मनुष्य निरंतर आत्मभाव में स्थित सुख-दुख को समान समझे , मिट्टी-पत्थर-स्वर्ण में अंतर न करे, ज्ञान, प्रिय तथा अप्रिय को एक सा माने और अपनी निंदा हो या स्तुति उसमें भी समान भाव रखे , जो मान-अपमान में सम रहे, मित्र-गैर मित्र में भी सम है और अभिमान रहित है वह ईश्वर को अतिशय प्रिय है। ऐसे झकझोरने वाले प्रामाणिक सत्य हमें आज के जीवन में संतुलन का पाठ पढ़ाते हैं।' गीता पढ़ते ही पता चला कि कर्म प्रकृति का मूल है। संसार का कोई भी जीव बिना कर्म के अस्तित्व हीन है। कर्म से कोई आलसी भी छुटकारा नहीं पा सकता। कर्म इतना मूल है कि खुद ईश्वर भी स्वयं को कर्म से भिन्न नहीं कर सकते। कर्म का सूत्र न केवल जीवित पर अपितु निर्जीव पे भी सर्वथा अनिवार्य है। पंचतत्व(अग्नि, जल, वायु, भू, आकाश) का कर्मयोग एवं प्रकृति का दोहन करने वाले का कर्मयोग, जब दोनों एक दूसरे को संतुलित रखते हैं भगवान श्री कृष्ण आत्मा और जीव के बीच अद्भुत अंतर बतलाते हैं जिससे आज का कोई भी अंतरिक्ष वैज्ञानिक से नकार नहीं सकता। वस्तुतः आत्मा कुछ नहीं शक्ति है ऊर्जा है जिससे सारा ब्रह्माण्ड संचालित होता है और सभी द्रव्यों और पदार्थों का मूल है। मनुष्य एवं सभी प्राणी उसी शक्ति का अंश हैं। मनुष्य हो या कोई भी प्राणी, प्राण नष्ट होने पर आत्मा नष्ट हो ही नहीं सकती चाहे वो भूमि में जाये, अग्नि में या जल में, उसका केवल स्थानांतरण होता है केवल।



वैज्ञानिक प्रमाणिकता की बात करे तो ऊर्जा को द्रव्य में या द्रव्य को ऊर्जा में परिवर्तित कर सकते हैं। जैसे ऊर्जा न तो पैदा होती है ना मरती है बस रूप बदल लेती है उसी प्रकार गीता में भी आत्माको ऐसा बताया गया है। हमने गीता के उस पहलू को भी शायद कभी नहीं जाँचा जिसमें ईश्वर के स्वरूप की विस्तारपूर्वक जानकारी दी गयी है, वह भी स्वयं ईश्वर के द्वारा। ईश्वर को शक्ति मानकर उन्होंने कहा है कि मैं सबमें हूँ, सभी विनाश होने पर मुझमें ही आ मिलते हैं।

गीता के वैचारिक मंथन को हम गहरायी से अध्ययन करें तो वर्तमान विज्ञान और गीता के कई मूल्यों में सापेक्षता का मिलना विलक्षण है। व्यक्तियों के अंदर पाये जाने वाले जो दुर्गुण गीता ने अपने सोलहवें अध्याय में व्यक्त किये हैं उनका आज स्वरूप विस्तृत हो गया है। महाभारत में पांडव केवल पाँच भाई नहीं अपितु पाँच इन्द्रियाँ हैं और कौरव उनका ध्यान खींचने वाले सौ कारण। आज का युद्ध हमारी इन्द्रियों और उनका ध्यान भटकाने वाले कारणों के बीच है। आज के युग में कर्ण का चरित्र हमारी महत्वकांक्षाओं को दर्शाता है जिसका अंत किये बिना हम युद्ध नहीं जीत सकते। परमात्मा तक पहुंचने के लिए एक विरक्त कर्मयोगी बनना पड़ता है। जैसे कमल कीचड़ में रहकर खिलता है भगवान वासुदेव कहते हैं कर्म फल का हेतु मत हो तथा कर्म न करने का तेरी आसक्ति न हो। कर्म का तात्पर्य अर्थात् दृष्टिकोण को ज़रूर ध्यान रखना है। यहां बहुत महीन अंतर है, फल की चिंता न करना और कर्म का तात्पर्य (कारण) दोनों एक ही लगती है पर इनमें गहरा अंतर्विरोध है। कर्म का तात्पर्य न होने से कर्म करने की इच्छा और शक्ति क्षीण हो जाती है। अर्जुन को धर्म की स्थापना करनी है ये उसके कर्म का तात्पर्य है। अर्जुन को धर्मस्थापन के बाद युद्ध-विध्वंस, भातृहत्या, गुरुहत्या इत्यादि का पाप लगे या युधिष्ठिर राजा बने यह है कर्म का फल। अर्जुन अपने कर्म फल को लेकर शंका और दुविधा में है परन्तु श्री कृष्ण उसे कर्म का तात्पर्य का मर्म समझाते हैं। वस्तुतः एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दीक्षा है। ज्ञान प्राप्ति का यह सुख गीता को पढ़ने के कर्म का तात्पर्य है और अगर मैं जीवन में कुछ श्रेष्ठ कर पायी तो ये मेरे गीता को पढ़ने के कर्म का फल होगा। गीता मेरे ही नहीं बल्कि समस्त संसार के लिए ब्रह्मज्ञान जैसा है। गीता जीवन संचालन और संतुलन का एक अद्भुत साधन है। हम सभी को इसका अध्ययन आत्मशांति और मोहमुक्ति के लिए जीवन पर्यन्त करते रहना चाहिए। गीता हमारे जीवन में आई हुई इन सब रूढ़ियों को मिटाकर हमें सत्य की ओर, धर्म की ओर, मानवता की ओर अग्रसर करती है। राष्ट्र की वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए एकमात्र गीता ही वह विकल्प है जो देश को पुनः उन्नति के पथ पर ले जाती है। गीता में यह बताया गया है कि कैसे एक व्यक्ति अपने जीवन में मानवता के सिद्धांतों को



अपनाकर समाज में शांति, सद्भाव और विकास ला सकता है। ग्राम गीता में मानवता की शिक्षा का मूल आधार है सेवा और त्याग। गीता के श्लोकों में मानवता का हर मर्म समाहित है, जो सदैव कर्म पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। अपने धर्म और कर्तव्यों का पालन करना ही एक व्यक्ति को वास्तविक सौंदर्य प्रदान करता है। अर्थात् जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों और धर्म को जानता है और उसका पूर्ण रूप से पालन करता है, वही सर्वश्रेष्ठ है।

निष्कर्ष

सुख-दुःख, जय-पराजय, मित्र-शत्रु, और मान-अपमान में समान रहना। मानवता का अर्थ हर प्राणी में परमात्मा का दर्शन करना है। गीता मानवता को स्वार्थी जीवन से उठाकर निस्वार्थ सेवा, कर्तव्यपरायणता और सार्वभौमिक प्रेम के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। भगवद् गीता का मानवता को दिया गया उपहार सही कर्म के चरण-दर-चरण निर्देश हैं, कर्म योग का अद्वितीय खाका है, जो व्यक्तिगत पूर्णता और सामूहिक समृद्धि की ओर ले जाएगा गीता एक शक्तिशाली और ज्ञानवर्धक ग्रंथ है। जब आप कमजोर होते हैं, तो यह आपको शक्ति प्रदान करती है, और जब आप निराश और दुर्बल होते हैं, तो यह आपको प्रेरित करती है। गीता के अनुसार, सामान्य मनुष्य की चेतना का लक्ष्य आत्मा का परमात्मा से मिलन है, जो कि मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति के रूप में जाना जाता ।



संदर्भ सूची-

1. Arthur Llewellyn Basham (1991). *The Origins and Development of Classical Hinduism*. Oxford University Press.
2. Heather Elgood (2000). *Hinduism and the Religious Arts*. A & C Black.
3. Slavitt (2015). *The Mahabharata*. Northwestern University Press.
4. Franklin Edgerton (1952). *Bhagavad Gita, Part 2*. Harvard University Press.
5. Gavin Flood; Charles Martin (2013). *The Bhagavad Gita: A New Translation*. W. W. Norton & Company.
6. Kriyananda, Goswami (1994). *Bhagavad Gita (3rd ed.)*. Chicago,
7. Arthur Llewellyn Basham (1991). *The Origins and Development of Classical Hinduism*. Oxford University Press.
8. Franklin Edgerton (1952). *Bhagavad Gita, Part 2*. Harvard University Press. p.
9. Gavin Flood; Charles Martin (2013). *The Bhagavad Gita: A New Translation*. W. W. Norton & Company.
10. W. J. Johnson (2004). *Bhagavad Gita*. Oxford University Press.
11. Stephen Phillips (2009). *Yoga, Karma, and Rebirth: A Brief History and Philosophy*
12. Dharma Passionate (2011). *Spirituality and Indian Psychology: Lessons from the Bhagavad-Gita*
13. McDermott, Robert A. (1975). "Indian Spirituality in the West: A Bibliographical Mapping". *Philosophy East and West*
14. Jonardon Ganeri (2007). *The Hidden Art of the Soul: Theories of Self and Practices of Truth in Indian Ethics and Epistemology*
15. Eknath Easwaran (2011). *The Essence of the Bhagavad Gita: A Contemporary Guide to Yoga, Meditation, and Indian Philosophy*
16. Trevor Leggett (1995). *Attainment of the Supreme Soul: Bhagavad Gita Yoga*
17. Stephen H. Phillips (2009). *Yoga, Karma and Reincarnation: A Brief History and Philosophy*
18. Juan Mascaro (1962). *Bhagwat Geeta*. Penguin.
19. Abhinavagupta (Rajaank) (1983). *Geethartha collection*. Translated by Arvind Sharma. Brill Academic.
20. Gurumaa, Anandamurthy (24 November 2021). *Srimad Bhagavad Gita: (Brief Commentary)*
21. Engels, Jeremy David (2021). *The Ethics of Unity: Emerson, Whitman and the Bhagavad Gita*
22. VR Narla (2010), *The Truth about the Gita*, Prometheus Books



भारतीय ज्ञान परंपरा में वर्चस्व नहीं, धर्मात्मक सर्वश्रेष्ठता: भगवद्गीता के आलोक में एक दार्शनिक पुनर्पाठ

डॉ.विवेक पाठक

सहायक प्रोफेसर

भारतीय ज्ञान परम्परा केंद्र

तीर्थकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

सारांश

यह सामान्यतः स्वीकार कर लिया गया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ केवल कुछ वेदों अथवा उपनिषदों के अध्ययन तक सीमित है। किंतु इस प्रकार की संकीर्ण व्याख्या भारतीय ज्ञान की उस अनादि, जीवंत और सतत प्रकृति को अनदेखा कर देती है, जो न केवल अतीत में विद्यमान थी, बल्कि वर्तमान में भी सक्रिय है और भविष्य में भी बनी रहेगी। ज्ञान किसी एक ग्रंथ, काल या समुदाय की बपौती नहीं होता, बल्कि वह सभ्यता, संस्कृति और परंपरा के साथ निरंतर प्रवाहमान रहता है। भारतीय संदर्भ में वेदों और उपनिषदों का महत्व निर्विवाद है, किंतु भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ केवल मंत्रों का पाठ नहीं, बल्कि वह एक दार्शनिक विमर्श है—ऐसा विमर्श जो राष्ट्र की अस्मिता, सांस्कृतिक चेतना और धर्मात्मक सर्वश्रेष्ठता को अभिव्यक्त करता है। यहाँ 'सर्वश्रेष्ठता' का आशय वर्चस्व या प्रभुत्व से नहीं, बल्कि धर्म, कर्तव्य और नैतिक उत्तरदायित्व से है।

भगवद्गीता इस दृष्टि को स्पष्ट करती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

“न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्”

(भगवद्गीता 3.26)

यह श्लोक बताता है कि ज्ञान का उद्देश्य दूसरों पर बौद्धिक या सांस्कृतिक प्रभुत्व स्थापित करना नहीं, बल्कि समाज में संतुलन और लोककल्याण बनाए रखना है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा की बुनियाद वर्चस्व नहीं, बल्कि धर्मात्मक समन्वय है।

ब्रिटिश शासन भारत में केवल राजनीतिक सत्ता के रूप में नहीं आया, बल्कि वह अपने साथ पश्चिमी सांस्कृतिक आदर्श भी लाया—जैसे अंग्रेज़ी भाषा, ब्रिटिश प्रशासनिक प्रणाली और ईसाई धर्म। औपनिवेशिक विमर्श में भारतीय समाज को पिछड़ा, स्थिर और आत्मनिर्णय में अक्षम के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसे 'सभ्य' बनाने के लिए ब्रिटिश हस्तक्षेप आवश्यक बताया गया (Said, 1978)।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी विचारधारा का एक केंद्रीय स्तंभ एंग्लो-सैक्सन नस्लीय श्रेष्ठता का विश्वास था। यह धारणा सामाजिक डार्विनवाद से प्रभावित थी, जिसने चार्ल्स डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत को मानव समाजों पर आरोपित किया (Spencer, 1864)। इसके अनुसार, शक्तिशाली नस्लों का कमजोर नस्लों पर शासन करना 'प्राकृतिक' और 'वैध' माना गया।

इसके विपरीत, भारतीय ज्ञान परंपरा में शक्ति का मूल्यांकन नैतिकता से होता है। गीता में श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं—

“श्रेष्ठः श्रेष्ठाच्छ्रेयान् भवति” (भावार्थ)
अर्थात् श्रेष्ठ वही है जो कर्तव्य और धर्म के मार्ग पर स्थित हो
(गीता 3.21, Gita Press edition)

यहाँ श्रेष्ठता का आधार सत्ता या नस्ल नहीं, बल्कि आचरण है।

औपनिवेशिक सत्ता ने अपने शासन को 'सभ्य बनाने के मिशन' (Civilizing Mission) के रूप में प्रस्तुत किया, जिसे रुडयार्ड किपलिंग की कविता *The White Man's Burden* (1899) ने वैचारिक समर्थन दिया। इसके अंतर्गत यह मान लिया गया कि गैर-यूरोपीय समाज बालसुलभ, आदिम और नैतिक रूप से अपूर्ण हैं।

इसके विपरीत, भगवद्गीता मानव को आंतरिक अनुशासन और आत्मोन्नति की ओर प्रेरित करती है—

“उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्”
(भगवद्गीता 6.5)

यह श्लोक दर्शाता है कि भारतीय दर्शन में व्यक्ति को बाहरी सत्ता के अधीन नहीं, बल्कि स्व-अनुशासन के माध्यम से उन्नत माना गया है। यही भारतीय ज्ञान की धर्मात्मक सर्वश्रेष्ठता है।



किपलिंग की कविता *The White Man's Burden* (1899), जिसने संयुक्त राज्य अमेरिका से फिलीपींस में साम्राज्यवादी शासन की बागडोर सँभालने का आग्रह किया, औपनिवेशिक मानसिकता की प्रतिनिधि अभिव्यक्ति है। यह कविता इस विचार को पुष्ट करती है कि पश्चिमी शक्तियों—विशेषतः अंग्रेजों—का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे अपने उपनिवेशों के स्वदेशी लोगों को 'सभ्य' बनाएं, भले ही इसके लिए उन्हें व्यक्तिगत या आर्थिक बलिदान ही क्यों न देना पड़े। इस तथाकथित सभ्यता-मिशन को ईसाई धर्म के लेंस के माध्यम से वैध ठहराया गया।

मिशनरियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद में विशेष भूमिका निभाई, विशेषकर भारत और अफ्रीका में, जहाँ उन्होंने स्वदेशी समाजों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का संगठित प्रयास किया। धर्मांतरण को उपनिवेशित लोगों की नैतिक और आध्यात्मिक स्थिति में सुधार के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया, क्योंकि औपनिवेशिक दृष्टि में भारतीय समाज 'बुतपरस्त' और अंधविश्वासी प्रथाओं में जकड़ा हुआ माना जाता था। धर्म के साथ-साथ, अंग्रेजों ने कानून, व्यवस्था और शासन की पश्चिमी अवधारणाओं को लागू करने की आवश्यकता पर जोर देकर अपने शासन को न्यायोचित ठहराया।

साम्राज्यवादियों का दावा था कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद स्थिर और आधुनिक शासन-व्यवस्थाओं की स्थापना करेगा, जो स्वदेशी शासकों के कथित अराजक या निरंकुश शासन का स्थान लेंगी। परोपकार, प्रगति और सभ्यता की यह भाषा वास्तव में औपनिवेशिक शोषण, संसाधनों के दोहन और हिंसक नियंत्रण की कठोर वास्तविकताओं को ढकने का माध्यम थी। शिक्षा और सभ्य मूल्यों के प्रसार की बात करते हुए भी, व्यवहार में ब्रिटिश नीतियों का प्रमुख उद्देश्य उपनिवेशित समाजों पर स्थायी नियंत्रण बनाए रखना था।

इस औपनिवेशिक प्रक्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि भारतीय ज्ञान—जो सभ्यता, संस्कृति और जीवन-पद्धति से गहराई से जुड़ा हुआ था—धीरे-धीरे हाशिये पर धकेल दिया गया और ब्रिटिश साम्राज्यवादी विचारधारा के भँवर में फँसता चला गया। जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल उद्देश्य स्वदेशी ज्ञान-प्रणालियों, जैसे आयुर्वेद और योग, के माध्यम से व्यक्ति और समाज के समग्र उत्थान को सुनिश्चित करना था।

भगवद्गीता इस संदर्भ में ज्ञान की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करती है जो वर्चस्व नहीं, बल्कि लोककल्याण पर आधारित है।



श्रीकृष्ण कहते हैं—

“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि”

(भगवद्गीता 3.20)

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि ज्ञान और कर्म का उद्देश्य दूसरों पर शासन करना नहीं, बल्कि समाज के संतुलन और कल्याण को बनाए रखना है। यह दृष्टि औपनिवेशिक सत्ता-विमर्श से मूलतः भिन्न है, जहाँ ज्ञान को प्रभुत्व और नियंत्रण का साधन बनाया गया।

पश्चिमी औपनिवेशिक सोच से मुक्ति, समकालीन ज्ञान के विकास तथा राष्ट्रीय अस्मिता और पहचान को बनाए रखने के उद्देश्य से, आज विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में नई शिक्षा नीति के अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा जैसे विषयों को सम्मिलित किया जा रहा है। यह स्वीकार करना आवश्यक है कि जब यूरोप के अनेक देश ज्ञान और लेखन की बुनियादी संरचना को समझने के प्रारंभिक चरण में थे, तब भारत में जनसामान्य के स्तर पर रामायण और महाभारत का पाठ प्रचलित था।

जिस आधार पर भारत को असभ्य और राजनीतिक संस्थाओं से रहित देश बताया गया, उसी भारत के महाकाव्यों—रामायण और महाभारत—में नेतृत्व, अनुशासन, राजधर्म और राजनीतिक प्रबंधन के विस्तृत सिद्धांत उपलब्ध हैं। गीता में कर्म और कर्तव्य की जो व्याख्या मिलती है, वह यह स्पष्ट करती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की सर्वश्रेष्ठता किसी बाह्य वर्चस्व में नहीं, बल्कि धर्म, उत्तरदायित्व और नैतिक आचरण में निहित है—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”

(भगवद्गीता 2.47)।

जब विश्व के अनेक देश गणित और वैज्ञानिक चिंतन के महत्व को समझने के प्रारंभिक चरण में थे, तब भारतीय ज्ञान परंपरा में वैदिक गणित से संबंधित बहुमूल्य सिद्धांत पहले से विद्यमान थे। ये सिद्धांत न केवल संख्यात्मक गणना तक सीमित थे, बल्कि प्रत्येक विषय को तर्कसंगत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करते थे। भारतीय गणितीय परंपरा—शून्य की अवधारणा, दशमलव पद्धति और



ज्यामितीय सूत्र—इस बात का प्रमाण है कि ज्ञान को यहाँ प्रयोग और विवेक के साथ जोड़ा गया था (Datta & Singh, *History of Hindu Mathematics*).

वेदों और पुराणों में मनुष्य को केवल ज्ञानी नहीं, बल्कि जिम्मेदार और कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बनाने का स्पष्ट उद्देश्य दिखाई देता है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को जीवनोपयोगी और समाजोन्मुखी माना गया। भगवद्गीता इस दृष्टि को और सुदृढ़ करती है, जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”

(भगवद्गीता 2.47)

यह श्लोक दर्शाता है कि ज्ञान और कर्म का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि समाज और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व है। इसलिए प्रत्येक भारतीय के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पहचाने और भारतीय ज्ञान को आधुनिक संदर्भ में समझे।

वर्तमान समय में यह अनिवार्य हो गया है कि भारतीय ज्ञान को आधुनिक ज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति के साथ जोड़ा जाए। विज्ञान को बढ़ावा देना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि गणित, रसायन और भौतिकी के क्षेत्र में भारतीय परंपरा का ऐतिहासिक योगदान रहा है। यह जोड़ भारतीय ज्ञान को अतीत की वस्तु नहीं, बल्कि समकालीन और भविष्योपयोगी विचारधारा के रूप में स्थापित करता है।

भारतीय मूल्यों को सुदृढ़ करने के लिए वैदिक ग्रंथों में वर्णित शासन और सामाजिक संरचना से भी प्रेरणा ली जा सकती है। धर्म, कर्तव्य और लोककल्याण पर आधारित यह संरचना वर्चस्व की नहीं, बल्कि नैतिक अनुशासन की पक्षधर है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः”

(भगवद्गीता 3.21)

अर्थात् नेतृत्व का आधार शक्ति नहीं, बल्कि आचरण है। यही विचार भारतीय ज्ञान परंपरा को विशिष्ट बनाता है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान केवल एक अकादमिक विषय नहीं, बल्कि एक समग्र विचारधारा है, जो सदियों से व्यक्ति के व्यवहार, कला, विज्ञान और भाषा के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त रही है। यह जीवन जीने की कला है, जो जागरूकता के साथ-साथ समाज के सतत विकास की भी बात करती है।



आज जब विश्व पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है—जिसके परिणामस्वरूप सूखा, जल-संकट और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ बढ़ रही हैं—तब भारतीय ज्ञान परंपरा समाधान का वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। वैश्विक स्तर पर प्रतिवर्ष अनेक सम्मेलन आयोजित होने के बावजूद वैचारिक मतभेदों के कारण ठोस समाधान नहीं निकल पाता, जबकि भारतीय परंपरा में पर्यावरण संरक्षण और जल प्रबंधन की समग्र व्यवस्था पहले से विद्यमान है।

भारतीय दर्शन और आयुर्वेद में प्रकृति और मानव जीवन के बीच गहरे संबंध को स्वीकार किया गया है। यह माना गया है कि जब तक मनुष्य पर्यावरण के साथ संतुलन बनाए रखता है, तब तक स्वास्थ्य और सामाजिक सुख-संप्रदाय सुरक्षित रहता है। आयुर्वेद में पंचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—के संतुलन को स्वास्थ्य का मूल आधार माना गया है। इनमें असंतुलन होने पर शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं (Charaka Samhita, Sutrasthana, c.1000 BCE)।

गीता भी इसी समन्वयात्मक दृष्टि को पुष्ट करती है—

“अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः”

(भगवद्गीता 10.20)

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि सभी प्राणियों और प्रकृति में एक ही चेतना व्याप्त है। अतः पर्यावरण का शोषण आत्म-विनाश के समान है।

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल ऐतिहासिक स्मृति या सांस्कृतिक विरासत नहीं है, बल्कि यह एक **जीवंत दार्शनिक चेतना** है, जो व्यक्ति, समाज, प्रकृति और शासन—सभी के बीच संतुलन स्थापित करती है। औपनिवेशिक काल में जिस भारतीय ज्ञान को असभ्य, अवैज्ञानिक और अप्रासंगिक घोषित किया गया, वही ज्ञान आज वैश्विक संकटों—पर्यावरणीय विनाश, मानसिक तनाव, हिंसा और नैतिक पतन—के समाधान के रूप में पुनः उभर रहा है। इस संदर्भ में **भगवद्गीता** भारतीय ज्ञान परंपरा की वह केंद्रीय धुरी है, जो कर्म, ज्ञान और भक्ति के माध्यम से आत्मबोध का मार्ग प्रशस्त करती है।

भगवद्गीता कर्मयोग की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करती है, जो उपनिवेशी शोषण की मानसिकता के पूर्णतः विपरीत है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—



“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन” (गीता 2.47)

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म पर है, फल पर नहीं। इसके विपरीत औपनिवेशिक सत्ता ने फल-केंद्रित दृष्टिकोण अपनाते हुए प्राकृतिक संसाधनों, मानव श्रम और ज्ञान का अंधाधुंध शोषण किया। भारतीय ज्ञान परंपरा का यह कर्मदर्शन व्यक्ति को कर्तव्यनिष्ठ, नैतिक और उत्तरदायी नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। औपनिवेशिक शासन ने भारतीयों को आत्महीन और नेतृत्वहीन सिद्ध करने का प्रयास किया, जबकि भगवद्गीता में नेतृत्व और सुशासन का स्पष्ट दर्शन मिलता है।

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः” (गीता 3.21)

श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है, सामान्य जन उसी का अनुसरण करते हैं। रामायण और महाभारत में वर्णित शासन-प्रणाली, अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व इस सिद्धांत को व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो भारतीय प्रशासनिक और नैतिक संरचना की गहराई को दर्शाता है।

पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में भी भगवद्गीता और भारतीय ज्ञान परंपरा आधुनिक विज्ञान से कहीं अधिक समग्र दृष्टि प्रस्तुत करती है। गीता में कहा गया है—

“अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः” (गीता 3.14)

अर्थात् सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न वर्षा से। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि प्रकृति का संतुलन ही जीवन का आधार है। आयुर्वेद में पंचमहाभूतों का सिद्धांत और पर्यावरण के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन की अवधारणा आज के जलवायु परिवर्तन और जैव-विविधता संकट का स्थायी समाधान प्रस्तुत करती है। हिंसा और वैश्विक अशांति के संदर्भ में गीता का आत्मसंयम और वैराग्य का दर्शन अत्यंत प्रासंगिक है।

“विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः” (गीता 2.71)

जब व्यक्ति लोभ, मोह और अहंकार से मुक्त होता है, तब हिंसा स्वतः समाप्त होती है। यही दर्शन महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांत में परिलक्षित होता है, जिसने औपनिवेशिक सत्ता की नींव को हिला दिया।



वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को गीता का सार्वभौमिक दृष्टिकोण और अधिक व्यापक बनाता है—
“समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्” (गीता 13.27)

जो सभी प्राणियों में एक ही चेतना को देखने की शिक्षा देता है। यह दृष्टि औपनिवेशिक वर्चस्व और श्रेष्ठता की मानसिकता को पूरी तरह नकारती है और वैश्विक समानता, शांति एवं सह-अस्तित्व का मार्ग प्रशस्त करती है। आधुनिक विश्व में, जहाँ वैश्वीकरण, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक असंतुलन की चुनौतियाँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं, वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धांत एक समग्र और मानवीय समाधान प्रस्तुत करता है। यह अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय का कल्याण अंततः समस्त मानवता और समस्त जीव-जगत के कल्याण से जुड़ा हुआ है। अतः विश्व को एक बेहतर स्थान बनाने के लिए आपसी सहयोग, सह-अस्तित्व और नैतिक उत्तरदायित्व अनिवार्य हैं।

भारतीय दर्शन और संस्कृति का मूल आधार यह विचार है कि “सभी जीवों को इस धरती पर समान रूप से जीने का अधिकार है।” भारतीय ज्ञान परंपरा में यह मान्यता निहित है कि मानव केवल इस पृथ्वी का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक है। वेदों और उपनिषदों में प्रकृति और जीव-जगत को एक समग्र इकाई के रूप में देखा गया है, जहाँ प्रत्येक तत्व एक-दूसरे पर आश्रित है (Rigveda, c.1500 BCE)। यह दृष्टिकोण जीवन को खंडों में नहीं, बल्कि एक समन्वित संपूर्णता के रूप में समझने की प्रेरणा देता है।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का कथन—

“अहं आत्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः” (गीता 10.20)

यह स्पष्ट करता है कि ईश्वर सभी प्राणियों में व्याप्त है। यह विचार प्रत्येक जीव के अस्तित्व, सम्मान और संरक्षण को समान महत्व देता है। इसी दार्शनिक आधार पर महात्मा गांधी ने अहिंसा को केवल राजनीतिक साधन नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक नैतिक मूल्य के रूप में अपनाया। उनके अनुसार, प्रत्येक जीव के अधिकार का सम्मान किए बिना सच्ची स्वतंत्रता और शांति संभव नहीं है (Gandhi, 1958)।

इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा केवल मानव-केंद्रित नहीं, बल्कि जीव-केंद्रित और प्रकृति-संवेदी है। भारतीय दर्शन यह स्वीकार करता है कि मनुष्य, पशु, वनस्पति और प्रकृति—सभी एक-



दूसरे पर निर्भर हैं। इसीलिए भारतीय चिंतन में यह विचार बार-बार उभरता है कि हम इस पृथ्वी पर **स्थायी स्वामी नहीं, बल्कि अस्थायी अतिथि** हैं। अतः हमारी नैतिक जिम्मेदारी है कि हम भविष्य की पीढ़ियों और आने वाले “अतिथियों” के लिए पृथ्वी को सुरक्षित और संतुलित बनाए रखें। इस संदर्भ में **जैन धर्म** का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जैन दर्शन में पर्यावरणीय नैतिकता अत्यंत गहराई से निहित है। *अहिंसा*, *अपरिग्रह* और *सम्यक दृष्टि* जैसे सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत आचरण, बल्कि संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग का भी मार्गदर्शन करते हैं। जैन परंपरा यह मानती है कि सभी जीवों में आत्मा विद्यमान है, इसलिए प्रत्येक जीवन पवित्र और संरक्षण योग्य है।

आचारांग सूत्र (5वीं शताब्दी ईसा पूर्व) में पृथ्वी, जल, वायु और वनस्पति की रक्षा को आध्यात्मिक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वहीं *तत्त्वार्थ सूत्र* (1वीं शताब्दी ईस्वी) में महावीर स्वामी का यह संदेश मिलता है कि करुणा और दया का विस्तार केवल मनुष्य तक सीमित नहीं, बल्कि सभी प्राणियों तक होना चाहिए। यह विचार आज के पर्यावरणीय संकटों—जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता ह्रास और प्रदूषण—के समाधान की दिशा में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए केवल भावनात्मक आग्रह पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसके लिए एक **दीर्घकालीन, सुसंगत और संरचित योजना** की आवश्यकता है। योग, आयुर्वेद, दर्शन और पर्यावरणीय चिंतन से समृद्ध यह परंपरा तभी समकालीन समाज में प्रभावी बन सकती है जब इसे शिक्षा, शोध और सामाजिक जागरूकता से जोड़ा जाए। पारंपरिक ज्ञान को नई पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए डिजिटल तकनीक, ऑनलाइन पाठ्यक्रम और अंतरविषयक शोध जैसे आधुनिक माध्यमों का उपयोग अनिवार्य है।

साथ ही, भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल तत्व—**सहयोग और सामूहिकता**—आज भी उतना ही प्रासंगिक है। महात्मा गांधी ने कहा था कि “सच्ची प्रगति तभी संभव है जब हम एक-दूसरे के साथ सहयोग करें” (Gandhi, 1958)। यह सहयोग भावना न केवल समाज को सशक्त बनाती है, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा को जीवंत बनाए रखने का आधार भी प्रदान करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि **भविष्य की दिशा** है—जो वैश्विक संकटों के बीच मानवता, प्रकृति और नैतिकता के बीच संतुलन स्थापित करने की क्षमता रखती है।



संदर्भ

1. Acaranga Sutra. (5th century BCE). *Acaranga Sūtra* (Trans. Hermann Jacobi). Oxford University Press.
2. Bhagavad Gītā. (c. 2nd century BCE). *The Bhagavad Gītā* (Trans. Eknath Easwaran). Nilgiri Press.
3. Bhagavad Gītā. (c. 2nd century BCE). *The Bhagavad Gītā* (Trans. S. Radhakrishnan). HarperCollins.
4. Bhagavad Gītā. (c. 2nd century BCE). *The Bhagavadgītā in Sanskrit with English translation* (Trans. Swami Sivananda). Divine Life Society.
5. Bhagavad Gītā. (c. 2nd century BCE). *Śrīmad Bhagavad Gītā with Śaṅkara Bhāṣya* (Trans. Swami Gambhirananda). Advaita Ashrama.
6. Charaka. (c. 1000 BCE). *Charaka Saṃhitā* (Trans. P. V. Sharma). Chaukhambha Orientalia.
7. Galtung, J. (1969). Violence, peace, and peace research. *Journal of Peace Research*, 6(3), 167-191. <https://doi.org/10.1177/002234336900600301>
8. Gandhi, M. K. (1958). *The collected works of Mahatma Gandhi* (Vols. 1-100). Publications Division, Government of India.
9. Iyengar, B. K. S. (1966). *Light on yoga*. George Allen & Unwin.
10. Jacobi, H. (Trans.). (1884). *Jaina sūtras, Part I: The Acaranga sūtra*. Oxford University Press.
11. Mahavira. (1st century CE). *Tattvārtha Sūtra* (Trans. Nathmal Tatia). HarperCollins.
12. Rigveda. (c. 1500 BCE). *R̥gveda Saṃhitā* (Trans. Ralph T. H. Griffith). Motilal Banarsidass.
13. Śaṅkara. (8th century CE). *Bhagavad Gītā Bhāṣya* (Trans. Swami Gambhirananda). Advaita Ashrama.



14. Taittirīya Upaniṣad. (c. 700 BCE). *The Taittirīya Upaniṣad* (Trans. S. Radhakrishnan). HarperCollins.
15. United Nations. (2021). *World social report 2021: Reconsidering rural development*. United Nations Publications.
16. World Health Organization. (2023). *Climate change and health*. World Health Organization.



भारतीयज्ञान परंपरा की दृष्टि से श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदों का दार्शनिक विश्लेषण

अंकित कुमार पाण्डेय

शोधछात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रस्तावना:-

भारतीय दर्शन की सम्पूर्ण परंपरा का मूल वेद हैं। वेदों के कर्मकाण्डीय, उपासना एवं ज्ञानकाण्ड-तीनों का परिपाक उपनिषदों में दिखाई देता है। उपनिषदों को वेदों का अन्तिम भाग होने के कारण “वेदान्त” कहा गया है। औपनिषदिक दर्शन का लक्ष्य केवल तात्त्विक विवेचन नहीं, बल्कि अज्ञान के बन्धन से मुक्त होकर आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति है। भारतीय ज्ञान परंपरा में उपनिषद तथा श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान केन्द्रीय, मूलभूत और आधारभूत है। उपनिषद वैदिक साहित्य के दार्शनिक शिखर के रूप में ब्रह्म, आत्मा, जगत् और मोक्ष जैसे गूढ़ तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं, जबकि श्रीमद्भगवद्गीता उन्हीं औपनिषदिक सिद्धान्तों को जीवन, कर्म, समाज और नैतिकता से जोड़कर प्रस्तुत करती है। श्रीमद्भगवद्गीता जो महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है, भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐसा ग्रंथ है जो उपनिषद के तत्त्वज्ञान को जीवन की व्यवहारभूमि में उतारता है। युद्धभूमि में विषादग्रस्त अर्जुन और उपदेशक श्रीकृष्ण का संवाद मानव जीवन के शाश्वत दार्शनिक संकटों का प्रतीक है। शंकराचार्य द्वारा गीता को ‘गीतोपनिषद्’ कहा जाना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि गीता उपनिषदों का सारभूत रूप है—



सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥¹

भारतीय ज्ञान परंपरा का दार्शनिक आधार -

भारतीय ज्ञान परंपरा का लक्ष्य केवल ज्ञान-संग्रह नहीं, अपितु जीवन का परिष्कार है। यह परंपरा 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' के आदर्श पर आधारित है। यहाँ दर्शन जीवन से पृथक नहीं, बल्कि जीवन का मार्गदर्शक है। श्रुति (वेद-उपनिषद्), स्मृति (गीता, धर्मशास्त्र), दर्शन (षड्दर्शन), आचार और साधना—इन सबका समन्वय भारतीय ज्ञान परंपरा की विशिष्ट पहचान है। उपनिषदों में ज्ञानमार्ग की प्रधानता है, जबकि गीता ज्ञान को कर्म और भक्ति से जोड़कर समन्वयवादी दृष्टि प्रस्तुत करती है। उपनिषदों का केन्द्रीय विषय ब्रह्म है। ब्रह्म को परम सत्य, नित्य, सर्वव्यापक और निर्विकार बताया गया है— सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ²

ब्रह्म को सृष्टि का कारण, आधार और लक्ष्य माना गया है। वह न केवल जगत् का उपादान कारण है, बल्कि निमित्त कारण भी है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति॥³

यह ब्रह्म निराकार, निर्गुण और अद्वैत है, जिसे बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा नहीं, बल्कि आत्मज्ञान द्वारा जाना जा सकता है।

आत्म-तत्त्व और ब्रह्मात्मैक्य - उपनिषदों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त आत्मा और ब्रह्म की ऐक्यता है। आत्मा को नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वरूप बताया गया है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥⁴

महावाक्यों के माध्यम से उपनिषद् आत्म-ब्रह्म ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं—

¹ गीता माहात्म्य

² तैत्तिरियोपनिषद् 2.1.1

³ तैत्तिरियोपनिषद् 3.1.1

⁴ कठोपनिषद् 1.2.18



अहं ब्रह्मास्मि⁵ तत्त्वमसि⁶

यह अद्वैत दृष्टि भारतीय ज्ञान परंपरा का दार्शनिक शिखर है। उपनिषदों में मोक्ष को अज्ञान-निवृत्ति और आत्मसाक्षात्कार के रूप में परिभाषित किया गया है। मोक्ष कोई स्थान नहीं, बल्कि चेतना की अवस्था है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥⁷

ज्ञान ही मोक्ष का साधन है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥⁸

श्रीमद्भगवद्गीता : उपनिषद् दर्शन का व्यावहारिक रूप -गीता उपनिषद् के तत्त्वज्ञान को जीवन की व्यावहारिक परिस्थितियों में प्रस्तुत करती है। अर्जुन का विषाद उपनिषदों के 'अविद्या' तत्त्व का जीवंत उदाहरण है। श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया उपदेश ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय प्रस्तुत करता है। गीता में आत्मा का स्वरूप गीता आत्मा की नित्यता, अविनाशिता और अकर्तृत्व पर बल देती है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः⁹

यह विचार कठोपनिषद् से सीधा साम्य रखता है।

➤ **कर्म-सिद्धान्त** : गीता का मौलिक योगदान- उपनिषदों में कर्म की अपेक्षा ज्ञान की प्रधानता है, किंतु गीता कर्म को त्यागने के बजाय उसके शुद्धिकरण का मार्ग बताती है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन¹⁰

निष्काम कर्म आत्मशुद्धि का साधन है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः¹¹

⁵ बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.10

⁶ छान्दोग्योपनिषद् 6.8.7

⁷ ईशावास्योपनिषद् 11

⁸ श्वेताश्वतरोपनिषद् 3.8

⁹ श्रीमद्भगवद्गीता 2.20

¹⁰ श्रीमद्भगवद्गीता 2.47

¹¹ श्रीमद्भगवद्गीता 5.10



➤ **ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का समन्वय** - गीता का दार्शनिक वैशिष्ट्य त्रिविध योग का समन्वय है।

- ज्ञानयोग-न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते¹² (गीता 4.38)
- भक्तियोग-भक्त्या मामभिजानाति यावान्यथास्मि तत्त्वतः¹³ (गीता 18.55)
- कर्मयोग-योगः कर्मसु कौशलम्¹⁴ (गीता 2.50)

➤ **निर्गुण और सगुण ईश्वर का समन्वय** -उपनिषदों में ईश्वर का स्वरूप प्रायः निर्गुण है-

नेति नेति (बृहदारण्यकोपनिषद्)

गीता उसी ब्रह्म को सगुण, साकार रूप में प्रस्तुत करती है-

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥¹⁵

सामाजिक और नैतिक दर्शन- गीता उपनिषदिक आत्मज्ञान को सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। यह भारतीय ज्ञान परंपरा के लोकमंगलकारी स्वरूप को स्पष्ट करता है-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥¹⁶

➤ **आचार्यों की व्याख्यात्मक परंपरा** - शंकराचार्य ने अद्वैत, रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत और माध्वाचार्य ने द्वैत दृष्टि से गीता-उपनिषद् की व्याख्या की। इससे इन ग्रंथों की दार्शनिक व्यापकता सिद्ध होती है।

निष्कर्ष - भारतीय ज्ञान परंपरा की दृष्टि से उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता एक ही दार्शनिक परंपरा के दो पूरक आयाम हैं। उपनिषद् तत्त्वज्ञान की गहराई प्रदान करते हैं, जबकि गीता उस ज्ञान को जीवन की व्यवहारभूमि में उतारती है। ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय, निर्गुण-सगुण की एकता और मोक्ष की

12 श्रीमद्भगवद्गीता 4.38

13 श्रीमद्भगवद्गीता 18.55

14 श्रीमद्भगवद्गीता 2.50

15 श्रीमद्भगवद्गीता 10.8

16 श्रीमद्भगवद्गीता 3.20



सार्वभौमिक साधना—ये सभी भारतीय दर्शन को वैश्विक और सार्वकालिक बनाते हैं। अतः गीता और उपनिषद् भारतीय ज्ञान परंपरा के अमूल्य स्तम्भ हैं।

संदर्भग्रन्थ सूची:-

1. आदि शंकराचार्य. (2016). दशोपनिषद् भाष्य. गोरखपुर: गीताप्रेस।
2. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकर भाष्य सहित). (2019). गोरखपुर: गीताप्रेस।
3. श्रीमद्भगवद्गीता (रामानुज भाष्य सहित). (2017). गोरखपुर: गीताप्रेस।
4. श्रीमद्भगवद्गीता (माध्व भाष्य सहित). (2016). गोरखपुर: गीताप्रेस।
5. श्वेताश्वतर उपनिषद् (शांकर भाष्य सहित). (2015). गोरखपुर: गीताप्रेस।
6. उपाध्याय, बलदेव. (1998). भारतीय दर्शन की भूमिका. वाराणसी, भारत: चौखम्भा विद्याभवन।
7. चटर्जी, सतीशचन्द्र, एवं दत्ता, धीरेन्द्रमोहन. (1939). भारतीय दर्शन का परिचय. कोलकाता, भारत: कलकत्ता विश्वविद्यालय।
8. व्यास. (2014). महाभारत (भीष्मपर्व). गोरखपुर, भारत: गीताप्रेस।



भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के आर्थिक मूल्यों की प्रासंगिकता

डॉ. कुलदीप कुमार सेहगल

एसोसिएट प्रोफेसर

माता सुन्दरी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)

सारांश

अभिनव शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रचार और विस्तार पर विशेष बल दिया जा रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञानराशि का अमूल्य रत्न है, जिसके आलोक ने न केवल भारतवर्ष को अपितु समग्र विश्व को आध्यात्मिक, सामाजिक, नैतिक, दार्शनिक एवं उत्कृष्ट अर्थशास्त्रीय मूल्य भी प्रदान किए हैं।

वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा, जो वेद प्रतिपादित आदर्शों और मूल्यों से अनुप्राणित है। उन वेदों की व्याख्या करने वाले महाभारत इत्यादि ग्रंथों में जीवन की समग्रता को केवल धर्म और मोक्ष तक ही सीमित न रखते हुए चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सभी की उपलब्धि को आदर्श के रूप में स्थापित किया गया है।

“धर्म अर्थ च कामे च मोक्षे च भरतर्षभः।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥”¹

ऐसे में श्रीमद्भगवद्गीता, जो कि महाभारत के भीष्म पर्व का ही एक अंश है। उसमें भला किस प्रकार जीवन की समग्रता का प्रतीक समझे जाने वाले अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों की पूरी तरह उपेक्षा हो सकती है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों के दमन में जीवन की समग्रता को नहीं देखती, अपितु इनके संतुलन और सुनियोजन में ही भगवद्गीता का निहितार्थ उपलब्ध होता है।



आधुनिक प्रसंगों में भी जब भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास करना ही शिक्षा और राष्ट्रनीति का लक्ष्य निर्धारित हो चुका है, तब ऐसी स्थिति में भगवद्गीता जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ की प्रासंगिकता को और अधिक समृद्ध करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक कर्तव्य है कि गीता की व्याख्या करते समय केवल धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों की ही नहीं, बल्कि उसमें प्रतिपादित जीवन के आर्थिक पक्ष और संतुलित भौतिक विकास पर आधारित संदेशों को भी अत्यंत सावधानी के साथ प्रचारित किया जाए।

इसी उपर्युक्त महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे द्वारा गीता पर आधारित अर्थशास्त्रीय मूल्यों को आधार बनाकर लिखे गए यत् किंचित शोध साहित्य का अवलोकन और विषयान्वेषण उपलब्ध साधनों के आधार पर किया गया है। शोध गंगा (यूजीसी) तथा (गूगल स्कॉलर) इत्यादि आभासी पटलों पर रिसर्च गेट जैसे अंतर्जालीय स्रोतों के साथ-साथ विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुस्तकालयों तथा प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं से संकलित विषय सामग्री के आधार पर

यह ज्ञात हुआ है कि गीता में प्रबंधन, व्यावसायिक नैतिकता और नेतृत्व आदि विषयों पर उपलब्ध शोध सामग्री यद्यपि आधुनिक संदर्भ में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है तथापि इनके अतिरिक्त अर्थशास्त्र के अनेक ऐसे पक्ष हैं जिनका मूल्यांकन आवश्यक समझा जा रहा है। जैसे श्रम विभाजन, कौशल संवर्धन, स्थायी विकास, पर्यावरण संरक्षण, भ्रष्टाचार और अपराधों से मुक्त आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, तनावरहित और मानसिक स्वास्थ्य से युक्त व्यावसायिक परिस्थितियों की स्थापना इत्यादि।

भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार अर्थ और काम पुरुषार्थ केवल सांसारिक या भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं हैं, अपितु वे आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर साधक मनुष्यों के लिए भी अनिवार्य माने गए हैं। भौतिक संसाधनों का संतुलित, मर्यादित एवं धर्मसम्मत उपयोग ही व्यक्ति को आत्मिक उन्नति की ओर ले जाता है – यह गीता का मूल संदेश है।

इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित आर्थिक मूल्यों की सम्यक समीक्षा करना है, साथ ही यह स्पष्ट करना है कि अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों तथा भौतिक संसाधनों की आवश्यकता साधक मनुष्यों के लिए भी क्यों और कैसे अपरिहार्य है। ऐसा विश्वास है कि यह विवेचन आधुनिक प्रबंधन दृष्टिकोण और पारंपरिक आध्यात्मिक चेतना के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होगा।



शोध पत्र :

ज्ञानदीपोऽक्षयो गीता संघर्षे सौख्यसाधिका।
युद्धभूमावपि प्रोक्ता समराणां सुशंकरी॥²

यद्यपि गीता युद्ध की पृष्ठभूमि में कही गई है, लेकिन यह युद्धों का और मानसिक द्वंद्वों का शमन करने वाली है, शांति प्रदान करने वाली है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्म पर्व का हिस्सा है। यह अध्याय 25 से 42 (अथवा 23 से 40) के मध्य श्री कृष्ण और अर्जुन का संवाद है। महर्षि वेदव्यास ने इसे एक कालजयी और अलौकिक कृति कहा है। इसे 'भगवद्गीता' यानी (भगवान द्वारा गाया हुआ संगीत) माना गया है।

सम्पूर्ण मानव जाति की कोई ऐसी समस्या या द्वंद्व नहीं है जिसका समाधान श्रीमद्भगवद्गीता के द्वारा न किया जा सके। गीता केवल अध्यात्म या मोक्ष का विमर्श ही नहीं करती अपितु यह मानव के 'आधिभौतिक' यानी सांसारिक और आर्थिक पक्ष की भी चर्चा करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हैं और गीता उन सभी उपनिषदों और वेदों का सार तत्व है। इस पावन पुनीत परिचर्चा को आर्थिक प्रबन्धन का स्वरूप प्रदान करते हुए इसे भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रतिनिधि ग्रंथ स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ धर्म अध्यात्म और मोक्ष की उपयोगी साधनाओं को केंद्र में रखते हुए भी जीवन के आधिभौतिक पक्ष की कदापि उपेक्षा नहीं की गई है। भगवद्गीता की प्रशंसा में कहा गया है -

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥³

भगवद्गीता समस्त शास्त्रों के मर्म को तथा जीवन के समस्त पक्षों को भी स्वयं में समेटे हुए है जिसे भारतीय ज्ञान परंपरा के अग्रदूत के रूप में समझा जाता है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।⁴

इसके द्वारा मानव मात्र की आधिभौतिक समृद्धि और आर्थिक मूल्यों के अभ्युदय की संभावनाओं का अन्वेषण किया जाना एक उचित और सार्थक प्रयास हो सकता है।



गीता के संदर्भ में युद्ध और अर्थशास्त्र

इस तथ्य का निरंतर विश्लेषण किया जाता रहना अनिवार्य है कि युद्ध की पृष्ठभूमि में कही गई भी भगवद्गीता वास्तव में न तो किसी युद्ध को प्रेरित करती है और न ही वह किसी शोषण करने वाले अन्यायपूर्ण क्रूर कर्म और दमन का समर्थन करती है।

अनेक बार यह भी देखने को मिला है कि कुछ दुराग्रही और भगवद्गीता के संबंध में अपूर्ण ज्ञान रखने वाले और भारतीय संस्कृति की आत्मा को न समझकर उसका तिरस्कार करने वाले, देश और विदेश के तथाकथित विद्वान भगवद्गीता पर युद्ध को प्रोत्साहित करने का अनुचित अभियोग लगाते रहे हैं।

इस संबंध में दिसंबर 2011 में रशिया (Russia) के साइबेरिया क्षेत्र के एक शहर तोम्स्क (Tomsk) की एक अदालत में इस्कॉन (ISKCON) संस्था द्वारा प्रकाशित एक महत्वपूर्ण भाष्य ('भगवद्गीता यथावत्'), के रूसी भाषा में अनुवाद पर जो युद्ध को प्रोत्साहित करने का अनुचित अभियोग न्यायालय में अनावश्यक रूप में चलाया गया, वह इसका जीवंत प्रमाण है कि भगवद्गीता जैसे परम आध्यात्मिक और भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ की किसी भी काल में षड्यंत्रों द्वारा की जाने वाली अनावश्यक मानहानि से उसकी रक्षा के उपाय निरंतर किए जाते रहने आवश्यक हैं। इस संबंध में भारत के निरंतर प्रयासों द्वारा रूसी न्यायालय ने इस प्रकार के कृत्रिम अभियोग को निरस्त कर दिया। और यह इस बात का प्रमाण है कि भगवद्गीता किसी प्रकार से भी साम्प्रदायिक उन्माद और केवल अपने आर्थिक लाभ, सुख-सुविधाओं और स्वार्थ की पूर्ति के लिए किए जाने वाले युद्ध और संघर्ष को प्रेरित नहीं करती।

अर्जुन स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि वे शत्रुओं द्वारा निःशस्त्र करके मारे जाने पर भी और तीनों लोकों का राज्य ठुकरा कर भी केवल भिक्षा माँगकर अपना जीवन निर्वाह कर लेना श्रेष्ठ समझेंगे, किंतु कदापि अपने गुरुजनों, अपने संबंधियों और अपने प्रियजनों पर शस्त्र नहीं उठाएंगे और एक बड़े जनसंहार का कारण नहीं बनेंगे।

गुरुनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामास्तु गुरुनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥⁵
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥⁶



गीता में भगवान ने अर्जुन को जिस युद्ध की प्रेरणा दी है, वह एक योद्धा का पवित्र कर्तव्य है जहाँ उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए और न्याय की स्थापना के लिए शत्रुओं के विरुद्ध खड़े होना है।

जहाँ लाभ-हानि, जय-पराजय इत्यादि का भी विचार नहीं किया गया है, केवल स्वधर्म पालन के लिए इस युद्ध को उचित माना गया है।

**सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥⁷**

इसके ठीक विपरीत आधुनिक काल में विभिन्न राष्ट्र अलग-अलग व्यक्तिगत कारणों और आर्थिक लाभों की इच्छा से दूसरे शक्तिहीन देशों पर जिस प्रकार का अनुचित संघर्ष, आर्थिक संकट तथा शस्त्रों की स्पर्धा को बढ़ावा देने वाले युद्धों को आरोपित कर रहे हैं और उसे केवल अपने आर्थिक लाभ के लिए अथवा केवल अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए अनुचित रूप में महिमामंडित करते हुए वर्षों-वर्षों तक निरंतर ढोये जा रहे हैं, भारतीय ज्ञान परंपरा और भगवद्गीता इस प्रकार के लालचपूर्ण संघर्ष का कदापि समर्थन नहीं करती।

भौतिक जगत की उपादेयता का प्रतिपादन:

भगवद्गीता में आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं के आकर्षण के परिहार को उचित माना गया है। किन्तु फिर भी सामान्य मनुष्य अथवा यहाँ तक कि साधक व्यक्तियों के लिए भी भौतिक जगत की पूर्ण रूप से उपेक्षा का कहीं भी विधान नहीं है।

गीता के विभिन्न प्रसंगों में भगवान ने भौतिक जगत के अस्तित्व की वास्तविकता और उसकी उपादेयता को सुनिश्चित करने वाले बहुत से प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। विभिन्न संदर्भों में बहुत-सी भौतिक सुविधाओं और उनके साधनों की प्राप्ति, उनकी सुरक्षा और उनके सदुपयोग के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के विभिन्न उपायों का पर्याप्त कथन गीता में किया गया है, जो कि आर्थिक मूल्यों की अभिवृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है।



गीता के अष्टम अध्याय में अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ, कर्म तथा अध्यात्म की अलग-अलग प्रकार से व्याख्या करना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि गीता में आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक जगत और उसके संतुलित विकास पर बल दिया गया है, न कि भौतिक जगत की उपेक्षा की गई है।⁸

भगवान द्वारा एकादश अध्याय में अपने विश्वरूप दर्शन में समस्त चराचर जगत को अपना स्वरूप ही बता देना तथा अपनी विभूतियों के अलग-अलग प्रकार से किए गए कथन में जगत की विभिन्न वस्तुओं और पदार्थों को साधक के लिए भगवत्स्वरूप मान लेने की प्रेरणा देना भी इसी तथ्य की ओर संकेत करता है कि भगवद्गीता में भौतिक मूल्यों की साधक व्यक्तियों तक के लिए भी उपेक्षा नहीं की गई है।⁹

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥¹⁰

हे अर्जुन! मैं सभी प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ; मैं ही सभी भूतों का आदि, मध्य और अंत हूँ।

स्थावराणां हिमालयः¹¹

स्थिर वस्तुओं (पर्वतों) में मैं हिमालय हूँ।

स्रोतसामस्मि जाह्नवी¹²

जल-प्रवाहों में मैं गंगा (जाह्नवी) हूँ।

गीता के सप्तम अध्याय में भगवान ने अपरा प्रकृति के अंतर्गत भौतिक जगत के संपूर्ण साधनों, प्रकृति एवं पर्यावरण से जुड़े हुए विभिन्न तत्वों को महत्त्वपूर्ण और उपादेय बताया है। यहाँ पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, यहाँ तक कि मन, बुद्धि और अहंकार इत्यादि को भी अपनी अपरा प्रकृति के अंतर्गत मानते हुए इनके संतुलित विकास और उपयोग पर बल दिया है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥¹³

आधुनिक काल में सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा देते हुए भी पर्यावरण के संरक्षण को सुनिश्चित करने की प्रेरणा भगवद्गीता के उन सन्दर्भों से प्राप्त हो जाती है जहाँ प्रकृति में परमेश्वर को देखने की संकल्पना विद्यमान है। वर्तमान आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करने के लिए सांस्कृतिक पर्यटन के साथ-साथ स्थायी विकास (सस्टेनेबल डेवलपमेंट) पर अधिक बल दिया जा रहा है किंतु पर्यावरण के संरक्षण और



प्रकृति के प्रति प्रेम की स्थापना के अभाव में ये दोनों ही लक्ष्य अधूरे से प्रतीत होते हैं। भगवद्गीता कण-कण में ईश्वरीय समर्पण को प्रोत्साहित करके प्रकृति प्रेम और पर्यावरण संरक्षण को सहज रूप में ही मानव के संस्कारों में स्थापित करती है। इसी प्रकार गीता के विभिन्न प्रकरणों में भगवान ने कहीं तो अपने चार प्रकार के भक्तों में अर्थार्थी साधकों को भी महत्त्व दिया है और कहीं अपने अनन्य भक्तों के योगक्षेम का स्वयं वहन करने का उद्घोष किया है।

**अनन्याशिचन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥¹⁴**

इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थलों पर अलग-अलग देवताओं की उपासना द्वारा साधकों की भौतिक कामनाओं की पूर्ति और उनकी आवश्यकताओं की प्राप्ति का संकेत भी प्राप्त होता है।

अध्याय तीन में भगवान ने सृष्टि-चक्र को निरंतर बनाए रखने के लिए तथा पर्यावरण, वर्षा आदि की निरंतर अभिवृद्धि के लिए यज्ञ-कर्म को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना है। यहाँ तक कि संसार की रक्षा के लिए स्वयं निष्काम होने पर भी भगवान द्वारा कर्मों के किए जाने का संकेत भी किया गया है।

अर्थ और काम का संतुलन:

स्थूल दृष्टि से देखने पर श्रीमद्भगवद्गीता अध्यात्म, धर्म और मोक्ष का प्रतिपादन करते हुए जात होती है। यह निश्चय ही सत्य है कि गीता के कुछ प्रसंगों में जीवन के अर्थ और काम नामक पक्षों के आकर्षण को मर्यादित एवं संतुलित करने का संदेश प्रदान किया गया है।

गीता के तीसरे अध्याय के कुछ अंशों में काम, क्रोध तथा लोभ को पतन का अधोमार्ग स्वीकार करते हुए, रजोगुण से उत्पन्न हुए काम को पाप एवं अपराध का कारण बताया गया है तथा उसके दमन का निर्देश भी प्राप्त होता है। किंतु वास्तव में भगवद्गीता के कुछ दूसरे प्रसंगों में काम नामक पुरुषार्थ को मनुष्य के भौतिक लक्ष्य के रूप में भी अनिवार्य रूप से स्थापित किया गया है। भगवान ने काम तत्त्व को धर्म के अनुकूल प्रयोग में लाते हुए प्रजा की उत्पत्ति के व्यवहार के रूप में इसे आवश्यक और उचित माना है। इसी प्रकार विभिन्न संदर्भों में मनुष्य द्वारा देवताओं की उपासना करते हुए विभिन्न कामनाओं की प्राप्ति और भौतिक लक्ष्यों की सिद्धि को भी मान्यता प्रदान की है।

बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ (भगवद्गीता 7.11)



काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥¹⁵

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥¹⁶

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥¹⁷

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥¹⁸

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥¹⁹

इसी प्रकार गीता के कुछ प्रसंगों जैसे चतुर्थ अध्याय के अंशों में कहीं द्रव्य यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ को अधिक श्रेष्ठ बता दिया गया है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥²⁰

किंतु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह भी ज्ञात हो जाता है कि गीता के ये सभी प्रसंग आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए अर्थ और काम का केवल संतुलन करने के लिए व्यवस्थित किए गए हैं, न कि इनके द्वारा जीवन के आर्थिक मूल्यों और भौतिक संसाधनों का तिरस्कार कहीं भी दिखाई देता है।

गीता के अठारहवें अध्याय में धनोपार्जन के संबंध में विभिन्न प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है – अध्यापन कर्म, रक्षा कर्म, वाणिज्य कर्म, कृषि कर्म, पशुपालन कर्म तथा श्रम आधारित सेवा कर्म इत्यादि।

ये मुख्यतः श्लोक 18.41-18.44 में आते हैं।²¹

वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रतिनिधि ग्रंथ और वेदों तथा पुराणों के सार तत्व को प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में भी जीवन की समग्रता और संपूर्णता के लक्ष्य को ही सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। जीवन की संपूर्णता व्यक्ति के आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में निहित है।



ऐसे में व्यक्ति के आधिभौतिक विकास का प्रतिनिधि बन सकने वाले अर्थ और काम नामक पुरुषार्थों की भी गीता में कहीं भी उपेक्षा प्राप्त नहीं होती है।

किन्तु मनुष्य का अमर्यादित भौतिक आकर्षण उसके आध्यात्मिक उत्कर्ष में बाधक सिद्ध न हो, इसी के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा और श्रीमद्भगवद्गीता में अर्थ और काम को मनुष्य के धर्म और मोक्ष की सिद्धि में सहायक और साधक तत्व के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

श्रम विभाजन एवं कौशल संवर्धन:

भगवद्गीता में स्वस्थ भारतीय वैदिक परंपरा का समर्थन करते हुए ही श्रम विभाजन के संबंध में महत्वपूर्ण सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं। वस्तुतः भारतीय परंपरा और प्रामाणिक शास्त्रीय व्यवस्था में वर्णगत एवं जातिगत भेदों को सामाजिक अस्पृश्यता के आधार पर व्यवस्थित नहीं किया गया है, जबकि इसका संबंध व्यक्ति और उसके परिवार से जुड़े हुए श्रम आधारित कौशल के साथ है, जो कि गुणवत्ता की अधिकाधिक संभावनाओं पर आधारित मूल्यों पर केंद्रित है।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ गीता 4.13²²

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्।

ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥²³

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ गीता 5.18²⁴

सच्चा ज्ञानी ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और श्वपाक (चाण्डाल) सभी में समान भाव रखता है।

गीता का स्पष्ट मत है कि अपने गुणवत्ता पर आधारित श्रम का अनुपालन करते हुए तथा उस आधार पर अपनी वृत्ति का लाभ लेते हुए समस्त मनुष्य, समाज, राष्ट्र और विश्व के कल्याण में रत रहते हुए आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति भी कर सकते हैं।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ (गीता 18.46)²⁵



जिस परमात्मा से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, मनुष्य अपने स्वधर्म (अपने कर्म) के द्वारा उसी की उपासना करके सिद्धि को प्राप्त करता है।

समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स ने जिस वर्गविहीन मानव समाज की परिकल्पना अपने ग्रंथों में प्रस्तुत की थी, भगवद्गीता में बहुत पहले ही उसे आध्यात्मिक समाजवाद के रूप में स्थापित कर दिया था। किन्तु यह महत्वपूर्ण है कि जहाँ कार्ल मार्क्स वर्गविहीन समाज की अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए भी मानव समाज को श्रमिक और पूँजीपति इन दो श्रेणियों में आर्थिक दृष्टि से विभाजित कर चुके थे, वहीं भगवद्गीता में आर्थिक दृष्टि से केवल गुणवत्ता और कौशल संवर्धन पर आधारित श्रम विभाजन के सिद्धांत की ही पुष्टि की गई है, जिसमें पूँजीपति वर्ग के रूप में किसी मुख्य श्रेणी या वर्ग को स्वीकार नहीं किया गया है, जो समाज का शोषण कर सकता है। स्वाभाविक गुणवत्ता और कौशल पर आधारित रहने वाले सभी प्रकार के श्रम समाज, राष्ट्र और अध्यात्म और परमतत्व की सेवा में अपना समान महत्व रखते हैं। इनमें से कोई भी शोषक अथवा शोषित वर्ग नहीं है।

आधुनिक काल में भी विश्व के सभी भागों में गुणवत्ता पर आधारित कुछ स्वाभाविक श्रम और कौशलों को केंद्र में रखकर अनेक आर्थिक श्रेणियों का निर्माण हुआ है, जैसे चिकित्सक, आभियांत्रिक (इंजीनियर), सुरक्षाकर्मी, प्राध्यापक, शाक-फल विक्रेता, शिल्पी, श्रमिक, स्वच्छताकर्मी, वाहन चालक, धनानुदाता, बैंक्स में फाइनेंसर्स, कलाकार, वैज्ञानिक इत्यादि। आज ये सभी आर्थिक श्रेणियाँ हैं, जिनका निर्माण उनके गुणवत्ता आधारित श्रम और कौशल के आधार पर हुआ, न कि अस्पृश्यता और शोषण पर आधारित किसी व्यवस्था के आधार पर। इस व्यवस्था को आधार बनाकर इन्हें स्वीकार किया जा सकता है। अतः यह तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भगवद्गीता कार्ल मार्क्स के वर्गविहीन समाज की अपेक्षा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना प्रस्तुत करती है, जहाँ शोषण और भेदभाव से रहित श्रम और कौशल आधारित अर्थात् स्वाभाविक गुणों पर केंद्रित श्रम और परस्पर स्वस्थ सहयोग करने वाली और आर्थिक समृद्धि को निरंतर बढ़ाने वाली श्रेणियों की उपादेयता सदा बनी रहें।²⁶

इस विषय में भारतीय परंपरा को आधार बनाकर एक महत्वपूर्ण सुझाव यह दिया जा सकता है कि जब जनसंख्या के अनुपात में आज वर्तमान परिस्थितियों में सभी सरकारों के पास रोजगार अथवा किसी एक विशेष क्षेत्र में वृत्ति लाभ या नौकरी के अवसर बहुत सीमित हैं, तब केवल आरक्षण के भरोसे ही संपूर्ण समाज को आर्थिक न्याय दिया जा पाना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में जहाँ एक ओर स्वरोजगार के लिए कौशल संवर्धन की विशेष आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर कौशल विकास के लिए भी स्वाभाविक गुणों और योग्यताओं की पहचान किए जाने की भी महत्वपूर्ण उपादेयता है।



भगवद्गीता के विभिन्न संदर्भों में ऐसे बहुत से सूत्र प्राप्त होते हैं, जो आर्थिक प्रबंधन को प्रोत्साहित करते हैं एवं जिनके द्वारा कौशल संवर्धन का महत्वपूर्ण व्यक्तिगत और सामुदायिक लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

गीता प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का सिद्धांत केवल आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, अपितु आर्थिक दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखता है। व्यक्तिगत और सामुदायिक कौशल का संवर्धन करने में इस निष्काम कर्मयोग का महत्वपूर्ण अवदान देखा जा सकता है।

कोई भी व्यवसाय, चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामुदायिक, उसके लक्ष्यों की सिद्धि और लाभ की प्राप्ति तभी संभव है जब उसमें संलग्न कर्मचारी बिना किसी निराशा, पीड़ा और आलस्य के अपने कार्य का निष्ठापूर्वक संपादन करते हों।

गीता का निष्काम कर्मयोग कर्मचारियों को समर्पण, और निष्ठा से युक्त होकर अथक परिश्रम करने की प्रेरणा देता है। साथ ही वह उन्हें विपरीत परिणाम होने के भय से मुक्त रहने तथा निराशापूर्ण व्यवहार से बचने के मानसिक स्तर को भी प्रदान करता है।²⁷

इसके अतिरिक्त भगवद्गीता ऐसी आचार संहिता का संदेश भी देती है, जो व्यापारिक संगठनों के प्रमुख संचालकों के लिए आदर्श मानी जा सकती है। गीता का स्पष्ट कथन है कि श्रेष्ठ व्यक्ति जिस प्रकार के मानदंड को स्थापित करते हैं, उनका अनुकरण करने वाले भी उसी मानदंड पर चलते हैं।²⁸

आर्थिक संस्थानों के प्रमुख संचालकगण भी जिस प्रकार के कार्य-अनुशासन, समय की मर्यादा एवं कार्य कुशलता का प्रदर्शन करेंगे, उनके सहकर्मी एवं अन्य कर्मचारी भी इसी मर्यादा का पालन करते हुए संस्था को और राष्ट्र को भी श्रेष्ठ आर्थिक लाभ प्राप्त कराने का सामर्थ्य रख सकेंगे।

यह एक प्राणिशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी कार्य अथवा रोजगार में कुशलता की स्थापना के लिए उस कौशल अथवा योग्यता का मनुष्य के स्वाभाविक गुण के रूप में प्रकट होना आवश्यक अथवा अनिवार्य है।

कौशल-विकास एक संस्कारगत अभ्यास है, जिसे केवल बौद्धिक स्तर पर सूचनाओं के आदान-प्रदान से संपन्न नहीं किया जा सकता। कौशलों और योग्यताओं अथवा स्वाभाविक गुणों के इस प्रकार के संस्कारगत अभ्यास को गीता में स्वाभाविक कर्म अथवा सहज कर्म के नाम से भी कहा गया है।

कौशलों का यह संस्कारगत अभ्यास जहाँ व्यक्तिगत रूप से होना संभव है, वहीं व्यापक स्तर पर यह



पारिवारिक और आनुवंशिक रूप में भी देखा गया है। जब किसी परिवार अथवा वंश-परंपरा के अधिकांश या कुछ लोग किसी एक विशेष प्रकार के व्यवसाय का निरंतर अभ्यास करते हैं, तब वह दीर्घकालिक अभ्यास और संस्कार एक महत्वपूर्ण कौशल और श्रेष्ठ योग्यता के रूप में विकसित हो जाता है।

फलतः वह सामुदायिक प्रतिष्ठा और पहचान का कारण बनने के साथ-साथ राष्ट्र की उन्नति में भी योगदान देता है। वस्त्रकार, मूर्तिकार, चर्मकार, लौहकार, यहाँ तक कि आधुनिक युग में संगीत के पारिवारिक घराने – ये सब जातियों का रूप न होकर एक विशेष प्रकार के कौशल की सामुदायिक पहचान के परिचायक हैं।

इनमें से किसी भी प्रकार के कौशल-आधारित समुदाय की अनुपस्थिति में राष्ट्र की आर्थिक और व्यावसायिक गतिविधियाँ अवरुद्ध हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में आजीविका के अवसरों को और अधिक बढ़ाने के लिए सरकारी नौकरियों और आरक्षण के दबाव से बहुत सीमा तक मुक्त होते हुए, दीर्घकालिक संस्कार और अभ्यास पर आधारित सामुदायिक कौशलों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाए और उन्हें विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाए, तो इसके अधिक सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

पूर्वाभ्यास पर आधारित कौशलों के विकास और निरंतर प्रोत्साहन के लिए प्रशिक्षण, तकनीक तथा आवश्यक अनुदान आदि समय-समय पर प्रदान किए जाने से रोजगार की प्राप्ति के लिए नगरों की ओर होने वाले पलायन की समस्या को भी रोका जा सकता है। सरकारी अथवा निजी संस्थाओं में एक विशेष प्रकार की नौकरी अथवा सेवा के लिए लगने वाली भीड़, प्रतीक्षा और पीड़ा को भी बहुत सीमा तक कम किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए किन्नर समाज तथा नटनर्तक समाज मुख्य रूप से कलाओं के व्यवसाय से जुड़ा रहा है यदि उन्हें उचित सम्मान, प्रशिक्षण और समुचित आय देकर प्रोत्साहित किया जाए, तो भारत की प्राचीन धरोहर – नृत्य, संगीत आदि कलाओं – का संरक्षण और हस्तांतरण भी संभव हो सकता है तथा इस समाज को भिक्षावृत्ति से भी मुक्त करवाया जा सकता है।

इसी प्रकार आदिवासी और बंजारा समाज को वन-संरक्षण तथा जीव-जंतुओं की दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण और विकास से संबंधित परियोजनाओं में स्वाभाविक रूप से रोजगार देकर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

वर्तमान समय में ताजमहल के निकटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले आगरा के पेठा व्यापारियों पर जो आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ है, वह उनकी परंपरा-आधारित कौशल से संबंधित रोजगार के नष्ट हो जाने का ही दुष्परिणाम है।



यदि गीता में प्रतिपादित स्वाभाविक कर्म पर आधारित कौशल-विकास की अवधारणा को ठीक प्रकार से समझ लिया जाए और उसका सामुदायिक स्तर पर तकनीकी जागरूकता तथा प्रोत्साहन की प्रविधियों के माध्यम से अनुपालन कराया जाए, तो बहुत सीमा तक स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं और समाज तथा राष्ट्र की आर्थिक समस्याओं पर भी नियंत्रण पाया जा सकता है।

लोक-कल्याण पर आधारित आर्थिक मूल्यों की स्थापना:

भगवद्गीता उन सभी आर्थिक मूल्यों का संवर्धन करती है जिनका संबंध लोक-संग्रह अथवा लोक-हित से जुड़ा हुआ है और जिनकी आधुनिक युग में भी विशेष प्रासंगिकता है। शिक्षा और स्वास्थ्य की प्राप्ति के साथ-साथ सुखमय जीवन जीने की जिन प्रविधियों का संकेत भगवद्गीता में मिलता है, वे भारतीय ज्ञान-परंपरा से पोषित हैं।

भगवद्गीता में विद्या अथवा शिक्षा को एक प्रमुख जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसे आधुनिक युग में आर्थिक और व्यावसायिक मूल्य के रूप में भी देखा जाने लगा है। गीता के विभिन्न संदर्भों में ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान की भी चर्चा और प्रशंसा हुई है। यहाँ ज्ञान और विद्या के समान अन्य किसी वस्तु को श्रेष्ठ नहीं माना गया है।

“न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।”²⁹

इसी प्रकार ज्ञान और विद्या को सब प्रकार की बाधाओं और चुनौतियों के नाशक के रूप में भी स्थापित किया गया है –

“ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते।”³⁰

शिक्षा को सुव्यवस्थित रूप से संचालित और प्रचारित करते रहने के लिए गुरु, शिक्षक, शास्त्र तथा अनुशासन के महत्त्व की स्थापना भी गीता में प्राप्त होती है।³¹

“तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।”³²

स्वास्थ्य और जीवनशैली:

भगवद्गीता में उत्तम स्वास्थ्य और संतुलित जीवनशैली को भी महत्त्वपूर्ण आर्थिक मूल्य के रूप में माना गया है। उचित आहार-विहार और दिनचर्या द्वारा निर्मित संतुलित जीवनशैली से मनुष्य का व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक स्वास्थ्य प्रभावित होता है।



जब व्यक्ति और समाज शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं, तभी वे अर्थोपार्जन और आर्थिक समृद्धि की कुशलता प्राप्त कर सकते हैं।

“युक्ताहारविहारस्य योगो भवति दुःखहा।”³³

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जिस समाज और राष्ट्र का अधिकांश धन रोगों के उपचार और दुर्व्यसनों के नियंत्रण में व्यय होता है, वह आर्थिक रूप से अक्षम अथवा विकासशील राष्ट्र की संज्ञा प्राप्त करता है। यहाँ दुर्व्यसनों में मद्यपान तथा अन्य प्रकार के नशे सम्मिलित किए जा सकते हैं।

लोकहित और संसाधनों का संतुलित वितरण:

यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि गीता में प्रतिपादित आर्थिक मूल्य केवल धन अथवा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर केंद्रित नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आय और संसाधनों के व्यक्तिगत हित में अत्यधिक संचय के स्थान पर लोकहित में संसाधनों के संतुलित वितरण को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया गया है।

भगवद्गीता में आध्यात्मिक दृष्टि से जिन ब्रह्मज्ञानियों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, उन्हीं को यह भी निर्देश दिया गया है कि उनके द्वारा लोकसंग्रह के लिए यज्ञ, दान और तप जैसे कर्मों का निरंतर संचालन भी किया जाना चाहिए, जिससे समाज का आर्थिक और भौतिक विकास अवरुद्ध न हो।

“यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।”³⁴

गीता में उन लोगों की निंदा की गई है जो अन्न आदि पदार्थों का उपयोग केवल अपने लिए करते हैं, जबकि उनकी प्रशंसा की गई है जो अन्न को लोककल्याण के लिए समर्पित करके उसका उपयोग करते हैं—

“भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।”³⁵

सात्त्विक सुख और आत्मसंतोष:

भगवद्गीता में आत्मसंतोष और सात्त्विक सुख की जो अवधारणा प्रस्तुत की गई है, वह व्यावहारिक और आर्थिक दृष्टि से भी संपूर्ण विश्व के लिए महत्वपूर्ण है। आत्मिक सुख और संतोष पर आधारित जीवनशैली प्रत्येक व्यक्ति और समाज को लोभ लालच और आपराधिक मानसिकता से मुक्त रखती है और व्यक्ति तथा समाज के मध्य उधार लेकर भी घी पीने के दुर्व्यसन से दूर रखने में सहायक हो सकती है। वर्तमान



समाज में पारिवारिक संबंधों और मूल्यों का हनन लूटपाट हत्या भ्रष्टाचार, उत्कोचहरण (रिश्वतखोरी) इत्यादि के भीषण दुष्प्रभाव से अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए आत्मिक सुख और संतोष पर आधारित जीवनशैली को अपनाना आवश्यक है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥³⁶

आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था :

गीता में भारतीय परंपरा के अनुसार कृषि, वाणिज्य, पशुपालन एवं लघु उद्योगों पर आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को अधिक कल्याणकारक और राष्ट्रोपयोगी माना गया है। विदेशी प्रभाव और पराधीन आर्थिक संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्थाएँ आज वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आर्थिक दबाव, अत्यधिक ऋण के बोझ तथा युद्ध आदि संकटों के कारण तेल खनिज आदि संसाधनों की न्यूनता का सामना कर रही है। इन सभी संकटों से मुक्त रहने के लिए भगवद्गीता व्यक्ति और समाज को स्वयं अपने संसाधनों के आधार पर ही अपना आर्थिक हित प्राप्त करने की प्रेरणा देती है।

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥³⁷

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हुए भी श्रीमद्भगवद्गीता आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप आर्थिक मूल्यों को सुनिश्चित करने वाली व्यवस्था के अनुरूप संदेश और अभिप्रेरणाएँ प्रस्तुत करती है।

पादटिप्पणिया :

1. महाभारतम्, वनपर्व, 313.117 –

“धर्मं अर्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥”

2. स्वरचितः श्लोकः (लेखकस्य स्वकीय रचना)



3. गीता-माहात्म्यम् –

“गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।”

4. गीता-माहात्म्यम् –

“सर्वोपनिषदो गावो...”

5. श्रीमद्भगवद्गीता 2.5
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2.8
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2.38
8. श्रीमद्भगवद्गीता 8.1-4
9. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 11 (विश्वरूपदर्शनयोग)
10. श्रीमद्भगवद्गीता 10.20
11. श्रीमद्भगवद्गीता 10.25
12. श्रीमद्भगवद्गीता 10.31
13. श्रीमद्भगवद्गीता 7.4
14. श्रीमद्भगवद्गीता 9.22
15. श्रीमद्भगवद्गीता 3.37
16. श्रीमद्भगवद्गीता 3.40
17. श्रीमद्भगवद्गीता 3.41
18. श्रीमद्भगवद्गीता 3.42
19. श्रीमद्भगवद्गीता 3.43
20. श्रीमद्भगवद्गीता 4.33
21. श्रीमद्भगवद्गीता 18.41-44
22. श्रीमद्भगवद्गीता 4.13
23. महाभारतम्, शान्तिपर्व, 188.8 –

“न विशेषोऽस्ति वर्णानाम्...”



24. श्रीमद्भगवद्गीता 5.18
25. श्रीमद्भगवद्गीता 18.46
26. कार्ल मार्क्स, दास कैपिटल
27. श्रीमद्भगवद्गीता 2.47
28. श्रीमद्भगवद्गीता 3.21
29. श्रीमद्भगवद्गीता 4.38
30. श्रीमद्भगवद्गीता 4.37
31. श्रीमद्भगवद्गीता 4.34
32. श्रीमद्भगवद्गीता 16.24
33. श्रीमद्भगवद्गीता 6.17
34. श्रीमद्भगवद्गीता 18.5
35. श्रीमद्भगवद्गीता 3.13
36. श्रीमद्भगवद्गीता 2.62-64
37. श्रीमद्भगवद्गीता 6.5

संदर्भ-सूची :

(क) प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

- श्रीमद्भगवद्गीता। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2018।
- भगवद्गीता (व्याख्या)। सर्वपल्ली राधाकृष्णन। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011।
- श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्यम्। आदि शंकराचार्य। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015।
- गीता-माहात्म्यम् (पद्मपुराणान्तर्गत)। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2017।
- गीता-रहस्य। बाल गंगाधर तिलक। पुणे: केसरी प्रकाशन, 2014।

(ख) द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

- दास कैपिटल। कार्ल मार्क्स। नई दिल्ली: प्रगति प्रकाशन, 2010।
- भारतीय दर्शन। सर्वपल्ली राधाकृष्णन। नई दिल्ली: राजपाल एंड सन्स, 2012।
- भारतीय दर्शन का इतिहास। सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2013।
- उपनिषद्-साहित्य का अध्ययन। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2015।



- <https://www.thehindu.com/news/international/russian-scholars-come-out-in-support-of-bhagavad-gita-translation/article2950886.ece#> (टॉमस्क रिपोर्ट)
- कठोपनिषद्। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2019।
- ईशावास्योपनिषद्। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2019।
- मुण्डकोपनिषद्। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2019।
- महाभारतम् (वेदव्यासकृत)। गोरखपुर: गीता प्रेस, 2016।



भगवद्गीता में कर्तव्य एवं आत्मबोध

ओम प्रकाश कुमार

शोधच्छात्र (संस्कृत विभाग)

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भगवद्गीता में प्रतिपादित 'कर्तव्य' (धर्म एवं कर्म बोध) तथा 'आत्मबोध' (आत्मज्ञान) अर्थात् आत्मा के स्वरूप की अवधारणाओं का दार्शनिक, शास्त्रीय एवं समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। भगवद्गीता भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी का एक प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का समन्वित जीवन-दर्शन प्रस्तुत हुआ है। इस पत्र में गीता के मूल संस्कृत पाठ तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माधवाचार्य के भाष्यों के आलोक में यह प्रतिपादित किया गया है कि निष्काम कर्म चित्तशुद्धि का साधन है, जबकि आत्मज्ञान मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन है। इस शोध का मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि भगवद्गीता में कर्तव्य और आत्मबोध परस्पर विरोधी न होकर, बल्कि परस्पर पूरक सिद्धान्त हैं। मनुष्य को स्वयं का कर्तव्यबोध उसको नैतिक, सामाजिक एवं कर्मशील जीवन हेतु प्रेरित करता है, जबकि आत्मबोध उसे अविद्या, अहंकार और कर्मबन्धन से मुक्त कर ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति कराता है। भगवद्गीता का दार्शनिक सिद्धान्त कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के त्रिविध मार्गों के माध्यम से मनुष्य को लौकिक कर्तव्य और पारलौकिक मुक्ति के बीच समन्वय स्थापित करने की शिक्षा देता है।

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि भगवद्गीता का कर्तव्य-दर्शन और आत्मबोध-दर्शन सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है तथा आधुनिक युग में भी नैतिकता, शिक्षा, प्रशासन, प्रबंधन एवं मनोविज्ञान के



क्षेत्र में अत्यन्त प्रासंगिक है। इस प्रकार भगवद्गीता मानव जीवन के समग्र नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान हेतु एक समन्वित दार्शनिक आधार प्रदान करती है।

मुख्य शब्द: भगवद्गीता, कर्तव्य, धर्म, आत्मबोध, निष्काम कर्म, ज्ञानयोग, भक्तियोग, मोक्ष।

भूमिका :-

भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक परम्परा का एक अत्यंत ही प्रामाणिक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसको हम सभी उपनिषदों का सार तथा महाभारत का उपनिषद् कह सकते हैं। भगवद्गीता, महाभारत के भीष्मपर्व के अध्याय 23 से 40 तक में स्थित है और इसमें कुल 18 अध्याय तथा 700 श्लोक हैं। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य संवाद के रूप में कर्म, धर्म, आत्मा, ब्रह्म, भक्ति, ज्ञान और मोक्ष जैसे गूढ़ दार्शनिक विषयों का अत्यंत सुसंगठित और समन्वित प्रतिपादन किया गया है। भारतीय दर्शन की प्रस्थानत्रयी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता में गीता को व्यावहारिक दर्शन (Practical Philosophy) का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है। भगवद्गीता के समतुल्य शायद ही कोई ऐसा धर्म ग्रंथ होगा जिस पर इतना लिखा गया। भगवद्गीता समय-समय पर यह और भी आवश्यक और मार्गदर्शन होती जा रही है। एकदम साधारण भाषा में अगर कहे तो भगवद्गीता एक उत्तर है दुनिया के हर प्रश्न का। जीवन से जुड़ा ऐसा कोई प्रश्न नहीं जिसका उत्तर श्री कृष्ण भगवद्गीता में नहीं देते, हमारे मन मस्तिष्क में कोई भी शंका, परेशानी, चिंता किसी भी तरह का आवेग या किसी भी तरह की दुविधा हो सभी का उत्तर भगवद्गीता में निहित हैं, क्योंकि यह जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान कर्म और ज्ञान के समन्वय के माध्यम से प्रस्तुत करती है।

महाभारत के युद्धभूमि में अर्जुन का विषाद मानव मन की सार्वभौमिक समस्या का प्रतीक है। अर्जुन युद्ध के कर्तव्य से विमुख होकर मोह, करुणा और संदेह से ग्रस्त हो जाते हैं। इस स्थिति में श्रीकृष्ण उसे आत्मा के शाश्वत स्वरूप, कर्म के अनिवार्यत्व और धर्म के वास्तविक स्वरूप का उपदेश देते हैं। इस प्रकार भगवद्गीता केवल एक



धार्मिक ग्रन्थ नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व, नैतिक दायित्व और आध्यात्मिक मुक्ति का समन्वित दर्शन है। गीता में 'कर्तव्य' (धर्म एवं कर्म) और 'आत्मबोध' (आत्मज्ञान) दो ऐसे केंद्रीय विषय हैं, जिन पर सम्पूर्ण गीता का दार्शनिक सिद्धान्त आधारित है। कर्तव्य मानव को सामाजिक और नैतिक जीवन में सक्रिय बनाता है, जबकि आत्मबोध उसे आध्यात्मिक उन्नति और मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। भारतीय दर्शन में कर्म और ज्ञान के सम्बन्ध को लेकर विभिन्न मत-मतान्तर पाए जाते हैं। पूर्वमीमांसा दर्शन कर्म को प्रधान मानता है, जबकि उत्तरमीमांसा (वेदान्त) ज्ञान को मोक्ष का एकमात्र साधन मानता है। भगवद्गीता इन दोनों प्रवृत्तियों का समन्वय करते हुए कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का त्रिविध मार्ग प्रस्तुत करती है।

गीता का कर्तव्यबोध 'निष्काम कर्म' की अवधारणा पर आधारित है, जिसमें व्यक्ति फल की आसक्ति त्यागकर कर्म करता है। यह अवधारणा भारतीय नैतिक दर्शन में एक क्रांतिकारी सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हुई। वहीं आत्मबोध की अवधारणा आत्मा के नित्य, अविनाशी और ब्रह्मस्वरूप होने के ज्ञान पर आधारित है। आत्मबोध के द्वारा जीव अविद्या, अहंकार और कर्मबन्धन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। आधुनिक युग में भगवद्गीता का अध्ययन केवल धार्मिक या दार्शनिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा, बल्कि मनोविज्ञान, नैतिक दर्शन, शिक्षा, प्रबंधन, नेतृत्व और जीवन-दर्शन के क्षेत्र में भी इसका व्यापक उपयोग हो रहा है। गीता का कर्तव्य-सिद्धान्त आधुनिक कर्म-संस्कृति और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करता है, जबकि आत्मबोध मानसिक शान्ति, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व विकास का आधार बनता है।

इस शोध में भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्तव्य और आत्मबोध की अवधारणाओं का दार्शनिक, शास्त्रीय तथा समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि गीता में कर्म और ज्ञान किस प्रकार परस्पर विरोधी न होकर पूरक हैं तथा मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में इनकी भूमिका क्या है। इस प्रकार यह शोध भगवद्गीता के कर्तव्य-दर्शन और आत्मज्ञान-दर्शन को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।



भगवद्गीता में कर्तव्य की अवधारणा :-

श्रीमद्भगवद्गीता न केवल एक धार्मिक ग्रंथ है, बल्कि यह मानव जीवन के प्रबंधन का एक मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक मार्गदर्शक भी है। गीता में कर्तव्य केवल कार्य का संपादन नहीं है, बल्कि यह 'स्वधर्म' और 'ईश्वर अर्पण बुद्धि' का संगम है। जहाँ संसार कर्मों के बंधन में बंधा है, वहीं गीता उस मार्ग को प्रशस्त करती है जिसपर कर्म करते हुए भी बंधन से मुक्ति संभव है। सर्व प्रचलति विषय है कि गीता में वर्ण-व्यवस्था और कर्तव्य का आधार निहित है, वस्तुतः इसे गुण-कर्म विभाग के रूप में देखा जा सकता है। गीता की वर्ण-व्यवस्था जन्मजात श्रेष्ठता पर नहीं, बल्कि व्यक्ति के अंतर्निहित गुणों और कार्यों पर आधारित है। भगवान श्रीकृष्ण गीता चौथे अध्याय के 13वें श्लोक में उद्घोषित करते हैं:

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥¹

अर्थात्, चारों वर्णों की रचना गुण और कर्मों के विभाग के अनुसार की गई है। यहाँ 'गुण' का अर्थ प्रकृति के सत्व, रज और तम से है, जो व्यक्ति के स्वभाव को निर्धारित करते हैं। वर्ण-विभाजन समाज के कार्यों को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए एक उपयुक्त व्यवस्था थी, जिसमें 'जन्म' का कहीं उल्लेख नहीं है।

आश्रम व्यवस्था और कर्तव्य

कर्तव्य केवल व्यावसायिक नहीं होता, बल्कि जीवन के विभिन्न पड़ावों से भी जुड़ा है। मानव जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया गया है:

ब्रह्मचर्य: 25 वर्ष की आयु तक ज्ञानार्जन और अनुशासन का समय

गृहस्थ: 50 वर्ष की आयु तक सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन।

¹ भगवद्गीता ४/१३



वानप्रस्थ: 75 वर्ष की आयु तक आध्यात्मिक खोज और समाज को परामर्श देना।

संन्यास: इसके पश्चात पूर्ण त्याग और मोक्ष की साधना

हालाँकि, गीता संन्यास को एक 'मानसिक अवस्था' के रूप में अधिक देखती है, न कि केवल बाहरी त्याग के रूप में।

संन्यास और कर्मयोग संबंध

गीता में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है, संन्यास (कर्मों का त्याग) और कर्मयोग (कर्मों का संपादन) में कौन श्रेष्ठ है?। गीता का स्पष्ट आदेश है:

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥²

अर्थात्, संन्यास और कर्मयोग दोनों मोक्षदायी हैं, किंतु कर्मयोग (निष्काम भाव से कर्म करना) संन्यास से श्रेष्ठ है। यहाँ संन्यास का अर्थ 'अनासक्ति' से है, न कि क्रियाओं के भौतिक परित्याग से। लोकमान्य तिलक के अनुसार, सच्चा संन्यासी वह है जिसमें त्याग की भावना निरंतर विद्यमान रहती है, चाहे वह कर्मों में प्रवृत्त ही क्यों न हो।

लोकसंग्रहः सामाजिक कर्तव्य की सर्वोच्चता : -

गीता के कर्तव्य-बोध का सबसे महत्वपूर्ण पहलू 'लोकसंग्रह' है। इसका अर्थ है, समाज का कल्याण और मर्यादा की रक्षा। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं:

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥³

² भगवद्गीता ५/२

³ भगवद्गीता ३/२०



जानी पुरुष को कर्म करने की कोई व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं होती, फिर भी वह समाज को दिशा देने के लिए कर्म करता है। यदि श्रेष्ठ पुरुष कर्म करना छोड़ देंगे, तो सामान्य जन भी निकम्मे हो जाएंगे और समाज छिन्न-भिन्न हो जाएगा। अतः, लोकसंग्रह के लिए स्वधर्म का पालन अनिवार्य है।

धर्म और कर्तव्य का दर्शन : -

'धर्म' शब्द केवल पूजा-पाठ नहीं, बल्कि 'धारण' करने की शक्ति से संबंधित है। धर्म की व्याख्या करते हुए महाभारत में कहा गया है कि -

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः। यः स्यात् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥⁴

समाज को जो शक्ति बांधे रखती है, वही धर्म है। नीति, कर्तव्य और धर्म गीता के संदर्भ में एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जब भी समाज में इस 'धर्म' की हानि होती है, तब ईश्वर का अवतार होता है ताकि व्यवस्था पुनः स्थापित की जा सके, जैसा की भगवद्गीता में कहा गया है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥⁵

भगवद्गीता में कर्तव्य की अवधारणा केवल कर्म करने तक सीमित नहीं है, बल्कि वह 'स्वधर्म' (अपनी प्रकृति के अनुरूप कार्य), 'निष्काम कर्म' (फलासक्ति का त्याग) और 'लोकसंग्रह' (समाज का कल्याण) का एक दिव्य संगम है। गीता संदेश देती है कि कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता; यदि उसे कर्तव्य मानकर और ईश्वर को अर्पित करके किया जाए, तो वही कर्म मोक्ष का द्वार बन जाता है।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥⁶

⁴ महाभारत शान्ति पर्व

⁵ भगवद्गीता ४/७

⁶ भगवद्गीता १८/४५



(अर्थात्, अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में लगा हुआ मनुष्य ही परम सिद्धि को प्राप्त करता है।)

श्रीमद्भगवद्गीता के कालातीत सिद्धांतों को यदि 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि आज हम 'हाइपर-कनेक्टेड' समाज में हैं जिस समाज में इंसान मानसिक अवसाद और दिशाहीनता से जूझ रहा है, उसका समाधान गीता के 'कर्तव्य-बोध' में ही निहित है।

आज की इस भागदौड़ भरी दुनिया में, जहाँ सफलता का पैमाना केवल भौतिक उपलब्धियाँ और 'सोशल मीडिया वैलिडेशन' बनकर रह गया है, गीता का निष्काम कर्म एक क्रांतिकारी विचार है। आधुनिक मनुष्य अक्सर 'बर्नआउट' का शिकार इसलिए होता है क्योंकि वह कर्म से अधिक उसके परिणामों की चिंता में घुला रहता है। गीता हमें सिखाती है कि हम प्रक्रिया (Process) पर ध्यान केंद्रित करें, न कि केवल परिणाम (Outcome) पर।

स्वधर्म की अवधारणा आज के करियर चयन और 'वर्क-लाइफ बैलेंस' के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। जब एक व्यक्ति अपनी नैसर्गिक प्रतिभा (Inherent Qualities) के विरुद्ध जाकर केवल आर्थिक लाभ के लिए कार्य करता है, तो वह तनावग्रस्त रहता है। गीता के अनुसार अपनी प्रकृति के अनुकूल कार्य करना ही श्रेष्ठ है।

इसके अतिरिक्त, लोकसंग्रह का सिद्धांत आज के 'कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी' और पर्यावरणीय चेतना का आधार बन सकता है। जब कोई कंपनी अपने मुनाफे का एक हिस्सा समाज के कल्याण, पर्यावरण संरक्षण और शिक्षा जैसे सामाजिक कार्यों में स्वेच्छा से लगाती है, तो उसे कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी कहते हैं। यह व्यावसायिक लाभ के साथ-साथ सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी निभाने की एक प्रक्रिया है। व्यक्तिगत लाभ से ऊपर उठकर समाज और प्रकृति के संरक्षण के लिए कार्य करना ही वास्तविक 'कर्तव्य' है।



21वीं सदी के डिजिटल युग में, जहाँ नैतिकता की परिभाषाएँ धुंधली हो रही हैं, गीता का संदेश एक 'कंपास' की भाँति कार्य करता है। यह हमें सिखाता है कि कार्य केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और सामाजिक सेवा का मार्ग है। यदि हम "योग: कर्मसु कौशलम्" (कर्मों में कुशलता ही योग है) को अपना लें, तो हम न केवल एक कुशल पेशेवर, बल्कि एक संतुलित और शांत मनुष्य भी बन सकते हैं।

भगवद्गीता में आत्मबोध की अवधारणा

आत्मा का स्वरूप:-

संपूर्ण उपनिषद्, गीता तथा अन्य भारतीय दर्शनों का एकमात्र लक्ष्य है, आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना। आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जान लेने के बाद फिर मनुष्य को किसी प्रकार का भय, मोह, शोक इत्यादि नहीं रहता। वह सभी प्रकार के दुखों से निवृत्त हो जाता है। किंतु आत्मज्ञान होना सर्व सुलभ नहीं है, गूढ़ तत्वों को जानने वालों के लिए भी यह अत्यंत ही निरीह है।

कठोपनिषद् में यम और नचिकेता के संवाद में आत्मा के स्वरूप के बारे में विस्तार से जानकारी मिलती है। तृतीय वर के रूप में नचिकेतान ने यम से आत्मरहस्य के बारे में जब पूछता है, कि मरे हुए मनुष्य के बारे में कोई बोलता है शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से अतिरिक्त देहान्तर से सम्बन्ध रखनेवाला आत्मा रहता है। और कोई बोलता है कि आत्मा नहीं रहता। इसका हमें प्रत्यक्ष अनुमान इत्यादि प्रमाणों से निश्चित ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः तृतीय वर के रूप में नचिकेता आत्मा का स्वरूप को जानना चाहता है।⁷ यम नचिकेता के इस प्रश्न पर उसकी अल्पायु को देखते हुए उसे अन्य सांसारिक सुख सुविधाओं का प्रलोभन देते हैं। नचिकेता को शतायु होने, बेटे, पोते, असंख्य पशु, हाथी, स्वर्ण, विशाल भूभाग का

⁷ येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२०॥



स्वामित्व तथा इच्छानुसार जीवन का प्रलोभ।⁸ कामानां त्वा कामभाजं करोमि यह कहकर अपनी इच्छानुसार काम पूर्ति का वरदान।⁹, मनुष्य लोक में जितने भी भौतिक सुख सुविधाएं दुर्लभ हैं सभी भोग का प्रलोभन।¹⁰इमा रामाः सरथाः सतूर्या कहकर यम नचिकेता को विभिन्न प्रकार के भौतिक सुख सुविधाओं का प्रलोभन देते हैं। किंतु स्थित प्रज नचिकेता उस आत्म रहस्य के बारे में अडिग रहता है और यम से कहता है कि आपने जितने ही भोगों का उल्लेख किया है वे सभी अल्पायु हैं नश्वर हैं और इंद्रिय के तेज को जीर्ण कर देने वाले हैं और अंत में एक और बात कहते हैं कि न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो¹¹ नचिकेता इन सारी मिथ्या भोगों के प्रलोभन को छोड़कर यम से प्रार्थना करता है कि ही आप हमको आत्म रहस्य को ही बताइए इसके अतिरिक्त मुझे अन्य कोई भोग नहीं चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया है कि यह शरीरी (आत्मा) न कभी जन्मता है और न मरता है तथा यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला नहीं है। यह जन्मरहित, नित्य-निरन्तर रहनेवाला, शाश्वत और पुराण (अनादि) है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता-

**न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वाऽभविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥¹²**

इसके स्वरूप को और भी स्पष्ट करते हुए ये कहा गया कि यह आत्मा काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, यह गीला नहीं किया जा सकता और यह सुखाया भी नहीं जा सकता। कारण कि यह नित्य रहनेवाला सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाववाला और अनादि है-

⁸ शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

⁹ एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्त चिरजीविकां च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

¹⁰ ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाश्छन्दतः प्रार्थयस्व।इमा रामाः सरथाः सतूर्या न आभिर्मत्प्रताभिः हीदृशा लभ्यनीया मनुष्यैः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥

¹¹ न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥

¹² भगवद्गीता २/२०



अच्छेद्योऽयमदाहयोऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥¹³

कठोपनिषद् में भी इसके स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है कि यह बुद्धिमान (आत्मा) न जन्म लेता है, न मरता है। यह न किसी से उत्पन्न हुआ है, न इससे कोई उत्पन्न हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता-

न जायते प्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतचिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥¹⁴

कठोपनिषद् में ही और भी सूक्ष्मतम वर्णन करते हुए कहा गया है कि आत्मा अणु से भी सूक्ष्मतर, महान् से भी महत्तर, 'आत्मतत्त्व' प्राणी की हृद्-गुहा में निहित है। जब मनुष्य अपने आपको कामादि संकल्पों से मुक्त एवं शोक से रहित कर लेता है तब वह 'उसका' दर्शन करता है। मानसिक प्रवृत्तियों की शुद्धि के प्रसाद से वह 'आत्म-सत्ता' की महिमा का दर्शन करता है।

अणोरणीयान् महतोमहीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥¹⁵

जन्म और मृत्यु के संबंध में आत्मा की वास्तविकता का विवेचन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही देही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होता है॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥¹⁶

¹³ भगवद्गीता २/२४

¹⁴ कठोपनिषद् १/२/१८

¹⁵ कठोपनिषद् १/२/२०

¹⁶ भगवद्गीता २/२२



आत्मा सदा निर्विकार हैं क्योंकि आत्मा को शस्त्र नहीं काटते अभिप्राय यह कि अवयवरहित होनेके कारण तलवार आदि शस्त्र इसके अङ्गोंके टुकड़े नहीं कर सकते। वैसे ही अग्नि इसको जला नहीं सकता अर्थात् अग्नि भी इसको भस्मीभूत नहीं कर सकता। जल इसको भिगो नहीं सकता क्योंकि सावयव वस्तुको ही भिगोकर उसके अङ्गोंको पृथक्पृथक् कर देनेमें जलकी सामर्थ्य है। निरवयव आत्मामें ऐसा होना सम्भव नहीं। उसी तरह वायु आर्द्र द्रव्यका गीलापन शोषण करके उसको नष्ट करता है अतः वह वायु भी इस स्वस्वरूप आत्माका शोषण नहीं कर सकता।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥¹⁷

अतः यह कहा जा सकता है कि आत्मा का ज्ञान ही भारतीय दर्शन का परम प्रयोजन है, और यही ज्ञान मनुष्य को अविद्या, भय, शोक और बंधन से मुक्त कर परम पुरुषार्थ एवं मोक्ष की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर करता है।

निष्कर्ष : -

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से निष्कर्षित होता है कि भगवद्गीता में 'कर्तव्य' (कर्म-धर्म) और 'आत्मबोध' (आत्मज्ञान) दो पृथक् या विरोधी अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि भारतीय दार्शनिक परम्परा में जीवन-दर्शन के दो परस्पर पूरक एवं समन्वित आयाम हैं। गीता का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि मनुष्य लौकिक जीवन में अपने सामाजिक, नैतिक एवं व्यक्तिगत दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी आध्यात्मिक मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार गीता कर्म और ज्ञान के द्वैत को समाप्त कर एक समन्वयवादी दर्शन प्रस्तुत करती है। शोध से यह प्रतिपादित होता है कि गीता में कर्तव्य की अवधारणा 'स्वधर्म', 'निष्काम कर्म' तथा 'लोकसंग्रह' के सिद्धान्तों पर आधारित है। स्वधर्म व्यक्ति की प्रकृति एवं

¹⁷ भगवद्गीता २/२३



गुण-कर्म के अनुरूप कर्तव्य निर्धारण करता है, निष्काम कर्म कर्मफल की आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करने की प्रेरणा देता है तथा लोकसंग्रह सामाजिक कल्याण एवं सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को पुष्ट करता है। इस प्रकार गीता का कर्तव्य-दर्शन केवल व्यक्तिगत नैतिकता तक सीमित न होकर सामाजिक और वैश्विक नैतिक व्यवस्था का आधार प्रदान करता है।

आत्मबोध के संदर्भ में यह अध्ययन दर्शाता है कि भगवद्गीता उपनिषदों के आत्मतत्त्व को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करती है। आत्मा को नित्य, अविनाशी, अजन्मा और शाश्वत तत्व के रूप में निरूपित किया गया है, जो शरीर, मन और बुद्धि से भिन्न एवं परे है। आत्मबोध के माध्यम से जीव अविद्या, अहंकार और कर्मबन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूप की अनुभूति करता है। इस प्रकार आत्मज्ञान को मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन माना गया है, जबकि कर्मयोग को चित्तशुद्धि का साधन स्वीकार किया गया है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य के भाष्यों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यद्यपि तीनों आचार्यों की दार्शनिक दृष्टि भिन्न-भिन्न (अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत) है, तथापि वे सभी गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय को स्वीकार करते हैं। इससे गीता की दार्शनिक सार्वभौमिकता और समन्वयात्मक प्रकृति सिद्ध होती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह शोध प्रमाणित करता है कि गीता का कर्तव्य-दर्शन और आत्मबोध-दर्शन केवल आध्यात्मिक ग्रन्थ तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नैतिक दर्शन, शिक्षा, प्रशासन, प्रबंधन, नेतृत्व, मनोविज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों में भी अत्यन्त प्रासंगिक है। निष्काम कर्म की अवधारणा आधुनिक कार्य-संस्कृति, तनाव प्रबंधन और नैतिक नेतृत्व के लिए एक प्रभावी दार्शनिक आधार प्रदान करती है, जबकि आत्मबोध मानसिक शान्ति, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व विकास का मूल तत्व बनता है।

अतः यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भगवद्गीता में कर्तव्य और आत्मबोध का समन्वित दर्शन मानव जीवन के लौकिक और पारलौकिक दोनों आयामों को संतुलित करने वाला एक सार्वकालिक और



सार्वभौमिक जीवन-दर्शन है। गीता मनुष्य को कर्मशील, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जागरूक नागरिक बनाने की प्रेरणा देती है तथा मानव अस्तित्व के समग्र उत्थान के लिए एक समन्वित दार्शनिक आधार प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची : -

1. गोयन्दका, श्रीहरिकृष्णदास. भगवद्गीता शांकरभाष्य हिन्दी अनुवादसहित. गीता प्रेस, गोरखपुर.
2. गोयन्दका, श्रीहरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद् शांकरभाष्य सहित. गीता प्रेस, गोरखपुर.
3. मिश्र, आद्या प्रसाद. कठोपनिषद. अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद. १९८३.
4. पाण्डेय, बैजनाथ. कठोपनिषद शांकरभाष्य सहित. मोतीलाल बनारसी दास, बनारस. २०१९.
5. दास, त्रिभुवनस्वामी. ईशावास्योपनिषद. चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली. २०१४.



श्रीमद्भगवद् गीता : जीवन और कार्य के लिए व्यवहारिक मार्गदर्शिका

डॉ. मंजुला जे. वीरडिया

एसोसिएट प्रोफेसर

श्रीमती ए पी पटेल आर्ट्स एन्ड स्व. श्री

एन.पी.पटेल कॉमर्स कॉलेज, नरोडा, अहमदाबाद, गुजरात

सारांश

श्रीमद् भगवद् गीता भारतीय ज्ञान-परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ है, जो मानव जीवन के नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक पक्षों का समन्वित मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। यह ग्रंथ महाभारत के युद्धक्षेत्र में उत्पन्न अर्जुन-विषाद के समाधान के माध्यम से मनुष्य के आंतरिक संघर्षों का समाधान करता है। आधुनिक युग में व्यक्ति कार्य-दबाव, मानसिक तनाव, नैतिक द्वंद्व तथा उद्देश्यहीनता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे समय में गीता का कर्मयोग, निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि तथा आत्मज्ञान आधारित दर्शन जीवन और कार्य दोनों के लिए एक व्यवहारिक मार्गदर्शिका सिद्ध होता है। इस शोधपत्र का उद्देश्य गीता के प्रमुख सिद्धांतों का अकादमिक विश्लेषण करते हुए उसकी समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है।

मुख्य शब्द (Keywords): श्रीमद् भगवद् गीता, कर्मयोग, निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि, जीवन-दर्शन, कार्य-संस्कृत, मार्गदर्शिका ।

भूमिका (Introduction)

भारतीय दार्शनिक परंपरा में श्रीमद् भगवद् गीता का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। इसे न केवल धार्मिक ग्रंथ माना गया है, बल्कि जीवन-दर्शन का सार्वकालिक ग्रंथ भी स्वीकार किया गया है। गीता का उपदेश उस समय दिया गया जब अर्जुन कर्तव्य, करुणा, मोह तथा भय के द्वंद्व में मानसिक रूप से विचलित हो गया था। यह स्थिति आधुनिक मानव की मनोदशा से अत्यंत साम्य रखती है।

आधुनिक समाज में भौतिक प्रगति के साथ-साथ मानसिक अशांति, नैतिक मूल्यों का हास तथा कार्यक्षेत्र में बढ़ता तनाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऐसे परिवेश में गीता का दर्शन मनुष्य को संतुलित जीवन जीने तथा कर्तव्यनिष्ठ कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करता है। विद्वानों का यह मत है कि विश्व की एसी कोई समस्या नहीं है कि जीनका उपाय श्रीमद्भगवद् गीता में न हों। अतः गीता जीवन और कार्यो के लिए मार्गदर्शिका हैं।

2. साहित्य समीक्षा (Review of Literature)

गीता पर प्राचीन एवं आधुनिक काल में अनेक विद्वानों द्वारा टीकाएँ एवं व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं। शंकराचार्य ने गीता को अद्वैत वेदान्त के आलोक में व्याख्यायित किया है, जबकि रामानुजाचार्य ने भक्ति को उसका केंद्रीय तत्व माना है। माध्वाचार्य कहते हैं कि नि।काम कर्म की महत्त गीता में निरूपित है। वल्लभाचार्य गीता को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि - केवल निवृत्तिपरायण पुष्टिमार्गीय भक्ति ही गीता का तात्पर्य है और इस हेतु से भगवानने सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं वर्ज।¹(18-61) अंत में अर्जुन को यह उपदेश किया है। श्री लोकमान्यतिलक अनुसार गीता कर्मयोग की प्रेरणा प्रदान करनेवाला ग्रन्थ है। तिलक के मतानुसार गीता मात्र मोक्षशास्त्र ही नहीं, परंतु कर्तव्याकर्तव्य का विचार करनेवाला नीतिशास्त्र भी है। अरवींद घोषने गीता को जीवनशास्त्र माना है, और व्यवहार में आनेवाली एक कसौटी का सार्वत्रिक एक ही उकेल माना हो। श्री अरविंद के अनुसार गीता कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय प्रस्तुत करती है। आधुनिक युग में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने गीता को मानवतावादी दर्शन के रूप में व्याख्यायित किया है। महात्मा गांधीजीने अनासक्तियोग के उपदेश को महत्त्व का माना है।

इन सभी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि गीता एक बहुआयामी ग्रंथ है, जिसकी प्रासंगिकता केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक एवं व्यावहारिक भी है।¹

3. शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study)

प्रस्तुत शोधपत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. श्रीमद् भगवद् गीता के मूल दार्शनिक सिद्धांतों का अध्ययन करना।
2. कर्मयोग एवं निष्काम कर्म की अवधारणा का विश्लेषण करना।
3. आधुनिक जीवन एवं कार्यक्षेत्र में गीता की प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।
4. गीता को एक व्यवहारिक जीवन-मार्गदर्शिका के रूप में प्रतिपादित करना।

4. अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

यह शोध गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति का है। अध्ययन में प्राथमिक स्रोत के रूप में श्रीमद् भगवद् गीता के मूल श्लोकों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत प्रमाणिक टीकाग्रंथ, शोध-पुस्तकें, पत्रिकाएँ एवं विद्वानों के लेखों का संदर्भ लिया गया है। विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक पद्धति के माध्यम से निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

1. श्रीमद् भगवद् गीता 18 -61, गीता प्रेस, गोरखपुर।



5. गीता का जीवन-दर्शन

गीता का जीवन-दर्शन आत्मा की अमरता के सिद्धांत पर आधारित है—

“न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे” (गीता 2.20)²

यह सिद्धांत मनुष्य को शोक, भय एवं निराशा से मुक्त करता है। जब व्यक्ति यह समझ लेता है कि आत्मा अविनाशी है, तब जीवन के संकट उसे विचलित नहीं कर पाते। यही दृष्टि व्यवहारिक जीवन में स्थिरता प्रदान करती है।

6. कर्मयोग : कार्य के लिए व्यवहारिक मार्ग

गीता का केंद्रीय सिद्धांत कर्मयोग है—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥” (2.47)³

इस पद्यों में कर्मयोग की चतुःसूत्री नीहित है। तेरा कर्म करने का हि अधिकार है, फल में कदापि नाहि, कर्मों में फलका अधिकारी मत बन, और कर्म न करने में भी तेरी प्रीति न होनी चाहिए। यह चार सूत्र को मनुष्य आपने जीवन में स्थापित करता हैं तो संसार के कई समस्याओं का निवारण हो जाता है। हम सिर्फ अपना कर्म नैकी से करते रहे तो भी जीवन उत्तम बना सकते हैं। कर्मयोग व्यक्ति को यह सिखाता है कि वह फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्य का पालन करे। आधुनिक कार्यक्षेत्र में यह सिद्धांत कार्य-दबाव, असफलता-भय तथा मानसिक तनाव को कम करता है। न हि कश्चितक्षणमपि जातु ति।ठत्यकर्मकृत्। श्रीमद् भगवद्गीता मनुष्य को व्यवहार में परमार्थसिद्धि की कला सिखाता है।उनका आशय कर्तव्य कर्म कराना है, छोड़ाना नहि। अतः भगवान कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों साधनों में कर्मयोग करने की बात करता हैं।

7. निष्काम कर्म और मानसिक शांति

गीता के अनुसार दुःख का मूल कारण कर्म नहीं, बल्कि फलासक्ति है। निष्काम कर्म मनुष्य को अहंकार से मुक्त करता है और आंतरिक शांति प्रदान करता है। *तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर। (3-9)⁴* यदी हम कोई कर्म फल की अपेक्षा से करते हैं, पर हम चाहते हैं एसा कुछ भी नही होता तब हम बहुत दुःखी, खीन्न मना बन जाते हैं। इस स्थिति में हमें गीता के निष्काम कर्मयोग का स्मरण करना होगा जो हमें *इदम् कृष्णाय इदम् न मम।* अतः हमारे मन में कोई राग, द्वेष का भोव होता है तो वह नष्ट हो जाता है, और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।मन की यह अवधारणा आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

2. श्रीमद् भगवद् गीता 2.20, गीता प्रेस, गोरखपुर।

3. श्रीमद् भगवद् गीता 2.47, गीता प्रेस, गोरखपुर।

4. श्रीमद् भगवद् गीता 2.48, गीता प्रेस, गोरखपुर।



8. समत्वबुद्धि: जीवन संतुलन का आधार

“समत्वं योग उच्यते” (2.48)⁴

भगवान अर्जुन को कहते हैं कि- हे अर्जुन, आसक्ति का त्याग करके, सफलता और असफलता दोनों में समभाव बनाए रखो और भगवान पर भरोसा रखते हुए योग में स्थिर रहो। ऐसा समभाव ही योग कहलाता है। समत्वबुद्धि व्यक्ति को सुख-दुःख, लाभ-हानि एवं सफलता-असफलता में समान दृष्टि बनाए रखने की प्रेरणा देती है। यही मानसिक संतुलन सफल जीवन का आधार है। भगवान को प्रसन्न करने की इच्छा का त्याग करके, केवल भगवान के लिए, सफलता और असफलता दोनों में समभाव बनाए रखते हुए, अर्थात् मानसिक शुद्धता के फल स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति हो या न हो या उसमें बाधा उत्पन्न हो, सुख-दुख के विक्षोभों से मुक्त होकर अपने कर्म करो। क्योंकि फल की प्राप्ति और असफलता दोनों में समभाव बनाए रखना ही योग कहलाता है।

योगी बनने का अर्थ है संगति का त्याग करना। अर्थात्, फल प्राप्ति की खोज को छोड़ देना।

पतंजलि योग सूत्र कहता है कि योगिश्चित्तवृत्तिनिरोधः - योग का अर्थ है मन की प्रवृत्तियों का निवारण। अर्थात्, मन को प्रवृत्तियों के रूप में वस्तुओं में लीन होने से रोकना और उसे आत्मा के रूप में स्थिर करना समभाव कहलाता है।

योगः कर्मसु कौशलम्। (2-50)⁵ कर्म योग में, समभाव (दृष्टि) वाला व्यक्ति पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। इसलिए, समभाव योग के लिए तैयार रहें, क्योंकि कर्मों में निपुणता ही वह योग है। (यह बंधन से मुक्ति का साधन है)।

9. गीता और कार्य-संस्कृति

गीता कार्य को केवल आजीविका नहीं, बल्कि साधना मानती है। कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन, ईमानदारी तथा सेवा-भाव—ये सभी आदर्श कार्य-संस्कृति के मूल तत्व हैं। आधुनिक प्रबंधन शास्त्र में गीता को *Spiritual Management Manual*⁶ के रूप में स्वीकार किया गया है। गीता में श्री कृष्ण अर्जुन को वैराग्य की ओर नहीं ले जाना चाहते। वे युद्ध के अनेक कारण बताते हैं, अतः **तस्मात् युद्धस्व भारत, तस्मात् उतिष्ठ कौंतेय, तस्मात् असत्यः सततं कार्यं कर्म समाचर-** बार-बार यह कहते हुए वे अर्जुन को कर्म पर दृढ़ और निर्णायक उपदेश देते हैं। अंत में, वे अर्जुन से पूछते हैं कि क्या उसने इस गीता के उपदेश को एकाग्र मन से सुना है? क्या अज्ञान से उत्पन्न तुम्हारा भ्रम नष्ट हो गया है? फिर अठारहवें अध्याय में, अर्जुन कहते हैं कि

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्पसादान्मयाच्युत।

स्थतोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तन।। (गीता 18-73)⁷

5. श्रीमद् भगवद् गीता 2.50, गीता प्रेस, गोरखपुर।

6. श्रीमद् भगवद् गीता 18.73, गीता प्रेस, गोरखपुर।



यहां अर्जुन न केवल युद्ध करने का संकल्प लेते हैं, बल्कि वास्तव में युद्ध भी करते हैं। गीता के अनुसार, स्वधर्म के अनुसार जो भी कर्तव्य प्राप्त हो (चाहे वह युद्ध जैसा घातक कार्य ही क्यों न हो), जीवन का सार उसे मृत्यु तक निरंतर करते रहना है। “क्या मुझे युद्ध करना चाहिए या नहीं?” - गीता धर्म का रहस्य यह है कि अपने कर्तव्य को लेकर असमंजस में पड़े अर्जुन को अपने कर्तव्य का निष्पाप मार्ग मिल जाता है और वे क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए शास्त्रानुसार कार्य करने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

अतः अपने कल्याण की प्रबल इच्छा रखने वाला व्यक्ति हर परिस्थिति में परमत्व को प्राप्त कर सकता है; युद्ध जैसी विकट परिस्थिति में भी व्यक्ति अपना कल्याण प्राप्त कर सकता है - इस प्रकार, व्यवहारमात्र से व्यक्ति कैसे परमार्थ प्राप्त कर सकता है? इसकी कला गीता में सिखाई गई है।

10. आधुनिक जीवन में गीता की प्रासंगिकता

आज का मानव तनाव, अवसाद और नैतिक भ्रम से ग्रस्त है। गीता आत्मसंयम, विवेक तथा कर्तव्यबोध द्वारा इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। विद्यार्थी, कर्मचारी, प्रशासक और गृहस्थ-सभी के लिए इसके सिद्धांत समान रूप से उपयोगी हैं।

डॉ. राधाकृष्णन ने कहा है कि 'यदि किसी शास्त्र का माप इस बात से होता है कि वह मानव मन पर कितना प्रभाव डालता है, तो गीता भारतीय विचार परंपरा की सबसे प्रभावशाली रचना है।' गीता जैसा सरल शास्त्र, जो आत्मज्ञान के रहस्यमय और पवित्र तत्वों को संक्षिप्त रूप से स्पष्ट करता है और उसी के आधार पर प्रयास द्वारा मनुष्य को आध्यात्मिक पूर्णता प्रदान करता है, न केवल संस्कृत साहित्य में बल्कि विश्व साहित्य में भी नहीं मिलता। इस प्रकार, जीवन और संसार के रहस्यों को समझने की अपार अंतर्दृष्टि और उससे प्राप्त सत्यों के अनुसार जीवन को संवारने की इच्छा ही भारतीय संस्कृति का सार है। हम देखते हैं कि मानव संस्कृति के इतिहास में कई बार अभ्यास और ईश्वर को न केवल अलग-अलग बल्कि एक-दूसरे के विरोधी मानने की प्रवृत्ति उभरी है। परन्तु गीता में अभ्यास और सिद्धांत का सामंजस्य है। इस अर्थ में, गीता केवल एक सिद्धांत नहीं बल्कि एक व्यावहारिक शास्त्र है। यह एक सार्वभौमिक और गैर-सांप्रदायिक धार्मिक शास्त्र है। आइए हम इसे केवल एक धार्मिक शास्त्र के रूप में ही देखें। अतः उनके व्यापक विचारों का अपमान होता है। वे न केवल धर्म में आस्था रखते हैं, बल्कि बुद्धि के मानकों को भी बनाए रखने का प्रयास करते हैं। गीता के विभिन्न अध्याय एक व्यापक और संपूर्ण दर्शन का सार हैं।

मनुष्य अपने व्यावहारिक जीवन में आध्यात्मिक, दार्शनिक और दिव्य तीनों प्रकार के दुखों से ग्रस्त दिखाई देता है। उसे इन दुखों से मुक्ति पानी है। भगवद् गीता का उद्देश्य मानव जाति को संसार के अज्ञान से मुक्त करना है। प्रत्येक मनुष्य अनेक प्रकार से कष्टों में है। केवल अर्जुन ही नहीं, बल्कि



हम सभी इस संसार के कारण चिंतित हैं। दुख भोग रहे इस जनसमूह में से कुछ ही मनुष्य वास्तव में अपने अस्तित्व और अपनी पहचान के बारे में सोचते हैं? जब तक मनुष्य अपने अस्तित्व और उससे संबंधित दुखों के बारे में प्रश्न करने की चेतना प्राप्त नहीं कर लेता और यह नहीं समझ लेता कि वह दुख नहीं चाहता, बल्कि सभी दुखों का समाधान चाहता है, तब तक उसे पूर्ण मनुष्य नहीं कहा जा सकता। जब मनुष्य के मन में इस प्रकार की जिज्ञासा जागृत होती है, तभी उसमें मानवता का जन्म होता है।

11. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि श्रीमद् भगवद् गीता केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन और कार्य दोनों के लिए एक सम्पूर्ण व्यवहारिक मार्गदर्शिका है। इसका कर्मयोग, समत्वदर्शन और निष्काम कर्म सिद्धांत आधुनिक युग की समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है। गीता का संदेश काल, देश और समाज की सीमाओं से परे सार्वकालिक सत्य के रूप में मानवता का मार्गदर्शन करता रहेगा

संदर्भ सूचि

1. डॉ. राधाकृष्णन, *भारतीय दर्शन*, राजपाल एंड संस, दिल्ली।
2. श्रीमद् भगवद् गीता 2.20, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. वही, 2.47।
4. वही, 2.48।
5. श्री अरविंद, *Essays on the Gita*, Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry।
6. स्वामी विवेकानंद साहित्य, रामकृष्ण मठ, बेलूर।
7. 1. 'भारतीय दर्शन' खंड-1, जी. एलन एंड अनविन लिमिटेड, लंदन 1951, पी-519.

संदर्भ ग्रन्थ सूचि

1. श्रीमद्भगवद्गीता।शंकराचार्यभाष्यसहित।गीताप्रेसगोरखपुर।
2. मद्भगवद्गीता(सरस्वतीकृतमधुसूदनगूढार्थदीपिकाव्याख्यासहित)(व्याख्याकार) अग्रवालमदनमोहन।चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठान,वाराणसी।(२०१३)
3. श्रीमद्भगवद्गीता, व्याख्याकारराधाकृष्णन्एस., राजपालएण्डसन्स, दिल्ली।(१९६९)
4. गीतारहस्ययानेकर्मयोगशास्त्र, बालगंगाधरतिलक.
5. श्रीमद्भगवद्गीतासंपादकशास्त्रीसी.एल, द्वेपी.सी.,अपिलिंडप्रकाशन, अमदावाद. द्वितीयसंस्करण. (१९६८)



6. श्रीमद्भगवद्गीता, संपा. जाला, सुहास. सरस्वती प्रकाशन, अमदावाढ. प्रथम आवृत्ति. (२००२)
7. Shree Patanjalyogdarshan with Rhashyadipikatika- Pujya Naththu mahraj, (Aanand Aashram Bilkha -Saurashtra) Publisher Shri Hrajivan Shah, 1999.



निष्काम कर्म सिद्धान्त : भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS) में दार्शनिक आधार और आधुनिक जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोग

सुमित शुक्ला

शोध छात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

भारतीय ज्ञान परम्परा में निष्काम कर्म सिद्धान्त मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक आयामों को संतुलित करने वाला एक केन्द्रीय दार्शनिक सिद्धान्त है। इसका मूल प्रतिपादन श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है, जहाँ कर्म करते हुए फल की आसक्ति त्यागने की शिक्षा दी गई है – “कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”¹। यह सिद्धान्त केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि जीवन-व्यवहार की एक व्यावहारिक पद्धति भी है। इस शोध का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परम्परा में निष्काम कर्म के दार्शनिक आधारों का विश्लेषण करना तथा उसके आधुनिक जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोगों को स्पष्ट करना है। अध्ययन में गीता, उपनिषदों एवं धर्मशास्त्रीय दृष्टियों के आलोक में कर्तव्य, वैराग्य, आत्मसंयम तथा लोकसंग्रह की अवधारणाओं का विवेचन किया गया है, साथ ही आधुनिक संदर्भों – जैसे नेतृत्व, कार्य-संस्कृति, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, तथा सामाजिक उत्तरदायित्व – में निष्काम कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता का परीक्षण किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि निष्काम कर्म तनाव-मुक्त कर्मपद्धति, नैतिक नेतृत्व, और आंतरिक संतुलन के निर्माण में अत्यंत सहायक है। यह व्यक्ति को परिणाम-केंद्रित मानसिक दबाव से मुक्त कर कर्म-केंद्रित उत्कृष्टता की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार, निष्काम कर्म सिद्धान्त प्राचीन भारतीय दार्शनिक चिन्तन और आधुनिक जीवन प्रबंधन के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में उभरता है।

¹ गीता २.४७

संकेत शब्द- निष्काम कर्म, भारतीय ज्ञान परम्परा (IKS), भगवद्गीता, कर्मयोग, लोकसंग्रह, नैतिक नेतृत्व, जीवन प्रबंधन, मानसिक संतुलन

भूमिका

भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं मानती, बल्कि उसे नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों से युक्त एक समग्र साधना के रूप में देखता है। निष्काम कर्म सिद्धान्त, जो कर्म करते हुए उसके फल में आसक्ति त्यागने की शिक्षा देता है। यह सिद्धान्त जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के मध्य में रहते हुए आन्तरिक वैराग्य और बाह्य सक्रियता का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है।

निष्काम कर्म का सर्वाधिक सुस्पष्ट और दार्शनिक निरूपण श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त होता है। महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन के मोह और कर्तव्य-संकट के समाधान के रूप में प्रस्तुत यह उपदेश वस्तुतः सम्पूर्ण मानवता के लिए कर्म, धर्म और आत्मबोध का शाश्वत मार्गदर्शन है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥”²

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फल में नहीं। फल की इच्छा को कर्म का हेतु न बनाते हुए अकर्मण्यता में भी आसक्ति न हो — यही निष्काम कर्म का मूल सूत्र है। यहाँ कर्म-त्याग नहीं, बल्कि फलासक्ति-त्याग की शिक्षा दी गई है। इसी भाव को आगे और स्पष्ट करते हुए गीता में कहा गया है—

“योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥”³

² गीता 2.47

³ गीता 2.48



अर्थात् समत्व-बुद्धि में स्थित होकर, सफलता-असफलता में सम रहते हुए कर्म करना ही योग है। यहाँ निष्काम कर्म को योग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है – अर्थात् वह साधना जो व्यक्ति को मानसिक संतुलन, आत्मनियंत्रण और आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म का महत्व केवल व्यक्तिगत उन्नति तक सीमित नहीं है, वह सामाजिक संतुलन और लोककल्याण से भी सम्बद्ध है। गीता में लोकसंग्रह (सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण) की अवधारणा इसी सन्दर्भ में आती है-

“कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥”⁴

अर्थात् जनक आदि राजाओं ने कर्म के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की और लोकसंग्रह की दृष्टि से कर्म किया। इससे स्पष्ट है कि निष्काम कर्म केवल आत्मकल्याण का मार्ग नहीं, बल्कि समाज के हित में कर्तव्यपालन की प्रेरणा भी देता है।

गीता में यह भी कहा गया है-

“तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥”⁵

अर्थात् आसक्ति त्यागकर निरन्तर कर्तव्य कर्म करने वाला पुरुष परम पद को प्राप्त करता है। यहाँ कर्म और मोक्ष परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि उचित दृष्टिकोण से किये गए कर्म ही मुक्ति के साधन बनते हैं। यही निष्काम कर्म की दार्शनिक गहराई है।

निष्काम कर्म की यह भावना उपनिषदों में भी निहित है। ईशावास्योपनिषद् का प्रसिद्ध मंत्र कहता है-

“कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः”⁶

⁴ गीता 3.20

⁵ गीता 3.19

⁶ ईशावास्योपनिषद्, मंत्र 2



अर्थात् कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। यहाँ भी कर्म का परित्याग नहीं, बल्कि धर्मपूर्वक कर्म करने का उपदेश है, जो बन्धनरहित हो।

आधुनिक युग में, जहाँ जीवन तीव्र प्रतिस्पर्धा, परिणाम-केंद्रित मानसिकता और निरन्तर तनाव से घिरा हुआ है, निष्काम कर्म सिद्धान्त विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठता है। आज का व्यक्ति सफलता को फल-प्राप्ति से मापता है, जबकि गीता कर्म की उत्कृष्टता और आन्तरिक संतुलन को अधिक महत्व देती है। फल की अत्यधिक चिन्ता व्यक्ति में भय, असुरक्षा, तनाव और नैतिक समझौतों को जन्म देती है। इसके विपरीत, निष्काम कर्म व्यक्ति को वर्तमान क्षण में स्थित होकर पूर्ण समर्पण से कार्य करने की प्रेरणा देता है। गीता का यह दृष्टिकोण आधुनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है – जैसे नैतिक नेतृत्व, कर्तव्यनिष्ठ प्रशासन, शिक्षा में मूल्यपरक दृष्टि, कार्यस्थल पर तनाव-प्रबंधन, तथा व्यक्तिगत जीवन में मानसिक संतुलन। जब व्यक्ति कर्म को पूजा के रूप में देखता है और फल को ईश्वरार्पण कर देता है, तब कर्म बन्धन का कारण न होकर आत्मविकास का साधन बन जाता है—

“ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥”⁷

अर्थात् जो पुरुष आसक्ति त्यागकर कर्म को ब्रह्म में अर्पित करता है, वह जल में स्थित कमलपत्र के समान अलिप्त रहता है।

इस प्रकार, निष्काम कर्म सिद्धान्त भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म, वैराग्य और आध्यात्मिकता का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त न केवल मोक्षमार्ग का दार्शनिक प्रतिपादन है, बल्कि व्यावहारिक जीवन के लिए एक संतुलित, नैतिक और तनावमुक्त कर्म-दृष्टि भी प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इसी दार्शनिक आधार का विश्लेषण करते हुए आधुनिक जीवन की विविध परिस्थितियों में निष्काम कर्म के व्यावहारिक अनुप्रयोगों का अध्ययन करना है, ताकि प्राचीन भारतीय चिंतन और समकालीन जीवन-प्रबंधन के मध्य एक सार्थक संवाद स्थापित किया जा सके।

कर्मयोग के अंतर्गत फल-निरपेक्ष प्रवृत्ति का तात्विक विवेचन

⁷ गीता 5.10



भारतीय ज्ञान परम्परा में निष्काम कर्म सिद्धान्त केवल नैतिक आचरण का नियम नहीं, बल्कि गहन आध्यात्मिक एवं तत्त्वमीमांसात्मक आधार वाला दार्शनिक सिद्धान्त है। यह कर्म, कर्ता, फल, आसक्ति, आत्मा और परम सत्य के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्म दर्शन, सांख्य, योग और वेदान्त के समन्वय से विकसित एक समग्र जीवन-दृष्टि है।

1. कर्म का तत्त्वमीमांसात्मक आधार

भारतीय दर्शन में कर्म को सार्वभौमिक नियम माना गया है। प्रत्येक क्रिया का परिणाम अवश्यंभावी है, और यही कारण-कार्य-सम्बन्ध संसार के चक्र को संचालित करता है। गीता के अनुसार कर्म से बचना सम्भव नहीं—

“न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।”⁸

अर्थात् कोई भी व्यक्ति क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। इस प्रकार कर्म जीवन की अनिवार्य वास्तविकता है। परन्तु कर्म का बन्धनकारक होना या न होना, यह कर्ता की मानसिक स्थिति पर निर्भर करता है।

2. आसक्ति : बन्धन का मूल कारण

गीता के अनुसार कर्म स्वयं बन्धन का कारण नहीं है, बल्कि कर्म के फल में आसक्ति ही बन्धन उत्पन्न करती है—

“यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।”⁹

जब कर्म स्वार्थ, अहंकार और फल की तीव्र इच्छा से किया जाता है, तब वह कर्म बन्धनकारक बनता है। यहाँ ‘आसक्ति’ का अर्थ केवल इच्छा नहीं, बल्कि उस फल के साथ आत्म-परिचय का जुड़ जाना है — “मैं तभी सफल हूँ जब यह फल प्राप्त हो।” यही मानसिक आग्रह दुःख, भय और निराशा का कारण बनता है।

⁸ गीता 3.5

⁹ गीता 3.9



3. निष्कामता : आन्तरिक वैराग्य की अवस्था

निष्काम कर्म का अर्थ कर्म-त्याग नहीं, बल्कि फलासक्ति-त्याग है। यह वैराग्य पलायनवादी नहीं, बल्कि आन्तरिक स्वतंत्रता की अवस्था है। गीता कहती है—

“त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।”¹⁰

अर्थात् कर्मफल की आसक्ति त्यागकर, जो नित्य संतुष्ट है, वही वास्तविक योगी है। यहाँ संतोष बाह्य उपलब्धियों से नहीं, बल्कि आत्मस्वरूप की पहचान से उत्पन्न होता है।

4. कर्तृत्वाभिमान का अतिक्रमण

निष्काम कर्म का एक महत्वपूर्ण दार्शनिक आयाम है – अहंकार का क्षय। गीता में बताया गया है कि वास्तव में प्रकृति के गुण ही सभी कर्मों को करते हैं—

“प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥”¹¹

अज्ञानवश मनुष्य स्वयं को कर्ता मानता है, जबकि आत्मा साक्षी है। जब कर्ता यह समझ लेता है कि वह केवल निमित्त है, तब कर्म अहंकार से मुक्त हो जाता है। यही निष्कामता की दार्शनिक नींव है।

5. समत्व-बुद्धि : निष्काम कर्म की मनोवैज्ञानिक आधारशिला

निष्काम कर्म केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि मानसिक अनुशासन भी है। गीता में इसे समत्व योग कहा गया है—

“सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।”¹²

सफलता और असफलता में सम रहना ही निष्काम कर्म का व्यावहारिक रूप है। यह समत्व व्यक्ति को भावनात्मक उतार-चढ़ाव से मुक्त करता है और मानसिक स्थिरता प्रदान करता है।

¹⁰ गीता 4.20

¹¹ गीता 3.27

¹² गीता 2.48



6. निष्काम कर्म और आत्मज्ञान

गीता के अनुसार निष्काम कर्म अंततः आत्मज्ञान की ओर ले जाता है। जब कर्म ईश्वरार्पण बुद्धि से किया जाता है, तब वह चित्त को शुद्ध करता है—

“योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽत्मशुद्धये।”¹³

यहाँ कर्म साधन है, और आत्मशुद्धि उसका उद्देश्य। शुद्ध चित्त में आत्मज्ञान उदित होता है, जिससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार निष्काम कर्म, ज्ञानमार्ग का विरोधी नहीं, बल्कि उसका सहायक है।

7. लोकसंग्रह : निष्काम कर्म का सामाजिक आयाम

निष्काम कर्म का दार्शनिक स्वरूप केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं है; यह सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जुड़ा है—

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।”¹⁴

श्रेष्ठ पुरुष लोकहित की भावना से कर्म करता है। निष्काम कर्म समाज में नैतिक अनुकरण का आधार बनता है, जहाँ व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठकर सामूहिक कल्याण के लिए कार्य करता है।

8. निष्काम कर्म : कर्म और संन्यास का समन्वय

गीता में कर्मयोग और संन्यास के मध्य विरोध को समाप्त किया गया है। निष्काम कर्म के माध्यम से कर्म करते हुए भी आन्तरिक संन्यास सम्भव है—

“अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च...”¹⁵

अर्थात् जो कर्मफल पर आश्रित हुए बिना कर्तव्य कर्म करता है, वही वास्तविक संन्यासी और योगी है।

¹³ गीता 5.11

¹⁴ गीता 3.21

¹⁵ गीता 6.1



दार्शनिक दृष्टि से निष्काम कर्म सिद्धान्त जीवन के तीन स्तरों – तत्त्व (आत्मा), मन (समत्व), और समाज (लोकसंग्रह) – का समन्वय करता है। यह कर्म को बन्धन नहीं, बल्कि मुक्ति का साधन बनाता है। यहाँ कर्म और ज्ञान, संसार और आध्यात्म, व्यक्तित्व और समाज – सब एक समन्वित दृष्टि में आ जाते हैं। यही कारण है कि निष्काम कर्म भारतीय ज्ञान परम्परा का एक अद्वितीय और सार्वकालिक दार्शनिक योगदान माना जाता है।

अनासक्ति योग: समकालीन प्रासंगिकता एवं व्यवहार

निष्काम कर्म सिद्धान्त को यदि केवल आध्यात्मिक उपदेश मान लिया जाए तो उसकी व्यापक उपयोगिता सीमित हो जाती है। वस्तुतः यह सिद्धान्त जीवन-प्रबंधन, नेतृत्व, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे आधुनिक क्षेत्रों में अत्यन्त व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। गीता का यह संदेश आज की परिणाम-केन्द्रित, प्रतिस्पर्धी और तनावपूर्ण जीवनशैली में संतुलन स्थापित करने की एक प्रभावी पद्धति बन सकता है।

1. कार्यस्थल निष्काम कर्म

आधुनिक पेशेवर जीवन अत्यधिक लक्ष्य, प्रदर्शन मूल्यांकन और परिणामों पर आधारित हो गया है। इससे व्यक्ति निरन्तर मानसिक दबाव में रहता है। निष्काम कर्म सिद्धान्त यह सिखाता है कि व्यक्ति अपने कार्य को पूर्ण समर्पण और उत्कृष्टता से करे, परन्तु परिणाम को लेकर मानसिक आसक्ति न रखे।

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”¹⁶

यह दृष्टिकोण कार्य को बोझ नहीं, बल्कि साधना में परिवर्तित कर देता है। जब व्यक्ति परिणाम की चिन्ता से मुक्त होकर कार्य करता है, तब उसकी एकाग्रता, सृजनात्मकता और कार्यकुशलता बढ़ती है। इससे बर्नआउट, कार्य-चिन्ता और असफलता का भय कम होता है।

2. नेतृत्व और प्रशासन में निष्काम कर्म

नैतिक नेतृत्व आज वैश्विक आवश्यकता है। निष्काम कर्म सिद्धान्त नेतृत्व को स्वार्थपरक लाभ से ऊपर उठाकर लोककल्याण की दिशा में प्रेरित करता है।

¹⁶ गीता 2.47



“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”¹⁷

एक निष्काम नेता निर्णय लेते समय व्यक्तिगत लाभ या लोकप्रियता की बजाय दीर्घकालिक सामाजिक हित को प्राथमिकता देता है। इससे प्रशासन में पारदर्शिता, निष्ठा और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।

3. मानसिक स्वास्थ्य और तनाव-प्रबंधन

आधुनिक जीवन में तनाव, अवसाद और असफलता का भय व्यापक समस्याएँ हैं। इनका एक प्रमुख कारण है – फल के प्रति अत्यधिक आसक्ति और तुलना की मानसिकता। गीता का समत्व योग मानसिक संतुलन का प्रभावी साधन है।

“सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।”¹⁸

जब व्यक्ति सफलता-असफलता को समान भाव से स्वीकार करना सीखता है, तब मानसिक उतार-चढ़ाव कम होते हैं। यह दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक दृढ़ता को बढ़ाता है और व्यक्ति को परिस्थितियों से टूटने की बजाय सीखने की प्रेरणा देता है।

4. शिक्षा क्षेत्र में निष्काम कर्म

आज की शिक्षा प्रणाली अधिकतर अंकों, प्रतियोगिता और कैरियर-परिणामों पर केन्द्रित हो गई है। निष्काम कर्म सिद्धान्त विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों को शिक्षा को ज्ञान-साधना के रूप में देखने की प्रेरणा देता है।

विद्यार्थी यदि अध्ययन को केवल परीक्षा-फल के लिए नहीं, बल्कि ज्ञानार्जन के लिए करें, तो उनकी जिज्ञासा, रचनात्मकता और विषय के प्रति गहरी समझ विकसित होती है। इसी प्रकार शिक्षक भी निष्काम भाव से शिक्षण करते हुए केवल वेतन या प्रतिष्ठा की अपेक्षा से मुक्त रह सकते हैं।

5. व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक सम्बन्ध

¹⁷ गीता 3.20

¹⁸ गीता 2.48



निष्काम कर्म का अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति सम्बन्धों में उदासीन हो जाए, बल्कि वह अपेक्षाओं के बोझ से मुक्त होकर प्रेम और कर्तव्य निभाए। परिवार में अधिकांश तनाव अपेक्षाओं और प्रतिफल की मानसिकता से उत्पन्न होते हैं – “मैंने इतना किया, बदले में क्या मिला?” निष्काम भाव से किया गया कर्तव्य सम्बन्धों में सहजता, क्षमा और स्थिरता लाता है। इससे सम्बन्ध लेन-देन नहीं, बल्कि समर्पण पर आधारित बनते हैं।

6. सामाजिक सेवा और नागरिक दायित्व

समाज सेवा यदि प्रसिद्धि, सम्मान या पुरस्कार की इच्छा से की जाए तो वह स्थायी नहीं रहती। निष्काम कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति को सेवा को कर्तव्य और मानवता के रूप में देखने की प्रेरणा देता है।

“मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य...”¹⁹

अर्थात् सभी कर्मों को उच्चतर उद्देश्य में अर्पित करके कार्य करना। यह दृष्टि सामाजिक कार्य को आध्यात्मिक साधना का रूप देती है।

7. आध्यात्मिकता और आधुनिक जीवन का समन्वय

आधुनिक व्यक्ति प्रायः यह मानता है कि आध्यात्मिकता और सक्रिय जीवन परस्पर विरोधी हैं। निष्काम कर्म इस भ्रान्ति को दूर करता है। गीता के अनुसार कर्म करते हुए भी आन्तरिक शान्ति सम्भव है—

“ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः...”²⁰

यह सिद्धान्त आध्यात्मिकता को जीवन से अलग नहीं करता, बल्कि जीवन के प्रत्येक कर्म को साधना में परिवर्तित कर देता है।

आधुनिक जीवन की जटिलताओं – प्रतिस्पर्धा, तनाव, नैतिक द्वंद्व और सम्बन्धों की नाजुकता – के बीच निष्काम कर्म सिद्धान्त एक संतुलित, व्यावहारिक और मानवीय जीवन-दृष्टि प्रदान करता है। यह व्यक्ति को कर्म से विमुख नहीं करता, बल्कि कर्म को उच्चतर चेतना, आन्तरिक शान्ति और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। इस प्रकार निष्काम कर्म केवल प्राचीन दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि 21वीं सदी के जीवन-प्रबंधन का एक प्रभावी सिद्धान्त सिद्ध होता है।

¹⁹ गीता 3.30

²⁰ गीता 5.10



निष्कर्ष

निष्काम कर्म सिद्धान्त भारतीय ज्ञान परम्परा की उन अद्वितीय अवधारणाओं में से है, जो जीवन के दार्शनिक, नैतिक और व्यावहारिक आयामों का समन्वित समाधान प्रस्तुत करती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर्म से पलायन नहीं, बल्कि कर्मफल की आसक्ति का त्याग ही वास्तविक आध्यात्मिकता का आधार है। इस दृष्टिकोण में कर्म बन्धन का कारण नहीं, बल्कि मुक्ति का साधन बन जाता है।

दार्शनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि निष्काम कर्म का आधार आत्मा की साक्षीभाव स्थिति, कर्तृत्वाभिमान का क्षय, समत्व-बुद्धि और ईश्वरार्पण भावना में निहित है। यह सिद्धान्त सांख्य के तत्त्वज्ञान, योग के मानसिक अनुशासन और वेदान्त की आत्मदृष्टि का समन्वय करता है। इस प्रकार निष्काम कर्म केवल आचरण का नियम नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन है, जो व्यक्ति को बाह्य सक्रियता और आन्तरिक वैराग्य का संतुलन सिखाता है।

आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में इसकी प्रासंगिकता और भी अधिक स्पष्ट होती है। आज का मानव परिणाम-केंद्रित मानसिकता, तीव्र प्रतिस्पर्धा और निरन्तर तनाव से ग्रस्त है। निष्काम कर्म सिद्धान्त व्यक्ति को वर्तमान में स्थित होकर पूर्ण निष्ठा से कर्म करने, परन्तु फल की चिन्ता से मुक्त रहने की प्रेरणा देता है। यह दृष्टिकोण कार्यस्थल पर दक्षता, नेतृत्व में नैतिकता, शिक्षा में मूल्यपरकता, तथा मानसिक स्वास्थ्य में संतुलन स्थापित करने में सहायक सिद्ध होता है। सफलता-असफलता में समत्व की भावना व्यक्ति को भावनात्मक स्थिरता प्रदान करती है और जीवन को एक साधना के रूप में देखने की दृष्टि देती है। सामाजिक स्तर पर भी निष्काम कर्म लोकसंग्रह की भावना को प्रबल करता है। जब व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के हित में कार्य करता है, तब सामाजिक समरसता और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त व्यक्तिगत आत्मविकास और सामूहिक कल्याण के मध्य सेतु का कार्य करता है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निष्काम कर्म सिद्धान्त केवल प्राचीन आध्यात्मिक आदर्श नहीं, बल्कि समकालीन जीवन के लिए एक व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक मार्गदर्शक सिद्धान्त है। यह व्यक्ति को कर्म से विमुख नहीं करता, बल्कि कर्म को ही योग, साधना और आत्मविकास का साधन बना देता है। भारतीय ज्ञान परम्परा का यह शाश्वत संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना अर्जुन के समय था – और यही इसकी सार्वकालिकता और सार्वभौमिकता का प्रमाण है।



संदर्भ सूची

1. भगीरथी, पी. (2010). श्रीमद्भगवद्गीता: दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टि से। वाराणसी: भारतीय संस्कृति प्रकाशन।
2. गीता प्रवचन समिति. (2015). श्रीमद्भगवद्गीता (मूल संस्कृत सहित हिन्दी अनुवाद)। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
3. उपनिषद् परिषद्. (2008). ईशावास्योपनिषद् और अन्य उपनिषद्। मुंबई: ज्ञानपीठ।
4. शर्मा, आर. (2012). "निष्काम कर्म और आधुनिक नेतृत्व: मनोवैज्ञानिक दृष्टि" भारतीय दार्शनिक जर्नल, 45(2), 112-128।
5. त्रिपाठी, के. (2018). भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्मयोग और समाजशास्त्र. नई दिल्ली: प्रकाशन भारती।
6. राव, वी. (2020). "निष्काम कर्म और मानसिक स्वास्थ्य: समकालीन जीवन में प्रयोग" मानसिक स्वास्थ्य और समाज, 12(1), 56-69।
7. श्रीकृष्ण, ग. (2005). श्रीमद्भगवद्गीता: कर्मयोग का तत्त्वमीमांसात्मक अध्ययन। पुणे: वेदाश्रय प्रकाशन।
8. भारतीय दर्शन संस्थान. (2011). भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक जीवन। चेन्नई: ज्ञानमंडल।
9. Mishra, R. (2019). The Philosophy of Nishkama Karma: A Contemporary Perspective. Delhi: Indian Philosophical Review.
10. Chaturvedi, S. (2021). "Nishkama Karma in Modern Management Practices." International Journal of Indian Philosophy, 8(3), 45-60.



श्रीमद्भगवद्गीता का 'आनंदवाद' और भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS): समकालीन हिंदी साहित्य में परिकल्पित एक स्वस्थ एवं संतुलित समाज

डॉ. रुचि पालीवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर

गुरु नानक गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, उदयपुर

सारांश

"अक्षर-अक्षर में अमर, जो चेतना का सार है, यह बोध की वह रश्मि है, जो तिमिर के पार है।

जहाँ कर्म का सौंदर्य ही, आनंद का आधार बने, साहित्य के उस क्षितिज में, गीता ही बस विस्तार है।"

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का इतिहास अत्यंत प्राचीन एवं गौरवशाली है, जिसका मुख्य ध्येय सदैव से ही मानवीय चेतना का सर्वांगीण विकास रहा है। इस परंपरा के केंद्र में श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसे अक्षय ऊर्जा पुंज के रूप में विद्यमान है, जो जीवन के जटिलतम द्वंद्वों के मध्य 'आनंद' की खोज का मार्ग प्रशस्त करती है। वर्तमान २१वीं सदी के संक्रमण काल में, जहाँ एक ओर तकनीकी एवं भौतिक उन्नति अपने शिखर पर है, वहीं दूसरी ओर मानवीय अंतर्मन तनाव, अवसाद और दिशाहीनता के गहरे कुहासे में घिरा हुआ है। ऐसी स्थिति में गीता का 'आनंदवाद' केवल एक दार्शनिक विचार न रहकर एक व्यावहारिक औषधि के रूप में उभरता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य स्वर इसी आनंद की खोज और उसकी स्थापना पर केंद्रित है।

गीता का 'आनंदवाद' किसी क्षणिक इंद्रिय सुख का नाम नहीं है, अपितु यह 'स्थितप्रज्ञता' और 'निष्काम कर्म' के समन्वय से उत्पन्न वह मानसिक अवस्था है, जिसे प्राप्त करने के पश्चात बाहरी संसार की सफलता या विफलता मनुष्य के आंतरिक संतुलन को विचलित नहीं कर पाती। जब भगवान कृष्ण 'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता, २.५०) का सूत्र देते हैं, तो वे वास्तव में कर्म की उस पराकाष्ठा की ओर संकेत करते हैं जहाँ कर्म स्वयं में एक उत्सव बन जाता है। यही वह बिंदु है जहाँ भारतीय ज्ञान परंपरा और समकालीन साहित्य का मिलन होता है। साहित्य सदैव से ही दर्शन का सुगम स्वरूप रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास को देखें तो जयशंकर प्रसाद जैसे मनीषी साहित्यकारों ने 'कामायनी' के माध्यम से इसी

आनंदवाद को एक आधुनिक सामाजिक आधार प्रदान किया। प्रसाद जी का यह मानना था कि जब मनुष्य अपनी व्यक्तिगत संकीर्णताओं से ऊपर उठकर समरसता को प्राप्त करता है, तभी वह वास्तविक आनंद का अधिकारी बनता है। उनका यह काव्यमयी विचार वस्तुतः गीता के ही 'समत्व' भाव का एक साहित्यिक विस्तार है।

आज की नवयुवा पीढ़ी के संदर्भ में इस शोध की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। आधुनिक युवा, जो निरंतर प्रतिस्पर्धा और उपलब्धियों के पीछे भाग रहा है, वह अक्सर प्रक्रिया (Process) को भूलकर केवल परिणाम (Result) के दबाव में जीने का अभ्यस्त हो गया है। गीता का 'अनासक्ति योग' उन्हें सिखाता है कि कार्य की कुशलता उसके परिणाम की चिंता में नहीं, बल्कि वर्तमान क्षण में पूर्ण एकाग्रता के साथ जीने में है। यह शोध-पत्र यह स्थापित करता है कि IKS का यह व्यावहारिक पक्ष युवाओं को एक मानसिक सुरक्षा चक्र (Mental Safety Shield) प्रदान करता है, जो उन्हें किसी भी प्रकार के 'विषाद' से निकालकर 'प्रसाद' (आंतरिक शांति) की ओर ले जाता है। जब युवा वर्ग इस संतुलित दृष्टि को आत्मसात करेगा, तभी एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना मूर्त रूप ले सकेगी।

शोध का व्यापक आयाम यह भी स्पष्ट करता है कि स्वस्थ समाज का आधार केवल शारीरिक आरोग्यता नहीं, बल्कि वैचारिक एवं मानसिक शुद्धि है। समकालीन हिंदी साहित्य ने गीता के इन गूढ़ सूत्रों को कविताओं, निबंधों और आख्यानों के माध्यम से जन-सामान्य के जीवन से जोड़ा है। साहित्यकारों ने यह सिद्ध किया है कि आनंद कोई बाहरी वस्तु नहीं जिसे अर्जित किया जाए, बल्कि यह हमारे भीतर का वह स्वभाव है जिसे केवल 'अज्ञान' के आवरण ने ढका हुआ है। भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य इसी आवरण को हटाना है। निष्कर्षतः, यह शोध-पत्र यह प्रतिपादित करता है कि श्रीमद्भगवद्गीता का 'आनंदवाद' ही वह सेतु है जो प्राचीन ज्ञान को आधुनिक आवश्यकताओं से जोड़ता है। यह मात्र एक शोध का विषय नहीं, बल्कि एक 'जीवन-दृष्टि' है। यदि हम अपने शैक्षिक और सामाजिक ढांचे में IKS के इन मूल्यों को पुनः स्थापित कर सकें, तो न केवल भारत बल्कि वैश्विक समाज एक स्थायी शांति और अखंड आनंद की अनुभूति कर सकेगा। साहित्य की सृजनात्मकता और गीता की तार्किक गहराई का यह संगम ही मानवता के भविष्य का वास्तविक मार्गदर्शक है, जो एक ऐसे संतुलित समाज की नींव रखेगा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म में सौंदर्य और जीवन में आनंद का अनुभव कर सकेगा।

बीज शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS), श्रीमद्भगवद्गीता, आनंदवाद, समकालीन हिंदी साहित्य, मानसिक स्वास्थ्य, निष्काम कर्म, युवा पीढ़ी, डिजिटल भटकाव, संतुलित समाज।



प्रस्तावना:

"पुरुषार्थ की इस पावन भूमि, सुख का नया विधान खिले, जहाँ कर्म बने जब योग हमारा, तब मन को विश्राम मिले।

भारतीय मनीषा का यह गौरव, आनंद-सुधा बरसाता है, जब 'स्व' से जुड़ता मानव-मन, तब शाश्वत सुख को पाता है।"

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) आदि काल से ही मानवीय चेतना के उस उत्कर्ष की गाथा रही है, जहाँ जीवन का अंतिम ध्येय मात्र भौतिक अस्तित्व की रक्षा नहीं, बल्कि 'परम आनंद' की प्राप्ति रहा है। भारतीय मनीषा ने सुख की अवधारणा को केवल इंद्रियजन्य तृप्ति तक सीमित न रखकर उसे एक गहन आत्मिक अनुभव के रूप में परिभाषित किया है। हमारे ऋषियों ने यह स्पष्ट किया कि वास्तविक सुख बाह्य जगत की वस्तुओं में नहीं, अपितु अंतर्मन के संतुलन और 'स्व' में स्थित होने में निहित है। इसी उदात्त परंपरा के केंद्र में 'आनंद' को एक मौलिक पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जहाँ धर्म, अर्थ और काम की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब वे मनुष्य को मानसिक शांति और शाश्वत आनंद की ओर अग्रसर करें। श्रीमद्भगवद्गीता इसी महान परंपरा का वह व्यावहारिक शास्त्र है, जो कुरुक्षेत्र जैसे भयावह युद्धक्षेत्र के मध्य भी आनंद के मार्ग को प्रशस्त करता है।

आज के इस संक्रमण काल में, जहाँ वैश्वीकरण और सूचना क्रांति ने सुख के भौतिक साधनों की बाढ़ ला दी है, वहीं मानवीय अंतर्मन शांति और संतोष के लिए निरंतर तरस रहा है। विशेषकर नवयुवा पीढ़ी, जो आधुनिक जीवनशैली की गलाकाट प्रतिस्पर्धा और प्रदर्शन के अंतहीन दबाव में जी रही है, वह अक्सर सफलता प्राप्त करके भी 'विषाद' के गहन कुहासे में घिरी रहती है। ऐसी परिस्थिति में गीता का 'आनंदवाद' एक अनिवार्य वैश्विक आवश्यकता बनकर उभरता है। यह शोध-पत्र इस तथ्य का अन्वेषण करता है कि कैसे भारतीय ज्ञान परंपरा के ये शाश्वत सूत्र साहित्य की संवेदना के साथ जुड़कर आधुनिक समाज के सम्मुख एक 'मेंटल हेल्थ ब्लूप्रिंट' प्रस्तुत करते हैं। साहित्य ने सदैव दर्शन की जटिलताओं को अपनी सरस भाषा में ढालकर जन-सामान्य के लिए सुलभ बनाया है। इसी साहित्यिक और दार्शनिक समन्वय के माध्यम से हम एक ऐसे संतुलित समाज की परिकल्पना कर रहे हैं, जहाँ कर्म बोझ न होकर एक उत्सव बन जाए और जीवन तनाव से मुक्त होकर आनंद का एक अनवरत प्रवाह बन सके।

शोध के उद्देश्य:

- श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित 'आनंदवाद' और 'समत्व' की दार्शनिक अवधारणा को स्पष्ट करना।



- भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के व्यावहारिक सूत्रों (जैसे निष्काम कर्म और स्थितप्रज्ञता) की आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) के संदर्भ में प्रासंगिकता सिद्ध करना।
- जयशंकर प्रसाद और रामधारी सिंह दिनकर जैसे साहित्यकारों की कृतियों में गीता के आनंदवादी तत्वों की साहित्यिक पड़ताल करना।
- वर्तमान नवयुवा पीढ़ी की समस्याओं (तनाव, डिजिटल भटकाव) के समाधान हेतु गीता के सिद्धांतों पर आधारित एक स्वस्थ समाज का ब्लूप्रिंट प्रस्तुत करना।

शोध के प्रश्न:

- क्या गीता का 'आनंदवाद' केवल एक आध्यात्मिक विचार है या यह आधुनिक युग की मानसिक व्याधियों के लिए एक व्यावहारिक औषधि भी है?
- समकालीन हिंदी साहित्य ने गीता के गूढ़ दार्शनिक सूत्रों को सामाजिक समरसता और आनंद की प्रतिष्ठा हेतु किस प्रकार आत्मसात किया है?
- भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के सूत्र किस प्रकार युवाओं को परिणाम की आसक्ति से मुक्त कर उनकी कार्यक्षमता (Efficiency) बढ़ा सकते हैं?
- एक संतुलित समाज के निर्माण में गीता का 'युक्ताहार-विहार' और 'लोकसंग्रह' का सिद्धांत क्या भूमिका निभा सकता है?

साहित्य समीक्षा:

प्रस्तुत शोध की वैचारिक निर्मिति श्रीमद्भगवद्गीता के दार्शनिक भाष्यों और हिंदी साहित्य की कालजयी कृतियों के संगम पर आधारित है। श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्वविवेचनी) और डॉ. राधाकृष्णन के दार्शनिक विमर्श जहाँ 'आनंदवाद' को जीवन प्रबंधन के सूत्र के रूप में स्थापित करते हैं, वहीं जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' इसी दर्शन को 'समरसता' और 'निष्काम कर्म' के माध्यम से साहित्यिक धरातल प्रदान करते हैं। आधुनिक शोधों (यथा- नलिनी शर्मा) की समीक्षा यह स्पष्ट करती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के ये प्राचीन सूत्र वर्तमान समय के मानसिक तनाव और सामाजिक असंतुलन के निवारण हेतु पूर्णतः वैज्ञानिक एवं प्रासंगिक हैं।

गीता का दार्शनिक अधिष्ठान: 'विषाद' से 'बोध' की यात्रा

श्रीमद्भगवद्गीता का प्रादुर्भाव ही एक गहन मनोवैज्ञानिक संकट के समाधान हेतु हुआ है। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन का धनुष 'गाण्डीव' का हाथ से गिरना, शरीर में कंपन और मन का भ्रमित होना—ये



लक्षण आधुनिक मनोविज्ञान में 'गहन अवसाद' (Clinical Depression) और 'चिंता विकार' (Anxiety Disorder) के सटीक संकेत हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन के इस 'विषाद' को तिरस्कृत करने के स्थान पर उसे 'बोध' में बदलने की जिस प्रक्रिया का अनुसरण किया, उसे वर्तमान संदर्भों में 'संज्ञानात्मक पद्धति' (Cognitive Method) कहा जा सकता है। जहाँ आधुनिक चिकित्सा पद्धति केवल लक्षणों का उपचार करती है, वहीं कृष्ण अर्जुन के विचारों के मूल (Roots) पर प्रहार करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि दुःख का कारण बाहरी 'परिस्थिति' नहीं, बल्कि परिस्थिति के प्रति हमारी 'भ्रांत धारणा' और 'मोह' है। जब कृष्ण अर्जुन को 'स्वधर्म' और 'आत्म-ज्ञान' का बोध कराते हैं, तो वे वास्तव में उसकी संज्ञानात्मक चेतना का पुनर्निर्माण कर रहे होते हैं, जिससे विषाद स्वतः ही विवेक के प्रकाश में विलीन हो जाता है।

इस बोध की अगली सीढ़ी 'स्थितप्रज्ञ दर्शन' है, जो मानसिक सुदृढ़ता का एक अद्भुत विज्ञान है। गीता के द्वितीय अध्याय में वर्णित 'स्थितप्रज्ञ' वह व्यक्तित्व है जिसकी बुद्धि द्वंद्वों के प्रहार से विचलित नहीं होती। आज के प्रतिस्पर्धी युग में, जहाँ युवा वर्ग छोटी-सी असफलता या लाभ-हानि में अपना मानसिक संतुलन खो देता है, वहाँ गीता का यह सूत्र कि— "दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः" (गीता, २.५६) (दुःख में उद्वेग रहित और सुख में आसक्ति रहित होना)—एक अभेद्य मानसिक सुरक्षा कवच प्रदान करता है। यह दर्शन सिखाता है कि मानसिक सुदृढ़ता बाहरी अनुकूलता पर नहीं, बल्कि आंतरिक स्थिरता पर टिकी है। जब मनुष्य सफलता और विफलता को 'समत्व' भाव से स्वीकार करना सीख जाता है, तब वह वास्तविक अर्थों में 'मानसिक आरोग्य' को प्राप्त करता है। यह 'समत्व' ही वह धुरी है जिस पर एक स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है।

इसी अधिष्ठान का अंतिम और सबसे सूक्ष्म सोपान 'आनंद के वास्तविक स्वरूप' को समझना है। गीता इंद्रिय-सुख (Sensory Pleasure) और आत्मिक-आनंद (True Bliss) के मध्य एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींचती है। आधुनिक समाज जिसे 'सुख' समझकर उसके पीछे भाग रहा है, वह वस्तुतः इंद्रियों का विषयों के साथ क्षणिक संयोग मात्र है, जो आदि और अंत वाला होने के कारण अंततः दुःख का ही कारण बनता है। इसके विपरीत, गीता जिस 'सात्विक आनंद' की चर्चा करती है, वह 'आत्म-प्रसाद' से उत्पन्न होता है। यह आनंद बाहरी उपलब्धियों या प्रशंसा का दास नहीं है, बल्कि यह वह आंतरिक उल्लास है जो विपरीत परिस्थितियों में भी अखंड बना रहता है। इस सूक्ष्म अंतर को समझना ही भारतीय ज्ञान परंपरा की वह कुंजी है, जो व्यक्ति को भौतिकवादी भटकाव से निकालकर स्थायी सुख की ओर ले जाती है।

साहित्यिक अनुगूँज: हिंदी साहित्य में 'गीता-तत्व' और आनंद की प्रतिष्ठा:

दर्शन जहाँ मस्तिष्क को विचार देता है, वहीं साहित्य हृदय को संवेदना प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का 'आनंदवाद' हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडों में एक मार्गदर्शक शक्ति के रूप में



विद्यमान रहा है। इस शोध खंड में हम गीता के सिद्धांतों और साहित्य के समन्वय का त्रि-आयामी विश्लेषण करेंगे:

छायावाद और समरसता का सिद्धांत:

जयशंकर प्रसाद की कालजयी कृति 'कामायनी' का 'आनंदवाद' प्रत्यक्षतः गीता के 'समत्व योग' (गीता, २.४८) का साहित्यिक विस्तार है। गीता जहाँ सुख-दुख और शीत-उष्ण में समान रहने की शिक्षा देती है, वहीं प्रसाद जी उसे 'समरसता' के रूप में परिभाषित करते हैं। कामायनी का नायक 'मनु' जब तक द्वंद्वों और अतिवादी भौतिकता में फंसा रहता है, वह अशांत है; किंतु जैसे ही वह इस सत्य को समझता है कि— "समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था", वह अखंड आनंद को प्राप्त होता है। यह तुलनात्मक विश्लेषण सिद्ध करता है कि गीता का 'योग' और प्रसाद का 'आनंद' एक ही सत्य के दो नाम हैं। इसके साथ ही, महादेवी वर्मा के काव्य में जो 'रहस्यवाद' और 'असीम के प्रति व्याकुलता' है, वह वस्तुतः गीता के 'भक्तियोग' का ही प्रतिबिंब है। जहाँ वे कहती हैं— "मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ", वहाँ वे उस आध्यात्मिक आनंद की ओर संकेत करती हैं जो सांसारिक संयोग-वियोग से परे है। यह 'दुख' में भी 'सुख' की अनुभूति करना ही गीता का 'विगतस्पृह' (आसक्ति रहित) होना है।

राष्ट्रकवि दिनकर और कर्म की गरिमा:

रामधारी सिंह दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के माध्यम से आधुनिक काल में गीता के कर्म-दर्शन को पुनः जीवंत किया। दिनकर जी ने स्पष्ट किया कि मानसिक शांति 'पलायन' या युद्ध से भागने में नहीं, बल्कि 'न्यायोचित कर्म' में निहित है। गीता के 'योगः कर्मसु कौशलम्' (गीता, २.५०) का अनुसरण करते हुए दिनकर यह संदेश देते हैं कि जब कर्म न्याय के लिए और आसक्ति से मुक्त होकर किया जाता है, तो वह तनाव का कारण नहीं बनता, बल्कि गौरव और शांति का आधार बनता है। 'भीष्म' और 'युधिष्ठिर' का संवाद वस्तुतः आधुनिक मानव के अंतर्द्वंद्व का ही चित्रण है, जिसका समाधान गीता के 'निष्काम कर्म' में मिलता है।

समकालीन साहित्य में लोकमंगल और 'सर्वभूतहिते रताः':

वर्तमान दौर की रचनाओं में भी गीता के 'सर्वभूतहिते रताः' (गीता, १२.४) अर्थात् 'प्राणिमात्र के कल्याण' का स्वर प्रधान है। समकालीन साहित्यकार यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत सुख की अवधारणा संकीर्ण है; वास्तविक आनंद 'लोकमंगल' या सर्वजन कल्याण में ही संभव है। जब आधुनिक कविता सामाजिक विषमता के विरुद्ध खड़ी होती है, तो वह अनजाने में गीता के 'लोकसंग्रह' के सिद्धांत को ही पुष्ट कर रही होती है। कबीर के 'सहज समाधि' से लेकर समकालीन जनवादी कविता तक, भारतीय



साहित्य ने सदैव यह प्रतिपादित किया है कि 'स्व' का 'सर्व' में विलय हो जाना ही आनंद की पराकाष्ठा है। यह साहित्यिक दृष्टि ही एक संतुलित समाज का निर्माण करती है, जहाँ व्यक्ति के अधिकार और समाज के हित में एक सुंदर समन्वय होता है।

IKS और नवयुवा पीढ़ी: 'तनाव' से 'उत्कर्ष' की ओर:

भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) केवल प्राचीन ग्रंथों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि यह जीवन के कठिनतम संघर्षों में मार्गदर्शन करने वाली एक जीवंत पद्धति है। आज की नवयुवा पीढ़ी, जो सूचनाओं के विस्फोट और तीव्र वैश्विक प्रतिस्पर्धा के मध्य जी रही है, उसके लिए गीता के सूत्र एक 'सुरक्षा कवच' की भाँति हैं। इस खंड में हम युवाओं की समकालीन समस्याओं के समाधान हेतु गीता के व्यावहारिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करेंगे:

प्रतिस्पर्धात्मक युग और 'निष्काम कर्म':

वर्तमान समय में युवाओं के तनाव का सबसे मुख्य कारण कार्य से अधिक 'परिणाम की आसक्ति' है। जब लक्ष्य केवल उपलब्धि (Outcome) बन जाता है, तो कार्यक्षमता (Efficiency) में स्वतः ही गिरावट आने लगती है। गीता का 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (गीता, २.४७) का सिद्धांत आलस्य का त्याग कर 'सर्वोच्च कार्यक्षमता' प्राप्त करने का वैश्विक सूत्र है। यह युवाओं को सिखाता है कि जब हम भविष्य की चिंता और परिणाम के मोह को छोड़ देते हैं, तो हमारी संपूर्ण ऊर्जा 'वर्तमान प्रक्रिया' में लग जाती है। यही वह मानसिक स्थिति है जिसे आधुनिक मनोविज्ञान में 'स्टेट ऑफ फ्लो' (State of Flow) कहा जाता है, जहाँ व्यक्ति मानसिक बोझ से मुक्त होकर अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर पाता है।

एकाग्रता का प्रबंधन और डिजिटल भटकाव:

इस 'डिजिटल युग' में 'भटकाव' (Distraction) सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। युवाओं की एकाग्रता निरंतर भंग हो रही है, जिससे 'मानसिक बिखराव' और अवसाद की स्थिति उत्पन्न होती है। भगवान कृष्ण ने हजारों वर्ष पूर्व अर्जुन के इस प्रश्न का समाधान दिया था कि चंचल मन को कैसे स्थिर किया जाए। उनका सूत्र था— 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते' (गीता, ६.३५)। आज के संदर्भ में 'अभ्यास' का अर्थ है—निरंतर मानसिक अनुशासन, और 'वैराग्य' का अर्थ है—उन अनावश्यक सूचनाओं और आभासी (Digital) शोर से विरक्ति जो हमारी चेतना को दूषित करते हैं। यह अभ्यास युवाओं को मानसिक सुदृढ़ता प्रदान कर उन्हें अपने लक्ष्यों के प्रति केंद्रित करता है।



मूल्य-परक शिक्षा और 'स्वधर्म' की पहचान:

आज का युवा अक्सर करियर के चुनाव में सामाजिक दबाव और दूसरों की नकल का शिकार होता है, जिससे वह भीतर से सदैव असंतुष्ट रहता है। गीता का 'स्वधर्म' (गीता, ३.३५) का सिद्धांत प्रत्येक युवा को अपनी नैसर्गिक प्रकृति (Inherent Nature) और अद्वितीय कौशल को पहचानने की प्रेरणा देता है। "श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः..." का अर्थ है कि अपनी स्वभावज प्रतिभा के अनुसार कार्य करना, किसी दूसरे के सफल कार्य की नकल करने से कहीं अधिक श्रेयस्कर और आनंददायक है। जब शिक्षा केवल उपाधि (Degree) तक सीमित न रहकर 'मूल्य-परक' और 'स्वधर्म-आधारित' हो जाती है, तो युवाओं में वह चारित्रिक दृढ़ता आती है जो उन्हें केवल एक कुशल पेशेवर ही नहीं, बल्कि एक संतुलित और आनंदित व्यक्तित्व प्रदान करती है।

संतुलित समाज का ब्लूप्रिंट: एक स्वस्थ भविष्य का मार्ग

शोध का यह अंतिम चरण प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का 'आनंदवाद' केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक स्वस्थ और संतुलित वैश्विक समाज के निर्माण का आधार है। एक प्रगतिशील समाज की परिकल्पना तभी साकार हो सकती है जब उसके घटक मानसिक और शारीरिक रूप से सुदृढ़ हों।

वैयक्तिक शांति से सामाजिक समरसता:

समाज का स्वरूप उसके नागरिकों की मानसिक स्थिति का प्रतिबिंब होता है। गीता का दर्शन यह स्पष्ट करता है कि अशांत व्यक्ति कभी समाज में शांति स्थापित नहीं कर सकता। जब व्यक्ति गीता के 'समत्व' भाव के माध्यम से भीतर से 'आनंदित' और स्थिर होता है, तो उसका प्रभाव उसके परिवेश पर पड़ता है। वैयक्तिक शांति ही सामाजिक समरसता की जननी है। जब मनुष्य का 'स्व' संतुलित होता है, तब वह ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिस्पर्धा के संकीर्ण दायरे से बाहर निकलकर 'समरस समाज' की रचना में योगदान देता है।

IKS और समग्र स्वास्थ्य (Holistic Health):

आधुनिक युग में 'लाइफस्टाइल डिसऑर्डर' (जीवनशैली जन्य रोग) सबसे बड़ी चुनौती हैं। गीता इस संदर्भ में 'युक्ताहारविहारस्य' (गीता, ६.१७) का वैज्ञानिक सूत्र प्रदान करती है। यह सूत्र 'समग्र स्वास्थ्य' (Holistic Health) का वह ब्लूप्रिंट है, जो आहार, विहार (मनोरंजन), कर्म और निद्रा के मध्य संतुलन की वकालत करता है। शोधपरक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि यदि आधुनिक जीवनशैली में गीता के इस अनुशासन को समाहित किया जाए, तो शारीरिक रोगों के साथ-साथ 'बर्नआउट' और 'क्रोनिक स्ट्रेस' जैसी मानसिक



व्याधियों का जड़ से उन्मूलन संभव है। यह 'होलिस्टिक हेल्थ' ही एक उत्पादक और सुखी राष्ट्र का आधार है।

वैश्विक शांति के लिए गीता का संदेश:

वर्तमान विश्व जहाँ युद्ध और वैचारिक कट्टरता के दौर से गुजर रहा है, वहाँ गीता की 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना एक 'आनंदवादी समाधान' प्रस्तुत करती है। गीता हमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' (सभी प्राणियों को अपने समान देखना) की दृष्टि देती है। जब हम वैश्विक स्तर पर आनंद को केवल अपनी सीमा तक सीमित न रखकर 'सर्वजन सुखाय' के रूप में देखते हैं, तभी वास्तविक शांति संभव है। यह 'आनंदवादी दृष्टिकोण' ही धरातल पर वह करुणा और सहयोग ला सकता है, जिसकी आज वैश्विक शांति हेतु नितांत आवश्यकता है।

IKS और आनंदवाद के मार्ग में प्रमुख चुनौतियाँ

- भारतीय ज्ञान परंपरा के इन आदर्शों को वर्तमान सामाजिक और वैश्विक ढांचे में उतारना एक दुष्कर कार्य है, जिसके मार्ग में कुछ गंभीर चुनौतियाँ विद्यमान हैं:
- वैश्विक उपभोक्तावाद का प्रभाव: आज का युग 'उपभोक्तावादी संस्कृति' (Consumerism) से ग्रस्त है, जहाँ सुख को केवल भौतिक वस्तुओं के संग्रह से जोड़ा जाता है।
- शिक्षा का बाजारीकरण: वर्तमान शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य केवल 'आजीविका' (Employment) प्राप्त करना रह गया है।
- डिजिटल एल्गोरिदम और मानसिक एकाग्रता: आधुनिक तकनीक और सोशल मीडिया के एल्गोरिदम युवाओं के 'अटेंशन स्पैन' को निरंतर कम कर रहे हैं।
- दार्शनिक सिद्धांतों की गलत व्याख्या: अक्सर गीता के 'निष्काम कर्म' को लोग 'कर्महीनता' या 'लक्ष्यहीनता' समझ लेते हैं।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध का संपूर्ण विश्लेषण यह प्रतिपादित करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) का 'आनंदवाद' कोई अमूर्त दार्शनिक कल्पना नहीं, अपितु संतुलित जीवन जीने की एक अनिवार्य एवं वैज्ञानिक पद्धति है। श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से प्रतिपादित 'समत्व' और 'निष्काम कर्म' के सिद्धांत वर्तमान युग के मानसिक अवसाद, अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा और वैश्विक तनाव का सबसे तार्किक समाधान प्रस्तुत करते हैं। यह शोध इस महत्वपूर्ण तथ्य को रेखांकित करता है कि वास्तविक आनंद का आधार भौतिक संग्रह में



नहीं, बल्कि मानसिक स्थिरता और 'स्वधर्म' के पालन में निहित है, जो व्यक्ति को परिणाम की आसक्ति से मुक्त कर उसकी कार्यक्षमता को शिखर तक ले जाता है।

अतः यह शोध स्पष्ट रूप से अनुशासन करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के इन व्यावहारिक सूत्रों, विशेषकर 'युक्ताहार-विहार' और एकाग्रता प्रबंधन के प्राचीन विज्ञान को, आधुनिक शैक्षणिक पाठ्यक्रमों और सामाजिक संरचना का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाना चाहिए। ऐसा करके ही हम नवयुवा पीढ़ी को 'डिजिटल भटकाव' के संकट से निकालकर उनमें चारित्रिक दृढ़ता और आत्म-बोध जागृत कर सकते हैं। अंततः, वैश्विक प्रगति की परिभाषा को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है, जहाँ केवल आर्थिक विकास को ही नहीं, बल्कि 'आंतरिक आनंद' और 'मानसिक शांति' को ही मानव विकास का वास्तविक मापदंड स्वीकार किया जाए। गीता का यह कालजयी दर्शन और साहित्य की मानवीय संवेदना मिलकर एक ऐसे समरस समाज का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जहाँ भौतिक समृद्धि और आत्मिक संतोष का सुंदर समन्वय संभव हो सके। श्रीमद्भगवद्गीता का यह शाश्वत सूत्र ही एक स्वस्थ और संतुलित समाज की आधारशिला है:

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय । सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (गीता, २.४८)

(अर्थ: हे धनंजय! तुम आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुए अपने कर्मों को करो, क्योंकि यह 'समत्व' (मानसिक संतुलन) ही योग कहलाता है।)

सुझावः

- मूल्य-परक शैक्षणिक एकीकरण: भारतीय ज्ञान परंपरा (IKS) के सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा पद्धति में व्यावहारिक 'मेंटल वेलनेस' (Mental Wellness) मॉड्यूल के रूप में अनिवार्यतः शामिल किया जाना चाहिए।
- डिजिटल साक्षरता और वैराग्य: युवाओं को 'डिजिटल डिटॉक्स' और 'स्क्रीन-टाइम मैनेजमेंट' के आधुनिक संदर्भों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- सफलता के मापदंडों का पुनर्मूल्यांकन: प्रगति का पैमाना केवल 'भौतिक उपलब्धि' को न मानकर व्यक्ति के 'आंतरिक आनंद' और 'मानसिक संतुलन' को बनाया जाना चाहिए।
- स्वधर्म-आधारित करियर परामर्श: करियर परामर्श में 'स्वधर्म' के सिद्धांत को प्राथमिकता दी जाए।



सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. गोयन्दका, ज. (2022). श्रीमद्भगवद्गीता: तत्त्वविवेचनी (32वाँ संस्करण). गीता प्रेस.
2. गुप्त, श. (2021). भारतीय ज्ञान परंपरा: एक परिचय. प्रभात प्रकाशन.
3. दिनकर, रा. धि. (2018). कुरुक्षेत्र. लोकभारती प्रकाशन.
4. द्विवेदी, ह. प्र. (2015). हिन्दी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन.
5. प्रसाद, ज. (2019). कामायनी. भारती भंडार.
6. राधाकृष्णन, स. (2014). भारतीय दर्शन (भाग 1 एवं 2). राजपाल एंड संस.
7. शर्मा, न. (2020). श्रीमद्भगवद्गीता एवं तनाव प्रबंधन. विश्वविद्यालय प्रकाशन.
8. सिंह, का. (2017). भारतीय संस्कृति और आनंदवा



व्यावहारिक परिदृश्य में श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता

डॉ. मृगांक मलासी

सहायक आचार्य (संस्कृत)

डॉ. शिवानन्द नौटियाल

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग (चमोली) उत्तराखण्ड

आधुनिक युग को विज्ञान, तकनीकी और भौतिक प्रगति का युग कहा जाता है, किंतु इसके साथ ही यह मानसिक तनाव, अवसाद, प्रतिस्पर्धा और नैतिक मूल्यों के क्षरण का युग भी बन गया है। मनुष्य के पास साधन तो बढ़े हैं, परंतु शांति और संतोष का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे समय में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या प्राचीन भारतीय ग्रंथ, विशेषतः श्रीमद्भगवद्गीता, आज के जीवन में कोई व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत कर सकती है? श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक ऐसा ग्रंथ है जो केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग ही नहीं, अपितु मानव जीवन के व्यावहारिक पक्षों का भी गहन समाधान प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में मनुष्य तनाव, अनिश्चितता, नैतिक द्वंद्व, कर्तव्यबोध एवं उद्देश्यहीनता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो केवल आध्यात्मिक मुक्ति तक सीमित न होकर मानव जीवन के व्यावहारिक पक्षों को भी गहराई से स्पर्श करता है। गीता के उपदेश आज के प्रतिस्पर्धात्मक, तनावपूर्ण और मूल्य-संकट से ग्रस्त समाज में किस प्रकार संतुलित, नैतिक और सार्थक जीवन जीने की दिशा प्रदान करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेक भाष्य लिखे गए हैं। यह ऐसा कालजयी ग्रन्थ है जो प्रस्थानत्रयी में सम्मिलित है। आचार्य शंकर, रामानुज, माधव, बल्लभ, निम्बार्क आदि ने गीता पर भाष्य लिखे हैं। एतदतिरिक्त आनन्दगिरी, संत ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रमण के साथ बाल गंगाधर तिलक, श्रीअरविन्द, डॉ. राधाकृष्णन्, विनोबा भावे, सातवलकर आदि विचारकों ने गीता की गम्भीर विवेचना की है। श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश युद्धभूमि में दिया गया, जहाँ अर्जुन मानसिक संकट, कर्तव्य-बोध और मोह के द्वंद्व से ग्रस्त था। यह स्थिति आज के परिवेश से भिन्न नहीं है। अर्जुन का यह विषाद केवल व्यक्तिगत करुणा नहीं है, अपितु सामाजिक और नैतिक चिंता से भी जुड़ा हुआ है। आज का व्यक्ति भी अपने पारिवारिक, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन में अर्जुन जैसी दुविधाओं से गुजरता है। गीता का कर्मयोग यह सिखाता है कि मनुष्य को फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए यह सिद्धांत आधुनिक कार्य-संस्कृति और प्रबंधन (management) में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।



गीता में श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित समत्वबुद्धि का सिद्धांत आज के तनावग्रस्त जीवन में मानसिक संतुलन बनाए रखने का एक प्रभावी साधन है। “सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समान रहने” का उपदेश व्यक्ति को आंतरिक स्थिरता प्रदान करता है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के emotional stability के सिद्धांत से भी मेल खाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन का विषाद केवल व्यक्तिगत मानसिक संकट नहीं है, अपितु वह सामाजिक और नैतिक विघटन की आशंका से भी जुड़ा हुआ है। युद्धभूमि में खड़े होकर अर्जुन अपने ही स्वजनों, गुरुओं और संबंधियों को देखकर शस्त्र त्याग देना चाहता है। अर्जुन स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि कुल के नाश से कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और धर्म के नष्ट होने पर संपूर्ण कुल अधर्म से आक्रांत हो जाता है –

‘कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।

धर्मं नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥¹

इस श्लोक में अर्जुन समाज की उस स्थिति की ओर संकेत करता है जहाँ पारिवारिक और सामाजिक संरचनाओं के टूटने से अधर्म की वृद्धि होती है। आज के संदर्भ में यह विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। आधुनिक समाज में परिवार संस्था का कमजोर होना, नैतिक अनुशासन का ह्रास और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीनता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। गीता का यह कथन आज के सामाजिक जीवन में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है, जहाँ पारिवारिक मूल्यों, नैतिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का क्षरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। “कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः” यह श्लोक सामाजिक संरचना के विघटन की चेतावनी देता है। आज परिवार-व्यवस्था, नैतिक मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व में जो गिरावट दिखाई देती है, वह गीता के इस कथन को और अधिक सार्थक बनाती है। अर्जुन का युद्ध से विमुख होना केवल व्यक्तिगत करुणा नहीं, अपितु सामाजिक धर्म के नष्ट होने की आशंका का परिणाम है। आज की परिस्थिति में ऐसा नहीं है कि सज्जन पुरुषों का अभाव है अपितु अर्जुन की ही भाँति वे लोग विषाद में आकर अधर्म का प्रतिकार नहीं करना चाहते। यह कथन नैतिकता को सत्ता और भोग से ऊपर स्थापित करता है, जो आज की उपयोगितावादी संस्कृति में अत्यंत प्रासंगिक है।

आधुनिक समाज में बढ़ती व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ कर्तव्यबोध का ह्रास गीता की इस चेतावनी को और अधिक अर्थपूर्ण बनाता है। अर्जुन का यह कथन कि वह अपने गुरुओं और पूज्यजनों को मारकर राज्यसुख भोगने की अपेक्षा भिक्षा से जीवन यापन करना अधिक श्रेयस्कर समझता है –

गुरुनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।²

¹ श्रीमद्भगवद्गीता, 1.40

² श्रीमद्भगवद्गीता, 2.5



यह दर्शाता है कि गीता का नैतिक चिंतन केवल विजय या पराजय तक सीमित नहीं है, अपितु मूल्यबोध को सर्वोपरि मानता है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित न रखकर उसे नैतिक और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करना है।³ यही दृष्टि गीता के संपूर्ण दर्शन में परिलक्षित होती है।

गीता का कर्मयोग आधुनिक जीवन के लिए उसका सबसे व्यावहारिक योगदान माना जा सकता है। श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं —

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यकर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चक्रियः।⁴

प्रस्तुत वाक्य इस भांति का निराकरण करता है कि संन्यास का अर्थ कर्मत्याग है। वास्तव में गीता कर्म करते हुए भी आंतरिक वैराग्य और निष्कामता का उपदेश देती है। आज के व्यावसायिक जीवन में जहाँ व्यक्ति निरंतर परिणाम, प्रमोशन और प्रतिस्पर्धा के दबाव में रहता है, वहाँ कर्मयोग का यह सिद्धांत मानसिक तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध होता है।

‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन’⁵ का सिद्धांत आधुनिक कार्य-संस्कृति में process-oriented approach के समान है, जहाँ कर्म की गुणवत्ता को फल से अधिक महत्व दिया जाता है। आज के समय में जब व्यक्ति सामाजिक दबाव या तुलना के कारण अपने वास्तविक कर्तव्य से विचलित हो जाता है, यह उपदेश उसे आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाता है। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि इस श्लोक से सामान्य रूप से हर भारतीय परिचित है। जिसने कभी गीता का अध्ययन नहीं किया वह भी इस श्लोक को सामान्य व्यवहार में सुनता आया है। कतिपय लोग इसका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं कि कर्म करते जाओ फल की चिन्ता मत करो। परन्तु यह अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। वस्तुतः यह बताता है कि हमारा अधिकार मात्र कर्म करने में है, फल पर हमारा अधिकार नहीं है। यथा – कोई विद्यार्थी अच्छे अंक से उत्तीर्ण होना चाहता है तो इसके लिए उसे अध्ययन करना होगा। यह अध्ययन रूपी कर्म उसके अधीन है कि वह कितना समय अध्ययन करता है। तत्पश्चात् परीक्षा देने तक उसका अधिकार है, परन्तु परीक्षा परिणाम को वह अपने अधिकार में नहीं रख सकता कि वह सौ में से सौ अंक

³ भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1 डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

⁴ श्रीमद्भगवद्गीता, 6.1

⁵ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 47



स्वयं को दे सके। उसने जितना अध्ययन किया जो भी परीक्षा में लिखा तत्पश्चात् उसी के अनुसार उसे अंकों की प्राप्ति होगी। यही हमारे जीवन में भी है कि हम कर्म पर ही ध्यान केन्द्रित करें।

आधुनिक युग को तनाव का युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कार्य-दबाव, भविष्य की अनिश्चितता और असफलता का भय व्यक्ति को मानसिक रूप से कमजोर बना देता है। गीता जीवन और मृत्यु के प्रश्न को भी अत्यंत व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। आज व्यक्ति भौतिकता की अंधी दौड़ में स्वयं को अमर समझने लगा है। वह भूल जाता है कि उसे अपना भौतिक शरीर त्यागना ही पड़ेगा। स्वयं श्रीकृष्ण को भी अपना शरीर त्यागना पड़ा। क्योंकि जो भी उत्पन्न हुआ है उसका नाश निश्चित है। गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।⁶

ये श्लोक आधुनिक मनुष्य को मृत्यु-भय और असुरक्षा से मुक्त करने का मार्ग दिखाते हैं। आज के अनिश्चित और तनावपूर्ण जीवन में यह दृष्टि व्यक्ति को मानसिक स्थिरता प्रदान करती है। यदि व्यक्ति यह सदैव स्मरण रखे तो वह अनैतिक कार्यों की ओर प्रवृत्त नहीं होगा और न ही किसी को कष्ट देगा। उसे इस सत्यता को आत्मसात् करना होगा कि शरीर नश्वर है केवल आत्मा ही है जो अजर एवं अमर है।⁷ यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान में existential anxiety को कम करने में सहायक सिद्ध होता है। यह बोध कराता है कि परिवर्तन और नश्वरता जीवन का अनिवार्य सत्य हैं। जब मनुष्य इस सत्य को स्वीकार कर लेता है, तब उसके भीतर मृत्यु-भय और भविष्य की चिंता कम होने लगती है। आधुनिक मनोविज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि अनिश्चितता को स्वीकार करना मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

गीता के उपदेशकर्ता श्रीकृष्ण आदर्श नेतृत्व का प्रतीक है। वह अर्जुन को आदेश नहीं देते, अपितु उसका विवेक जगाते हैं। यह संकेत करता है कि जब समाज में नैतिक पतन हो, तब नेतृत्व का कर्तव्य है कि वह धर्म की पुनर्स्थापना करे। जब-जब समाज में धर्म का क्षरण और अधर्म में वृद्धि होती है, तब गीता पुनर्स्थापन का सिद्धांत प्रस्तुत करती है।⁸ यह श्लोक अवतारवाद मात्र तक सीमित नहीं है, अपितु यह संकेत करता है कि प्रत्येक युग में व्यक्ति को अपने स्तर पर धर्म की पुनर्स्थापना करनी चाहिए। धर्म से अभिप्राय है जिसे धारण किया जाए। 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्' यही व्यक्ति का आचरण होना चाहिए। प्रत्येक युग में व्यक्ति को अपने स्तर पर धर्म और नैतिकता की रक्षा करनी चाहिए। आज के सामाजिक जीवन में, जहाँ भ्रष्टाचार, स्वार्थ और

⁶ श्रीमद्भगवद्गीता 2.27

⁷ न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.20

⁸ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ श्रीमद्भगवद्गीता 4.7



नैतिक पतन व्यापक रूप से दिखाई देता है, गीता का यह उपदेश अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है। आधुनिक जीवन की जटिलताएँ अर्जुन के विषाद से भिन्न नहीं हैं। गीता का उपदेश इसी द्वंद्व का समाधान प्रस्तुत करता है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार भारतीय दर्शन का लक्ष्य जीवन को नैतिक ऊँचाई प्रदान करना है, न कि केवल भौतिक समृद्धि।

गीता का कर्मयोग जीवन से पलायन नहीं, अपितु जीवन में रहकर संतुलन सिखाता है। आज का मनुष्य परिणाम-केन्द्रित (result-oriented) जीवन जीता है, जिससे तनाव और असंतोष उत्पन्न होता है। गीता के अनुसार उत्तम प्रकार से आचरित परधर्म की अपेक्षाकृत स्वधर्म गुणहीन भी उत्कृष्ट है। स्वयं के धर्म में मृत्यु भी श्रेयस्कर है परन्तु परधर्म भयानक है।⁹ व्यावहारिक धरातल पर हम इस कथन की विवेचना करें तो हम देखते हैं कि एक-दूसरे से आगे जाने की प्रतिस्पर्धा में हर कोई भाग रहा है। माता-पिता अपनी अपेक्षाओं का भार अपनी संतति पर डाल देते हैं। आपसी सम्बन्धों को देखते हुए अपने बच्चों को भी दूसरे की तरह बनाने के लिए उस पर इतना बोझ डाल दिया जाता है कि उसकी नैसर्गिक प्रतिभा का हनन हो जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) की रिपोर्टों के अनुसार, भारत में हर साल लगभग **13,000 से अधिक छात्र** (2022 में 13,044) आत्महत्या कर रहे हैं, जो प्रति घंटे एक से अधिक छात्र की मृत्यु के बराबर है। यह आंकड़ा हम सबके लिए चिन्ताजनक है। छात्रों का जीवन से यह पलायन केवल और केवल अपेक्षाओं पर खरा न उतर पाने के कारण है। आधुनिक जीवन में तुलना और प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न असंतोष का समाधान हमें गीता में प्राप्त होता है। स्वधर्म ही उचित है और स्वधर्म का अर्थ है कि बच्चा या विद्यार्थी अथवा कोई भी व्यक्ति अपनी अभिरुचि अनुसार ही कार्य करे। दूसरों के अंधानुकरण में अपना जीवन नष्ट न करे।

आधुनिक प्रबंधन (management) में गीता का कर्मयोग, निष्पक्षता और समत्वबुद्धि ethical leadership के सिद्धांतों से मेल खाती है। गीता ज्ञान को मुक्ति और शुद्धि का साधन मानती है। कृष्ण कहते हैं कि इस भूलोक में तत्त्वज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह अन्य कोई साधन उपलब्ध नहीं है। उस तत्त्वज्ञान को दीर्घकाल पर्यन्त कर्मयोग अनुष्ठान करके शुद्धान्तःकरण हुआ कर्मयोगी स्वयमेव अपनी आत्मा में अवश्य अनुभव करता है।¹⁰ ज्ञान केवल सूचना (information) नहीं, अपितु आत्मबोध (self-realization) का साधन है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रायः कौशल और रोजगार पर केंद्रित हो गई है, किंतु नैतिक और आत्मिक विकास की अपेक्षा की जा रही है। गीता का ज्ञान-सिद्धांत इस असंतुलन को दूर करने का मार्ग प्रस्तुत करता है। “ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं

⁹ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मं निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.35

¹⁰ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति। श्रीमद्भगवद्गीता 3.38



सन्तरिष्यसि¹¹ का विचार आधुनिक शिक्षा-दर्शन और आत्म-विकास (self-development) की अवधारणा से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह श्लोक यह दर्शाता है कि ज्ञान व्यक्ति के भीतर नैतिक परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। आधुनिक सुधारवादी और आत्म-विकास के सिद्धांत इस विचार से गहराई से जुड़े हुए हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन की एक केंद्रीय कड़ी है, जिसमें उपनिषद्, सांख्य और योग दर्शन का समन्वय दिखाई देता है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य मानव जीवन को नैतिक और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करना है, न कि केवल भौतिक समृद्धि।¹² गीता इसी दार्शनिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। गीता में जीवन को न तो पूर्णतः त्याज्य माना गया है और न ही केवल भोग का साधन। यह मध्य मार्ग का दर्शन प्रस्तुत करती है, जिसमें कर्म करते हुए भी आत्मिक शांति प्राप्त की जा सकती है। इस दृष्टि से गीता भारतीय दर्शन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

गीता का एक केंद्रीय सिद्धांत समत्वबुद्धि है। श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि जीवन में सुख-दुःख, लाभ-हानि और सफलता-असफलता को समान भाव से स्वीकार करना चाहिए।¹³ आज का मनुष्य अत्यधिक भावनात्मक उतार-चढ़ाव का शिकार है। कभी अत्यधिक प्रसन्नता और कभी गहन निराशा। ये दोनों ही स्थितियाँ मानसिक असंतुलन उत्पन्न करती हैं। गीता का समत्व-सिद्धांत भावनात्मक परिपक्वता (emotional maturity) की ओर ले जाता है। कार्यस्थलों पर होने वाला तनाव, असफलता का भय और सामाजिक तुलना—इन सभी समस्याओं का समाधान गीता के समत्वबुद्धि के सिद्धांत में निहित है। यह सिद्धांत आधुनिक stress management techniques से गहराई से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

कर्म, कर्तव्य और आधुनिक व्यावसायिक जीवन - आधुनिक व्यावसायिक जीवन (professional life) में व्यक्ति प्रायः नैतिक द्वंद्व से गुजरता है। लाभ, पद और प्रतिस्पर्धा के दबाव में वह कई बार अपने मूल्यों से समझौता कर लेता है। गीता इस संदर्भ में कर्तव्य की सर्वोच्चता पर बल देती है। गीता के अनुसार अपने कार्यों को सम्पादित करो। कार्य में सफलता मिले या न मिले बस हमें पूर्ण मनोयोग से कार्य करना चाहिए।¹⁴ श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्तव्य के परिणामों से भयभीत न होने की शिक्षा देते हैं। आज के संदर्भ में यह विचार व्यक्ति को नैतिक साहस (moral courage) प्रदान करता है। कर्मयोग का सिद्धांत यह सिखाता है कि व्यक्ति को अपने कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा

¹¹ श्रीमद्भगवद्गीता 4.36

¹² भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1 डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

¹³ सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धान्य युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.38

¹⁴ हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धान्य कृतनिश्चयः॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.37



रखनी चाहिए, परंतु उसके फल से आसक्ति नहीं करनी चाहिए। यह दृष्टि आधुनिक प्रबंधन (management studies) में duty-oriented leadership की अवधारणा से मेल खाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित नेतृत्व का स्वरूप आधुनिक authoritative leadership से भिन्न है। गीता का नेतृत्व आदेशात्मक नहीं, अपितु विवेक-जागरण पर आधारित है। श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए बाध्य नहीं करते, अपितु उसके भीतर छिपे कर्तव्यबोध और विवेक को जाग्रत करते हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक participative एवं ethical leadership के सिद्धांतों से गहराई से जुड़ा हुआ है। गीता में नेतृत्व का मूल आधार कर्तव्य, नैतिकता और लोककल्याण है। अर्जुन को यह बोध कराया जाता है कि उसका युद्ध व्यक्तिगत शत्रुता नहीं, अपितु सामाजिक धर्म की रक्षा के लिए है। आधुनिक संदर्भ में नेतृत्व का यही आदर्श राजनीति, प्रशासन और कॉर्पोरेट जगत में अपेक्षित है, जहाँ निर्णय केवल लाभ के लिए नहीं, अपितु व्यापक सामाजिक प्रभाव को ध्यान में रखकर किए जाने चाहिए।

आधुनिक प्रबंधन सिद्धांतों में लक्ष्य-निर्धारण, कार्य-कुशलता और परिणाम को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। किंतु इसके दुष्परिणामस्वरूप तनाव, असंतोष और नैतिक विचलन उत्पन्न होते हैं। गीता का कर्मयोग इन समस्याओं का संतुलित समाधान प्रस्तुत करता है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार गीता कर्म और ज्ञान का ऐसा समन्वय प्रस्तुत करती है, जो व्यक्ति को कर्मशील रहते हुए भी आंतरिक शांति प्रदान करता है।

यद्यपि गीता में कर्म और ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है, तथापि भक्ति को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भक्ति यहाँ अंधविश्वास नहीं, अपितु आस्था और समर्पण का भाव है, जो व्यक्ति को मानसिक दृढ़ता प्रदान करता है। आधुनिक जीवन में जब व्यक्ति अकेलापन, निराशा और अर्थहीनता का अनुभव करता है, तब गीता की भक्ति-दृष्टि उसे भावनात्मक सहारा प्रदान करती है। यह आस्था व्यक्ति को आंतरिक संतुलन और आत्मविश्वास प्रदान करती है, जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता का सम्पूर्ण द्वादश अध्याय इसी भावना को प्रदर्शित करता है।

गीता व्यक्ति को केवल अपने लिए नहीं, अपितु समाज के लिए भी कर्म करने की प्रेरणा देती है। निष्काम कर्म का सिद्धांत सामाजिक सेवा और लोककल्याण का आधार बनता है। जब व्यक्ति अपने कार्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर करता है, तब समाज में संतुलन और सामंजस्य स्थापित होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि'¹⁵ का उपदेश आधुनिक सामाजिक जीवन में अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ ने सामूहिक चेतना को कमजोर कर दिया है।

¹⁵ श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20



आधुनिक युग में आत्मविकास (self-development) पर अत्यधिक बल दिया जाता है। नई शिक्षा नीति में भी इस पर पर्याप्त जोर दिया गया है। कौशल विकास पाठ्यक्रमों पर अधिक बल दिया जा रहा है, परन्तु सत्यता यह है कि ये समस्त प्रकल्प बाह्य सफलता तक ही सीमित रह जाते हैं। इस दृष्टि से भी गीता सदैव प्रासंगिक है। गीता आत्म-विकास को आंतरिक शुद्धि और विवेक से जोड़ती है। 'उद्धरेदात्मनाऽत्मानं' का सिद्धांत व्यक्ति को आत्म-उत्तरदायित्व (self-responsibility) का बोध तो कराता ही है साथ में यह भी बताता है कि व्यक्ति अपना मित्र भी स्वयं है और शत्रु भी।¹⁶ यह विचार आधुनिक प्रेरणात्मक साहित्य (motivational literature) से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

व्यक्ति आज तनाव, अवसाद, प्रतिस्पर्धा, नैतिक असमंजस, पारिवारिक विघटन आदि जिन समस्याओं से ग्रस्त है उन सभी समस्याओं का समाधान गीता में प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध है। गीता बताती है कि तनाव का मूल कारण फल की आसक्ति है। असंतोष का कारण परधर्म और तुलना है। नैतिक पतन का कारण कर्तव्य से विमुखता है। कर्मयोग इन तीनों समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। जब व्यक्ति अपने कर्तव्य को ईश्वरार्पण भाव से करता है, तब उसका जीवन अधिक संतुलित, शांत और अर्थपूर्ण बनता है। आधुनिक मनोविज्ञान, प्रबंधन और नेतृत्व सिद्धांत जिस *emotional balance*, *ethical decision making* और *self-control* की बात करते हैं, उनका मूल बीज गीता में पूर्व से ही विद्यमान है।

समकालीन समाज में नैतिक मूल्यों का हास एक गंभीर समस्या बन चुका है। भ्रष्टाचार, स्वार्थ, हिंसा और असहिष्णुता सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं। गीता का धर्म-सिद्धांत किसी संकीर्ण धार्मिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है, अपितु वह कर्तव्य, न्याय और लोककल्याण पर आधारित है। "लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि"¹⁷ का उपदेश यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति का कर्तव्य केवल स्वयं तक सीमित नहीं है। आज जब समाज में व्यक्तिवाद हावी हो रहा है, तब गीता सामूहिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व की पुनर्स्थापना का मार्ग दिखाती है।

वस्तुतः श्रीमद्भगवद्गीता किसी एक काल, वर्ग या परिस्थिति तक सीमित ग्रंथ नहीं है। इसका दर्शन मानव जीवन की उन मूलभूत समस्याओं से जुड़ा है, जो प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में उपस्थित रहती हैं। अर्जुन का विषाद, कर्तव्य-द्वंद्व, नैतिक संकट और मानसिक अशांति आज के मानव की स्थिति से भिन्न नहीं है। गीता का समाधान भी इसी कारण कालातीत और सार्वकालिक बन जाता है। गीता जीवन से पलायन का नहीं, अपितु जीवन के भीतर संतुलन स्थापित करने का मार्ग दिखाती है। कर्मयोग, निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि, स्वधर्म, ज्ञान और

¹⁶ उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ श्रीमद्भगवद्गीता, 6.5

¹⁷ श्रीमद्भगवद्गीता 3.20



भक्ति आदि सभी सिद्धांत मिलकर एक ऐसे व्यावहारिक जीवन-दर्शन का निर्माण करते हैं, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं का समाधान प्रस्तुत करता है। श्रीमद्भगवद्गीता आधुनिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का एक समग्र समाधान प्रस्तुत करती है। गीता का दर्शन मानव जीवन को संतुलित, नैतिक और उद्देश्यपूर्ण बनाने का मार्ग दिखाता है। कर्मयोग व्यक्ति को कर्मशील रहते हुए भी तनावमुक्त बनाता है। स्वधर्म का सिद्धांत आत्मसंतोष और आत्मसम्मान प्रदान करता है। समत्वबुद्धि भावनात्मक अस्थिरता को नियंत्रित करती है, जबकि ज्ञान और भक्ति आत्मिक शुद्धि एवं आंतरिक शक्ति का संचार करते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के पश्चात् भी श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता अक्षुण्ण बनी हुई है। आज के युग में गीता को केवल पूजा-पाठ तक सीमित न रखकर, जीवन-दर्शन के रूप में अपनाने की आवश्यकता है। यही इसकी वास्तविक व्यावहारिकता है। गीता की व्यावहारिक उपादेयता कालातीत है।



श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ की भूमिका (वैश्विक एवं समकालीन परिप्रेक्ष्य में)

सतीश चन्द्र कैवर्त

शोधछात्र ,

फिलॉसफी डिपार्टमेंट

डी.एस.वी.वी. गायत्रीकुंज-शांतिकुंज हरिद्वार

डा. कृष्णा झरे

दर्शनशास्त्र विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय शांतिकुंज हरिद्वार, उत्तराखंड

सारांश -

समस्त भारत वर्ष की सोये हुए प्रसुप्त अंतरात्मा को पुनर्जागरण हेतु ज्ञान एवं विज्ञान की प्रतिष्ठापना करना अतिआवश्यक है। ज्ञान एवं विज्ञान के बल पर ही कोई व्यक्ति या राष्ट्र उन्नति कर सकता है। इन दोनों में एक की कमी हो तो अधःपतन आरंभ हो जाता है। ज्ञान और विज्ञान का सर्वश्रेष्ठ एवं उत्तम कार्य यज्ञ में ही सन्निहित है। आत्मसाक्षात्कार,स्वर्ग का सुख साधन, बंधन एवं मुक्ति, मन की शुद्धि, पाप संताप एवं प्रायश्चित्त कर्म, आत्मबल, मनोबल, शरीरबल, इच्छाशक्ति, समग्र स्वास्थ्यवर्धक, आत्मोन्नति, ऋद्धि-सिद्धि के केन्द्र भी यज्ञ ही थे। यज्ञीय जीवन जीकर किए गये कर्मों वाला जीवन ही श्रेष्ठतम जीवन है।³ आत्मस्वरूप यज्ञ - इसके अनुसार गीताकार का आशय है- परमात्मा में ज्ञान द्वारा एकीभाव से स्थित होकर ब्रह्मरूप अग्नि में यजन करना। अर्थात् "ब्रह्माग्नि " में जीवात्मा हविस्य के रूप में आहुति देना ही ज्ञानयज्ञ कहलाता है।⁴

आध्यात्मिक यज्ञीय ज्ञान का अर्थ है विद्या, बुद्धिमत्ता, विवेक, दूरदर्शिता, सद्भावना, उदारता और न्यायप्रियता जैसे गुणों का समन्वित रूप। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार आध्यात्मिक यज्ञ के अन्तर्गत देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, आत्मयज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, प्राणयज्ञ, संयमयज्ञ, आहारयज्ञ आदि की चर्चा करते हुये यह बताया गया है कि आत्मकल्याण व प्रभुप्राप्ति के मार्ग पर चलते हुए जो भी सत्साधन कार्य में लाए जाते हैं, वे सब यज्ञरूपी ही हैं।⁵(गीता 4/25-30)

आचार्य श्री के अनुसार - यह परमार्थप्रियता , परस्पर सहयोग, सद्भावना की वृत्ति, संयम, त्याग, उदारता, धर्मप्रियता, आस्तिकता एवं ईश्वर उपासना की भावना ही यज्ञ का वास्तविक रहस्य है।⁶



श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार - सम्पूर्ण क्रियाओं और पदार्थों को अपना और अपने लिए न मानकर केवल भगवान के लिए ही मानना “भगवद्दर्पणरूप यज्ञ” है। परमात्मा की सत्ता में अपनी सत्तामिला देना अर्थात् ‘मैं’ - पन को मिटा देना “अभिन्नता रूप यज्ञ” है।⁷

कूटशब्द - ज्ञानयज्ञ, यज्ञीय जीवन, यज्ञ, कर्म, मुक्ति, आत्मशुद्धि, भगवद्गीता, श्रीमद्भगवद्गीता।

1. प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति है, देव संस्कृति है, यज्ञीय संस्कृति है। हम कहीं से भी आरम्भ करें, ईश्वर तक, संस्कृति के केंद्र तक सीधे जा पहुँचते हैं। हमारे संस्कृति के पुरोधा कहते हैं- **परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।**

गीता की यज्ञसंबंधी परिकल्पना का वर्णन दो अलग-अलग स्थलों में हुआ है; एक तीसरे अध्याय में और दूसरा चौथे अध्याय में; पहला वर्णन ऐसा है कि यदि हम उसीको देखें तो ऐसा मालूम होगा कि गीता केवल आनुष्ठानिक यज्ञ की बात कह रही है; दूसरा वर्णन उसीको बहुत व्यापक दार्शनिक अर्थ का प्रतीक बनाता है और इस प्रकार उसका अभिप्राय ही एकदम बदलकर उसे आंतरिक और आध्यात्मिक सत्य के एक ऊँचे क्षेत्र में ला बैठाता है।¹

भारतीय संस्कृति में 'यज्ञ' को भारतीय दर्शन का पिता और 'गायत्री' को माता माना गया है। जब ये दोनों शक्तियाँ एक साथ मिलती हैं, तो समाज में एक नव-चेतना का संचार होता है। 'यज्ञ' का व्यापक अर्थ है— त्याग, सहयोग और सत्कर्म। 'गायत्री' का व्यापक अर्थ है—सद्ज्ञान।

हमारे कर्मों से हमारे समाज की, राष्ट्र की प्रगति हो, उन्नति हो, उत्कर्ष हो, यह लक्ष्य हो तो हमारा जीवन यज्ञमय है। वस्तुतः कर्म एक प्रवाह है, जिसमें जिंदगी की सारी शक्तियाँ प्रवाहित होती रहती हैं। हमारे कर्म राष्ट्र रूपी शरीर की शिराएँ हैं। ज्ञान एक छोर से दूसरे तक, विभूति-विद्या-अर्थ रुके नहीं, अवरूद्ध न हों, समाज के निचले तबके से शिखर तक पहुँचे, परस्पर तालमेल विकसित हो, **यही समाज यज्ञ राष्ट्र यज्ञ है।** बौद्धिक सम्पदा मात्र शहरों तक सीमित न रहे, गाँव-गाँव तक, जन-जन तक पहुँचे। ऋषियों के जीवनकाल की व्यवस्था की पुनरावृत्ति हो। इसके लिए प्रवाह का एक तंत्र बने। इसी का नाम है यज्ञ।²

यज्ञ या अग्निहोत्र भारतीय संस्कृति का एक विशेष प्रतीकात्मक शब्द है। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति एक नियत स्थान पर दृढ़ जमकर खड़ा हुआ, नियत कार्य में श्रम लगाता हुआ, एक वस्तु को को आगे



सरका देता है। यही वास्तव में यज्ञ कार्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१४१६) ने उद्घोष किया "यज्ञोदय सर्व कामधुक्" । यज्ञ से सभी की कामनायें पूर्ण होती हैं।³

2. यज्ञ का व्यापक स्वरूप:

यज्ञीय जीवन सहकार व सह-अस्तित्व के मूल्यों से युक्त एक सतत प्रवहमान अवस्था है, जिसमें हर क्षण कर्म व्यक्त व विलीन होते हैं।

ईश्वरीय दिव्य शक्तियों की आराधना, उनकी समीपता-संगति तथा अपनी समझी जाने वाली वस्तुओं को उनके अर्पण करना, यह यज्ञ की आध्यात्मिक प्रक्रिया है।

“यज्ञ” धातु से निष्पन्न यज्ञ शब्द के तीन अर्थ हैं (१) देवपूजन (२) संगति-करण (३) दान। इन तीनों ही प्रवृत्तियों को व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष की दिव्य धाराएँ कहा जा सकता है।⁴

- देवपूजन का अर्थ है- परिष्कृत व्यक्तित्व-देवी सद्गुणों का अनुगमन ।⁵
- संगतिकरण अर्थात् एकता सहकारिता संघबद्धता। आत्मवत् सर्व भूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम्,⁶
- दान अर्थात् समाज परायणता, विश्व कौटिम्बिकता, उदार सहृदयता।⁷

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार - सम्पूर्ण क्रियाओं और पदार्थों को अपना और अपने लिए न मानकर केवल भगवान के लिए ही मानना “भगवद्दर्पणरूप यज्ञ” है। परमात्मा की सत्ता में अपनी सत्तामिला देना अर्थात् ‘मैं’ - पन को मिटा देना “अभिन्नता रूप यज्ञ” है।⁸

ऋग्वेद के प्रथम मंत्र यज्ञीय ज्ञान के सम्बन्ध में यह स्मरण दिलाता है -

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १.१.१

ऋग्वेद, मंडल १ (मधुच्छंदा वैश्वामित्र सूक्त १)

मैं उन 'ज्वाला' को, उन पुरोहित को, उन 'यज्ञ' के दिव्य 'ऋत्विक्' को पूजता हूँ, वे आह्वानकर्ता जो पूर्ण रूप से परमानंद की स्थापना करते हैं।⁹

आचार्य पंडित श्रीराम शर्मा अखण्ड ज्योति पत्रिका में लिखते हैं- "जिस तरह अग्नि यज्ञ कुण्ड में प्रज्ज्वलित होती है, वैसे ही ज्ञानाग्नि अंतःकरण में तपाग्नि इन्द्रियों में तथा कर्माग्नि देह में प्रज्ज्वलित रहनी चाहिए, यही यज्ञ का आध्यात्मिक स्वरूप है। अपनी संकीर्णता, अहंता, स्वार्थपरता को जो इस दिव्य अग्नि में होम देता है, वह बदले में इतना प्राप्त करता है, जिससे नर को नारायण की पदवी मिल सके।"¹⁰ (अप्रैल १९८१ पृष्ठ ४९)।



इसी क्रम में यज्ञ को विश्व का सर्वोत्कृष्ट दर्शन बताते हुए लिखते हैं-" यज्ञ में समाहित विचार एवं प्रेरणाएँ आस्था परिशोधन एवं आदर्शों की प्रतिष्ठापना का एक सशक्त माध्यम हैं। इसमें सन्निहित विचार प्रवाह में मनुष्य को श्रेष्ठ, उदार एवं उदात्त बनाने के सारे तत्व विद्यमान हैं। ऐसे किसी दर्शन की खोज करनी हो जो विवादों से रहित एवं बोधगम्य हो तो वह यज्ञदर्शन ही हो सकता है।"¹¹ (अखण्ड ज्योति, सितम्बर १९८१, पृष्ठ ४७)।

इसीलिये शास्त्र कहता है- **"महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।"**

यज्ञों में भी श्रेष्ठतम एवं महायज्ञ कहा जाने वाला वह कर्म है जो व्यक्ति को ब्राह्मणत्व के पद पर अधिष्ठित कर देता, उसके जीवन को ब्राह्मण प्रधान कर देता है। ब्राह्मणत्व अर्थात् आज के तथाकथित मनुवाद के नाम पर आलोचना करने वाले जाति-वर्ण वाला ब्राह्मण नहीं-ज्ञान का संपादन करने वाला-देवताओं की रीति-नीति वाला जीवन जीने वाला। इसी चौथे अध्याय की प्रारंभिक टिप्पणियों में गुण कर्म विभागानुसार चार वर्षों के रचने की चर्चा (श्लोक क्रमांक-१३) भगवान् ने की है। यदि वह हम समझ लें तो हमें यज्ञ-महायज्ञ का सही मर्म भी समझ में आ सकेगा।¹²

इसके पूर्व तीसवें श्लोक तक विचित्र यज्ञों के माध्यम से यज्ञ का मर्म बताते बताते यहाँ इक्तीसवें श्लोक में उपरोक्त कथा का सार इस तरह कह देते हैं-"यज्ञ से बचे अमृत का अनुभव करने वाले योगीजन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।" मानव जाति की समाज की सेवा स्वरूप किया गया श्रेष्ठतम कर्म ही यज्ञ है। **(यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म)** ¹³

इसके परिणाम स्वरूप जो आत्मसंतोष-कीर्ति-ऐश्वर्य आदि प्राप्त होता है, वह यज्ञ-अवशिष्ट है। यही "प्रसाद" कहलाता है जो विभिन्न प्रकार के पूर्व में बताए गए बारह प्रकार के यज्ञों की परिणति स्वरूप प्राप्त होता है। शर्त एक ही है कि यह सभी यज्ञ **निष्काम भाव** से किये जाएँ। **" यज्ञावशिष्ट" या "प्रसाद"** का अर्थ है **वह पदार्थ या तत्व जो मानसिक शांति दे, तृप्ति दे, तुष्टि दे।** उस तरह यज्ञमय जीवन हमारी सभी वासनाओं का क्षय कर मन को अनिर्वचनीय शांति से भर देता है। वह शान्ति जिसकी खोज में आज सारा विश्व है, इसी यज्ञमय जीवन की रीति-नीति से मिलती है। वासनाओं का क्षय होते ही अंतिम परिणति के रूप में हमें समष्टिगत चैतन्य से एकाकार होने की सिद्धि भी (ब्रह्म सनातनम्) मिल जाती है।¹⁴

भगवान् आगे कहते हैं कि हे कुरुओं में श्रेष्ठ ! यज्ञ न करने वाले के लिये तो यह लोक भी न होने के समान है **(नायं लोकोऽस्त्यज्ञस्य)** तब परलोक की बात की क्या कही जाय ? **(कुतोऽन्यः)**। इस एक पंक्ति में बड़े ही मर्म की बात बता दी गयी है। एक ही सार्वभौमिक सत्य का उद्घाटन किया गया है कि जो व्यक्ति समर्पण भाव से (यज्ञीय भाव से) कर्म करने को तैयार नहीं, उसे न तो इस संसार में वास्तविक लाभ है, (संतोषमय जीवन-प्रसन्नता अथवा तृप्ति मिल पाती है) न ही मरने के बाद वह शांति पाता है।



वास्तविक प्रसन्नता- सफल जीवन जीने की अनुभूति की एक ही कुंजी है-यज्ञभाव में रहकर उद्यमपूर्वक सतत कर्म करते रहना (कुर्वन्नेवेह कर्माणि)।¹⁵

3. यज्ञ का वैश्विक एवं समकालीन स्वरूप - यज्ञमय जीवन की प्रासंगिकता

जिस समाज या राष्ट्र में युवाशक्ति-भोग में डूबे आम आदमी, विषयी विलासी-विचारहीन-स्वार्थी-इक्कड़-अति महत्वाकांक्षी-भोगप्रधान चिन्तन वाले होंगे, वह राष्ट्र या समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता, फल-फूल नहीं सकता-यह श्रीकृष्ण की स्पष्ट घोषणा है। न ही ऐसे समाज से कुशल शासक-संगठन कर्ता, नेता निकल पायेंगे, न इस जगत में कभी शान्ति मिल पाएगी-चाहे उद्योग कितने ही बढ़ जाएँ, कितना ही आधुनिकीकरण यंत्रीकरण क्यों न हो जाए। त्यागमय जीवन में प्रतिष्ठित हों, भोग में नहीं-आज की स्थिति की कितनी सुन्दर समीक्षा है इस शोक में। बार-बार एक ही बात भगवान् कह रहे हैं कि बाह्य सुखों में शान्ति नहीं-वहाँ तो भोगवादी अतृप्ति भरी तृष्णा है- बैचेनी है।¹⁶

आज सारा मानव समाज "स्ट्रेस" नामक महाव्याधि से पीड़ित है, जिसे देखिए वही देखने में स्वस्थ पर अंदर से रीता, खोखला एवं तनावग्रस्त । एक अविज्ञात भय हमारे सबके साथ जुड़ा है। चाहे भौतिक जगत में कितनी ही सफलताएँ मिल गयी हों। आत्मिक जगत सूखा मरुस्थल बन गया है। कारण अयज्ञीय भाव से किये गये कर्म ही हैं।¹⁷

एक जागरूक कर्मठ, कभी जगद्गुरु रहा भारतवर्ष सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी पराधीन है, भ्रष्टों में भी भ्रष्टतम है- इसकी कार्यकुशलता को मानो जंग लग गयी है। किस कारण यज्ञमय जीवन की उपेक्षा से। यदि किसी समाज का, राष्ट्र का पुर्ननिर्माण होगा तो जीवन जीने के तरीके को बदल कर- जीवन को भोगमय से बदलकर त्याग की जीवन में प्रतिष्ठा करने से। जीवन में यज्ञ अर्थात् परमार्थ के लिये किये गये सत्कर्मों की उपेक्षा से- एकाकी स्वार्थी जिंदगी जीने की रीति नीति से।¹⁸

श्रीमद्भगवद्गीता ही आज की युवाशक्ति को भावी पीढ़ी को एक संकेत देती है कि यदि यह जीवन सुख के साथ शान्ति संतोषमय बनाना है तो जीवन में यज्ञ को स्थान दो, नहीं तो जन्म जन्मांतरों तक अतृप्ति एवं वासना के बंधन ढोने पड़ेंगे। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" (ईशावास्योपनिषद्) की उक्ति अनुसार जीवन में त्याग की प्रतिष्ठा से ही मोक्ष या परम शांति मिलेगी। पश्चिमोन्मुखी मध्यम वर्ग एवं कम्प्यूटर युग में जी रही आज की पीढ़ी यदि सही अर्थों में भोग का आनन्द चाहती है, मानसिक शांति चाहती है तो उसे अपनी जीवन शैली आमूल चूल बदलनी होगी, यही संदेश गीता का हमें यहाँ मिलता है।¹⁹

भगवान् कहते हैं कि कर्म कामना से मुक्त हों, इसके लिए उन्हें 'यज्ञार्थाय' किया जाना चाहिए। अगला श्लोक इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहता है-



यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ (३/९)

यज्ञ के निमित्त किए जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है। इसलिए हे अर्जुन ! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्य-कर्म कर।²¹

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार (गीता का कर्मयोग) - "वैज्ञानिक प्रणाली से किया गया एक कर्मानुष्ठान है। कर्मों का उद्देश्य है-मन के भीतर जो अन्तर्निहित शक्ति है- उसे प्रगट करना अर्थात् जीवात्मा का जागरण करना। जो कुछ करो- जो कुछ खाओ-जो कुछ हवन करो-जो कुछ तप करो - जो कुछ दो सभी मुझ भगवान् में अर्पण कर शान्तभाव से स्थित होकर रहो।"²²

स्वामी जी जिस भाव की अभिव्यक्ति कर रहे हैं- उसी का बोध श्रीकृष्ण अपने शिष्य अर्जुन को कराते हुए उसकी मुक्ति का पथ प्रशस्त कर रहे हैं। वे कहते हैं कि सभी साधनों या यज्ञों को कर्मज मान-कर्म से जन्मा मान पर यह भी समझ कि ये सभी एक भगवान् की विशाल शक्ति से जन्मे हैं, उसी के द्वारा निर्दिष्ट हैं। उस भगवान् तत्व को तत्व से जान कर भलीभाँति समझकर स्वयं को समर्पित कर यज्ञीय भाव से यदि हर कर्म किया जाएगा तो लोभ-मोह-अहं के भवबंधनों से हमेशा के लिये जीवन्मुक्ति मिल जाएगी। (एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे) ²³

श्रीमद्भगवद्गीता में 'यज्ञ' शब्द का अर्थ केवल अग्नि में दी जाने वाली आहुति तक सीमित नहीं है, बल्कि इसे **निःस्वार्थ कर्म** और **परमात्मा को समर्पण** के व्यापक रूप में परिभाषित किया गया है।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी के " योग वशिष्ठ " में प्रसंग आया जिसमें विश्वामित्र ने कहा - हे मुनीश्वरों ! श्रीराम चंद्र जी ने सर्वज्ञ ज्ञान पूर्ण रूप से जान लिया है । इसके विपरीत जो लोग भोगों के चिंतन से, प्रभावित होकर आज्ञानजनीत बंधन में पूरी तरह जकड़ जाते हैं ।अर्थात् विषयों- भोगों में होने वाले सुदृढ़ वासना को ही बंधन बताते है। जिसकी दृष्टि राग आदि दोषों से रहित है, वही तत्वग्य,सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान यज्ञमय ईश्वर है।²⁴

आत्मस्वरूप यज्ञ - इसके अनुसार गीताकार का आशय है- परमात्मा में ज्ञान द्वारा एकीभाव से स्थित होकर ब्रह्मरूप अग्नि में यजन करना। अर्थात् "ब्रह्माग्नि " में जीवात्मा हविस्य के रूप में आहुति देना ही **ज्ञानयज्ञ** कहलाता है।²⁵



अश्वमेध यज्ञमयी जीवन है इसके अनुसार ब्रह्मरूपी अग्नि में जीवात्मा की आहुति देकर जीवात्मा और परमात्मा की एकत्व भावना से होम संपादित करना श्रेष्ठतम पुरुषार्थ यज्ञ , एक **आध्यात्मिक जनप्रक्रिया** है।²⁶

यज्ञों में भी श्रेष्ठतम एवं महायज्ञ कहा जाने वाला वह कर्म यज्ञ है, जो व्यक्ति को ब्राह्मणत्व के पद पर स्थापित कर देता, ब्राह्मणत्व अर्थात् आज के तथाकथित मनुवाद के नाम पर आलोचना करने वाले जाति-वर्ण वाला ब्राह्मण नहीं- ज्ञानयज्ञ का संपादन करने वाला - देवत्व प्रधान जैसे रीति-नीति वाला जीवन जीने वाला।²⁷

कठोपनिषद् में एक प्रसंग यमराज और नचिकेता के मध्य जिसमें अग्निविद्या का वर्णन आता है जिसके अनुसार “इस अग्नि या अध्यात्मिक यज्ञ का तीन बार अनुष्ठान करने वाला पुरुष ऋक्, यजुः, साम-तीनों वेदों से संबंध जोड़कर तीनों वेदों के तत्त्व-रहस्य के गुणों में निष्णात होकर, निष्कामभाव से यज्ञ, दान और तप रूप तीनों कर्मों को करता हुआ जन्म मृत्यु के बंधनों से तर जाता है। तथा अग्निदेव को भलीभांति जानकर निष्कामभाव से चयन करके उस अनन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है।”²⁸

प्रज्ञानोपनिषद् के अनुसार - “हे प्राण ! तू ही देवताओं के लिए हवि पहुंचाने वाला उत्तम अग्नि स्वरूप अध्यात्म विद्या है। पितरों के लिए पहली स्वधा है। अथर्वा, अंगिरस आदि ऋषियों के द्वारा आचरित अनुभूत सत्य भी तू ही है।”²⁹ (प्रज्ञानोपनिषद् श्लोक - 8)

“हे प्राण ! तू सब प्रकार के तेज (शक्तियों) से सम्पन्न तीनों लोकों का स्वामी इन्द्र है। तू ही प्रलयकाल में सबका संहार करने वाला रुद्र है और तू ही सबकी भली भांति यथा योग्य रक्षा करने वाला है। तू ही अन्तरिक्ष में विचरने वाला वायु है तथा तू ही अग्नि, चन्द्र, तारे आदि समस्त ज्योतिर्गणों का स्वामी सूर्य है।”³⁰ (प्रज्ञानोपनिषद् श्लोक - 9)

तृतीय अध्याय में कहा गया था कि यज्ञ की भावना से किया गया कर्म बन्धन का कारण नहीं बनता। वहाँ यज्ञ को अग्निहोत्र के अर्थों में प्रयुक्त न करके व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। गीता की परिभाषा में प्रत्येक कर्म जब निष्कामता से किया जाता है तब वह 'यज्ञ' कहलाता है। संसार में नई लहर चलानेवाले, नवीन विचारों को देनेवाले महापुरुष पुराने शब्दों में नया अर्थ भर देते हैं, श्रीकृष्ण ने 'यज्ञ' शब्द के साथ वैसा ही किया है। उन्होंने भिन्न-भिन्न कामनाओं के लिए किये जानेवाले यज्ञों को निष्कामता के रंग में ढाल दिया है। इसी दिशा में अपने भावों को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं- कुछ योगी देवताओं



को लक्ष्य में रखकर यज्ञ करते हैं, कोई दूसरे योगी ब्रह्माग्नि में यज्ञ द्वारा ही यज्ञ करते हैं (गीता 3/25) ³¹

4. आध्यात्मिक यज्ञीय ज्ञान -

आध्यात्मिक यज्ञीय ज्ञान का अर्थ है विद्या, बुद्धिमत्ता, विवेक, दूरदर्शिता, सद्भावना, उदारता और न्यायप्रियता जैसे गुणों का समन्वित रूप। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार आध्यात्मिक यज्ञ के अन्तर्गत देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, आत्मयज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, प्राणयज्ञ, संयमयज्ञ, आहारयज्ञ आदि की चर्चा करते हुये यह बताया गया है कि आत्मकल्याण व प्रभुप्राप्ति के मार्ग पर चलते हुए जो भी सत्साधन कार्य में लाए जाते हैं, वे सब यज्ञरूपी ही हैं।³²

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहवति ॥ श्रोत्रादीर्नीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहवति। शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहवति ॥ सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहवति ज्ञानदीपिते ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ अपाने जुहति प्राणं प्राणेषुपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुहवति। सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ (गीता 4/25-30)

- (१) **देवयज्ञ** - सूर्य, अग्नि आदि देवताओं से शक्ति को बढ़ाना। अपनी इंद्रियों का संबंध अनुभव करते हुए आंतरिक संबंध स्थापित कर शक्तियों का अभिवर्धन होना।
- (२) **ब्रह्मयज्ञ** - ज्ञानरूपी ब्रह्माग्नि में अपने कर्म-बंधनों को होमना।
- (३) **संयमयज्ञ**-संयम की तपरूपी अग्नि में इंद्रियों की वासना को जलाना। या मुक्त करना।
- (४) **इंद्रिययज्ञ**- इंद्रिय शक्ति को मर्यादित सीमा में प्रयुक्त करके उनकी शक्ति का सदुपयोग करना।
- (५) **आत्मयज्ञ** - आत्मारूपी अग्नि में प्राणों की गतिविधि का उत्सर्ग करना।
- (६) **द्रव्ययज्ञ** - अपनी भौतिक संपदा को सत्कर्मों में लगाना।
- (७) **तपयज्ञ** - शारीरिक कष्ट-सहिष्णुता, तितिक्षा एवं द्वंद्रों को सहन करने की शक्ति का उपार्जन।
- (८) **योगयज्ञ**- योगाभ्यास द्वारा आत्मविकास।
- (९) **स्वाध्याय यज्ञ**- सद्ज्ञान रूपी ग्रंथों द्वारा, सत्संग द्वारा एवं चिंतन-मनन द्वारा आत्मज्ञान का संपादन।
- (१०) **ज्ञानयज्ञ**-सद्ज्ञान की अभिवृद्धि।
- (११) **प्राणयज्ञ** - अपान में प्राण का लय, प्राण में अपान का समर्पण, इनकी गतियों का संतुलन करने के लिए कुंभक का अभ्यास।



(१२) **आहार यज्ञ**-भोजन की पवित्रता एवं उत्कृष्टता का साधन।

इन सब यज्ञ-साधनों से मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ब्रह्म की प्राप्ति की दिशा में उसके कदम तेजी से बढ़ते जाते हैं। यह आध्यात्मिक यज्ञ अंतिम लक्ष्य है।³³

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञानयज्ञः परंतप ।

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ४/३३

अर्थात्-"हे परंतप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।"

भगवान् का कहना है कि सारे यज्ञों में ज्ञानयज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् का स्पष्ट मत है कि सारे कर्म इसी ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं। अज्ञान से मुक्ति ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है, सारे कर्मों का मर्म है। जीवन भर अज्ञान से चिपटे रहे- बंधन्मुक्त हो नहीं पाए, तो यह जीवन निष्प्रयोजन ही रहा। देवयज्ञ-नृयज्ञ-दान यज्ञ आदि से स्वर्ग आदि फल की प्राप्ति मात्र हो सकती है परंतु आत्मज्ञान बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इसीलिये **देवयज्ञ-द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ** बताया गया है।³⁴

यज्ञ वह ज्ञान है जिसमें सब कुछ परि-समाप्त होता है। उसके प्राप्त होने पर "तू सब भूतों को अशेषतः आत्मा के अन्दर और तब मेरे अन्दर देखेगा।" क्योंकि आत्मा वही एक, अक्षर, सर्व-गत, सर्वाधार, स्वतःसिद्ध सद्वस्तु या ब्रह्म है जो हमारे मनोमय पुरुष के पीछे छिपा हुआ है और जिसमें चेतना अहंभाव से मुक्त होने पर विशालता को प्राप्त होती है और तब हम जीवों को उसी एक सत् के अन्दर भूतरूप में देख पाते हैं।³⁵(यज्ञ-रहस्य,)गीता-प्रबन्ध

कामजित यज्ञार्थ कर्मों के करने से हमें ज्ञान होता है और आत्मा अपने-आपको पा लेती है; आत्मज्ञान और परमात्मज्ञान में स्थित होकर कर्म करने से हम मुक्त हो जाते और भागवत सत्ता की एकता, शान्ति और आनन्द में प्रवेश करते हैं।³⁶(यज्ञ-रहस्य,)गीता-प्रबन्ध

स्थूलयज्ञ इसकी प्रथम सीढ़ी है। जैसे साकार मूर्तिपूजा से अभ्यास बढ़ाकर निराकार ब्रह्म की उपासना की जाती है, वैसे ही अग्निहोत्र द्वारा यज्ञ-भावनाओं का विकास कर अपने आप को ब्रह्मार्पण करते हुए स्वयं यज्ञरूप बनना होता है। यही यज्ञ का परम रहस्य है। यह परमार्थप्रियता, परस्पर सहयोग, सद्भावना की वृत्ति, संयम, त्याग, उदारता, धर्मप्रियता, आस्तिकता एवं ईश्वर-उपासना की भावना ही यज्ञ का वास्तविक रहस्य है।³⁷(यज्ञ-रहस्य,)गीता-प्रबन्ध



उपसंहार - उपरोक्त यज्ञों के विस्तार को समझकर योगेश्वर की मूलशिक्षा को समझा जाय। भगवान् कहते हैं कि विषयों का हवन इन्द्रियों में कीजिये, इन्द्रियों का मन में तथा मन का चित्त में। चित्त का हवन अहं में कीजिये तथा अहं का हवन आत्मा में कीजिये। शुद्ध निरंजन-शुद्ध बुद्धि आत्मा में इस प्रकार हवन होते ही अशुद्धियाँ जलने लगती हैं, ऊर्ध्वगमन होने लगता है तथा अनंत से तादात्म्य की परिस्थितियाँ बन जाती हैं।³⁸

भगवान् कहते हैं (तीसवें शोक में) कि इस प्रकार यज्ञ का मर्म समझ लेने वाले सभी साधक यज्ञों द्वारा पाप का नाश कर देने वाले और यज्ञों के मर्म को जानने वाले होते हैं। (यज्ञ क्षपित कल्मषाः) । हम सभी यज्ञ करते तो हैं पर यज्ञ को मानते नहीं हैं। मानते हैं तो समझते नहीं। बहिरंग की क्रिया को ही सब कुछ मानकर चलते हैं तो हाथ कुछ नहीं लगता। यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान समझे बिना, उनके ज्ञानयज्ञ वाले मर्म को समझे बिना किया गया यजन तो मात्र अग्निहोत्र की बहिरंग प्रधान प्रक्रिया है, जबकि **यज्ञ हर श्वास में जीवन की हर क्रिया में- हर विचार में संपादित किया जाने वाला एक दिव्यकर्म हैं।**³⁹

परम पूज्य गुरुदेव का जीवन यज्ञमय रहा। वे इसमें जीवन भर एक समिधा बनकर जले एवं तिलतिलकर अपने कण-कण की आहुति देकर एक दिव्यकर्मी को कैसा होना चाहिए, उसका शिक्षण दे गए। हम उनके जीवन से यही शिक्षण लें, स्वयं के जीवन को भी यज्ञमय बना सकें, यही प्रेरणा सतत हमें मिलती रहनी चाहिए। शांतिकुञ्ज के "उद्गाताओं" द्वारा एक बड़ा सुंदर गीत गाया जाता है-"हे प्रभु! जीवन हमारा यज्ञमय कर दीजिए।"⁴⁰ यदि इस गीत के मर्म को जीवन में उतारा जा सके तो सभी का जीवन सही अर्थों में दिव्य बन सकता है। यज्ञीय वृत्ति अर्थात् निम्नगामी प्रकृति की क्रियाओं को अपने अधीन करके उस दिव्य आनन्द का रसास्वादन किया जाय जो यज्ञ से-आत्मबलिदान से, श्रेष्ठ उद्देश्यों पर न्योछावर होने से प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. वेदालंकार जगन्नाथ"गीता-प्रबंध, प्रकाशक: श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-२, प्रथम संस्करण, वर्ष 1969, पृष्ठ -121
2. ब्रह्मवर्चस, यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान, वांग्मय-25, अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2022,
3. शर्मा भगवती देवी, देव संस्कृति दिग्विजय अंक, अखण्ड-ज्योति मासिक पत्रिका, नवम्बर-संस्करण, अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 1992
4. ब्रह्मवर्चस, यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान, वांग्मय-25, अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2022, पृ.सं. 26
5. ब्रह्मवर्चस, यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान, वांग्मय-25, अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2022 पृ.सं. 26
6. ब्रह्मवर्चस, यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान, वांग्मय-25, अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2022 पृ.सं. 26
7. ब्रह्मवर्चस, यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान, वांग्मय-25, अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि मथुरा, 2022 पृ.सं. 26
8. स्वामी रामसुखदास, गीता-प्रबोधनी टीका, अध्याय 4, संस्करण -49, गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश, संवत् 2079, पृ.सं.



भारतीय ज्ञान प्रणाली के वैदिक आधार : एक अध्ययन

जैकी कुमार चौबे

शोधछात्र, संस्कृत विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश

भारतीय ज्ञान प्रणाली मानव सभ्यता की प्राचीनतम, सतत् और समग्र ज्ञान-परम्पराओं में से एक है, जिसकी जड़ें वैदिक साहित्य में निहित हैं। यह प्रणाली केवल भौतिक ज्ञान तक सीमित न होकर आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक चेतना का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करती है। चारों वेद ज्ञान परम्परा के मूल स्रोत हैं, जिनमें प्रकृति, समाज, कर्म, यज्ञ, ऋत और ब्रह्म की अवधारणाएँ प्रतिपादित हैं। वैदिक विचारधारा का दार्शनिक विकास उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है, जहाँ कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड की ओर संक्रमण स्पष्ट दिखाई देता है। “तत्त्वमसि”¹, “अहं ब्रह्मास्मि”² तथा “प्रज्ञानं ब्रह्म”³ जैसे महावाक्य आत्मा और ब्रह्म की अद्वैतात्मक सत्ता को उद्घाटित करते हैं। उदाहरणतः माण्डूक्य उपनिषद् का “अयमात्मा ब्रह्म”⁴ कथन यह दर्शाता है कि समस्त जगत् ब्रह्मस्वरूप है, जो भारतीय ज्ञान प्रणाली की समग्रता को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली के वैदिक आधार न केवल भारतीय संस्कृति की बौद्धिक पहचान निर्मित करते हैं, बल्कि समकालीन वैश्विक समस्याओं—जैसे पर्यावरण संरक्षण, नैतिक संकट और मानसिक स्वास्थ्य के समाधान हेतु भी प्रासंगिक दृष्टि प्रदान करते हैं। यह शोध भारतीय ज्ञान परम्परा की इसी सतत्, समन्वयात्मक और सार्वकालिक उपयोगिता को रेखांकित करता है।

मुख्यशब्द:- भारतीय ज्ञान प्रणाली, वेद, उपनिषद्, दर्शन, ऋत, धर्म, ब्रह्म, आत्मा

¹ छान्दोग्य उपनिषद्

² बृहदारण्यक उपनिषद्

³ ऐतरेय उपनिषद्

⁴ माण्डूक्य उपनिषद्



प्रस्तावना:-

भारतीय ज्ञान परम्परा का अर्थ उन ज्ञान प्रणालियों से है जो भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित हुईं और अनुभवों, प्रयोगों व सूक्ष्म विश्लेषण पर आधारित हैं। इसके प्रमुख स्रोत— वैदिक साहित्य अर्थात् वेद, उपनिषद्, वेदांग और उपवेद। शास्त्र और दर्शन अर्थात् सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक आदि। लोक विद्या अर्थात् समुदायों और जनजातियों के माध्यम से हस्तांतरित पारंपरिक ज्ञान। भारतीय ज्ञान परम्परा, भारत की वह समृद्ध बौद्धिक और सांस्कृतिक विरासत है जो हजारों वर्षों से निरंतर प्रवाहित हो रही है। यह केवल धार्मिक ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें ज्ञान और विज्ञान का अनूठा संगम है। भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल सूचनाओं का संकलन नहीं, अपितु जीवन को समग्रता में समझने की एक सुव्यवस्थित दृष्टि है। भारतीय ज्ञान प्रणाली से तात्पर्य उस ज्ञान-परम्परा से है, जो वेद, वेदाङ्ग, उपवेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, दर्शन तथा शास्त्रीय साहित्य में निहित है। यह प्रणाली जीवन को केवल उपयोगिता के स्तर पर नहीं, बल्कि परम उद्देश्य (पुरुषार्थ) के परिप्रेक्ष्य में देखती है। चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भारतीय ज्ञान प्रणाली की व्यावहारिक एवं दार्शनिक धुरी हैं। हितोपदेश में कहा गया है—

“धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः”⁵

अर्थात् धर्म से रहित मनुष्य पशु के समान है। इससे स्पष्ट होता है कि ज्ञान का लक्ष्य केवल बौद्धिक उन्नति नहीं, अपितु नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास भी है। इसमें भौतिक, आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक जीवन का समन्वय दिखाई देता है। वैदिक ऋषियों ने सत्य की अनुभूति को श्रुति के रूप में व्यक्त किया, जो कालान्तर में दार्शनिक चिन्तन का आधार बनी। वेदों से लेकर उपनिषदों एवं दर्शन-परम्परा तक भारतीय ज्ञान प्रणाली की एक सुदृढ़ बौद्धिक परम्परा विकसित हुई।

ऋग्वेद में कहा गया है—

“मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥”⁶

अर्थात् सत्य एक है, ज्ञानी उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। यही कथन भारतीय ज्ञान प्रणाली की उदार, समन्वयी एवं बहुलतावादी दृष्टि का मूल सूत्र है। भारतीय सभ्यता की पहचान उसके विशिष्ट ज्ञानबोध से होती है। यह ज्ञान केवल बौद्धिक विमर्श नहीं, अपितु जीवन-पद्धति है, जो मनुष्य को प्रकृति, समाज और ब्रह्माण्ड के साथ सामंजस्य स्थापित करना सिखाती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली का मूल स्रोत वैदिक साहित्य है, जो न केवल धार्मिक ग्रन्थ है, अपितु दर्शन, विज्ञान,

⁵ हितोपदेश श्लोक 25

⁶ ऋग्वेद 1.164.46



समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र का भी आधार है। इसका मूल स्रोत वैदिक वाङ्मय है, जिसे 'अपौरुषेय' माना गया है- "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः"⁷

वैदिक ऋषियों ने ज्ञान को केवल बाह्य जगत के अन्वेषण तक सीमित नहीं रखा, बल्कि आत्मानुभूति और ब्रह्मबोध को भी उसका अनिवार्य अंग बनाया। वेद में प्रकृति, देवता, यज्ञ, समाज और जीवन के विविध पक्षों का वर्णन है। ऋग्वेद में ब्रह्माण्डीय सत्ता का बोध, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड का दार्शनिक आधार, सामवेद में संगीतात्मक चेतना तथा अथर्ववेद में लोकजीवन का प्रतिबिम्ब मिलता है।

ऋग्वेद भारतीय ज्ञान-परम्परा का प्राचीनतम और आधारभूत स्रोत है। इसमें मानव और ब्रह्माण्ड के बीच सम्बन्ध को देवस्तुति और ज्ञानात्मक चिन्तन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृति और विज्ञान-बोध की मूल आधारशिला है।

ऋग्वेद का मूल तत्त्व ऋत है—जो प्रकृति, समाज और नैतिकता की सुव्यवस्थित नियमबद्धता को दर्शाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में यही ऋत आगे चलकर धर्म के रूप में विकसित हुआ। ऋत से ही सत्य और धर्म की अवधारणाएँ विकसित हुईं, जो आगे चलकर भारतीय समाज की नैतिक संरचना का आधार बनीं।

“ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत”⁸

अर्थ—तप से ऋत और सत्य की उत्पत्ति हुई। देवतावाद और प्रकृतिज्ञान-ऋग्वेद में अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, सूर्य, उषा आदि देवता प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। यह दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रकृति को पूज्य और चेतन माना गया।

“अग्निमीळे पुरोहितं”⁹

यह मंत्र यज्ञ, ज्ञान और जीवन-शक्ति के प्रतीक अग्नि की महिमा को उद्घाटित करता है। ऋग्वेद में केवल स्तुति नहीं, बल्कि दार्शनिक प्रश्नाकुलता भी है। सृष्टि की उत्पत्ति, अस्तित्व और परम सत्य पर गहन चिन्तन मिलता है।

⁷ अर्थसंग्रह पेज न. 3

⁸ ऋग्वेद 10.190.1

⁹ ऋग्वेद 1.1.1



“कोऽद्वा वेद क इह प्रवोचत्”¹⁰

यह नासदीय सूक्त भारतीय ज्ञान परम्परा की वैचारिक स्वतंत्रता और बौद्धिक साहस को दर्शाता है। मानवतावाद और सामाजिक चेतना- ऋग्वेद में समाज, परिवार और मानव-मूल्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यहाँ सह-अस्तित्व, सहयोग और समानता पर बल दिया गया है। मंत्र—

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥¹¹

अर्थात्- मनुष्यों में अलग-अलग दल न होने चाहिए, किन्तु सब मिलकर एक सूत्र में बँधें, मिलकर रहें, इसलिए मिलें कि परस्पर संवाद कर सकें, एक-दूसरे के सुख-दुःख और अभिप्राय को सुन सकें और इसलिए संवाद करें कि मन सब का एक बने-एक ही लक्ष्य बने और एक लक्ष्य इसलिये बनना चाहिये कि जैसे श्रेष्ठ विद्वान् एक मन बनाकर मानव का सच्चा सुख प्राप्त करते रहे, ऐसे तुम भी करते रहो। यह मंत्र भारतीय सामाजिक दर्शन का मूलमंत्र है।

ऋग्वेद का उद्धोष है—

“आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेऽर्दिवे ॥”¹²

अर्थात्—सभी दिशाओं से कल्याणकारी विचार हमारे पास आँ। यह मंत्र भारतीय ज्ञान प्रणाली की उदार, समन्वयात्मक और सार्वभौमिक दृष्टि को प्रकट करता है। वैदिक काल से लेकर दार्शनिक चिन्तन के विकास तक भारतीय ज्ञान परम्परा निरन्तर विकसित होती रही है। चारों वेद भारतीय ज्ञान प्रणाली की आधारशिला हैं।

यजुर्वेद भारतीय ज्ञान-परम्परा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। यह वेद मुख्यतः कर्मकाण्ड, यज्ञ-विधान और सामाजिक-धार्मिक आचरण का व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करता है। जहाँ ऋग्वेद में देवताओं की स्तुति है, वहीं यजुर्वेद में उन स्तुतियों को व्यावहारिक जीवन में क्रियान्वित करने की विधि मिलती है। इसी कारण इसे भारतीय ज्ञान परम्परा का

¹⁰ ऋग्वेद 10.129.6

¹¹ ऋग्वेद 10.191.2

¹² ऋग्वेद 1.89.1



व्यावहारिक वेद कहा जाता है। यजुर्वेद में यज्ञ को सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति का साधन माना गया है—“यज्ञो वै विष्णुः”¹³

यजुर्वेद में कर्म और ज्ञान का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यज्ञ को केवल बाह्य अनुष्ठान न मानकर उसे मानव जीवन, प्रकृति और ब्रह्माण्ड के सामंजस्य का प्रतीक माना गया है। यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ केवल धार्मिक कर्म नहीं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन, सामाजिक समरसता और नैतिक अनुशासन के प्रतीक हैं। अग्नि, वायु, सूर्य, जल आदि तत्वों की उपासना भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रकृति-केन्द्रित दृष्टि को दर्शाती है, यजुर्वेद के शान्तिपाठ में उद्धृत-

द्यौः शान्तिरुन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥¹⁴

यह शान्तिपाठ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में शान्ति और संतुलन की कामना करता है, जो भारतीय ज्ञान परम्परा की सार्वभौमिक दृष्टि को स्पष्ट करता है।

सामवेद भारतीय ज्ञान-परम्परा का वह अद्वितीय स्रोत है, जिसमें ध्वनि, संगीत और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। इसे भारतीय संस्कृति की संगीतात्मक आत्मा कहा जा सकता है। जहाँ यजुर्वेद कर्म का विधान करता है, वहीं सामवेद उस कर्म को स्वर, लय और रस के माध्यम से चेतना तक पहुँचाता है। सामवेद का मूल सिद्धान्त है कि नाद (ध्वनि) ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। मंत्रों का गायन केवल सौन्दर्य के लिए नहीं, बल्कि आन्तरिक शुद्धि और चित्त-परिवर्तन के लिए किया जाता है।

“अग्र आयाहि वीतये”¹⁵

ऋग्वैदिक मंत्र को जब सामगान के स्वर में गाया जाता है, तब वह साधक की चेतना को गहराई से प्रभावित करता है। यह भारतीय ज्ञान परम्परा में श्रुति की केन्द्रीय भूमिका को दर्शाता है। सामवेद में यज्ञ के समय होने वाले सामगान का विस्तृत विधान है। उद्गाता ऋत्विज द्वारा गाया गया साम देवताओं को आवाहन करने के साथ-साथ मानव मन को भी संयमित और पवित्र करता है। यह भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म-भाव-रस के समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण है। उद्गातृवेद भारतीय ज्ञान परम्परा में रसबोध की आधारशिला रखता है। बाद में विकसित नाट्यशास्त्र, संगीतशास्त्र और काव्यशास्त्र की परम्परा सामवेद से ही प्रेरणा लेती है। यहाँ सौन्दर्य को आध्यात्मिक उत्थान का साधन माना गया है। यज्ञों में सामूहिक

¹³ शतपथ ब्राह्मण

¹⁴ शुक्लयजुर्वेद 36.17

¹⁵ सामवेद 1.1



रूप से गाए जाने वाले साम भारतीय संस्कृति में एकता और समरसता का प्रतीक बने। सामवेद संगीत और साधना के माध्यम से चेतना के उत्कर्ष पर बल देता है, जबकि अथर्ववेद लोकजीवन, चिकित्सा और सामाजिक आस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है।

अथर्ववेद भारतीय ज्ञान-परम्परा का वह व्यापक आयाम है जो मानव जीवन की व्यावहारिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक समस्याओं को एक साथ संबोधित करता है। जहाँ अन्य वेद यज्ञ और देवपूजा पर अधिक केन्द्रित हैं, वहीं अथर्ववेद लोकजीवन का वेद माना जाता है। अथर्ववेद में जन्म से मृत्यु तक की मानवीय चिन्ताएँ—स्वास्थ्य, रोग-निवारण, दीर्घायु, शान्ति, समृद्धि, गृहस्थ जीवन, पारिवारिक सौहार्द—सबका वर्णन मिलता है। यह भारतीय ज्ञान परम्परा की समग्र जीवन-दृष्टि को प्रकट करता है।

“जीवेम शरदः शतम्”¹⁶। अर्थत्-हम सौ वर्षों तक जीवित रहें। यह मंत्र जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और दीर्घ, स्वस्थ जीवन की कामना को दर्शाता है। अथर्ववेद को आयुर्वेद का मूल स्रोत माना जाता है। इसमें औषधि-सूक्तों द्वारा रोगों के कारण, निवारण और औषधीय वनस्पतियों का उल्लेख है। यह भारतीय ज्ञान परम्परा में चिकित्सा विज्ञान की वैदिक नींव को दर्शाता है।

“ओषधयः पृच्छामि मातरः”¹⁷

यहाँ औषधियों को चेतन और कल्याणकारी माना गया है।

अथर्ववेद में भय, चिन्ता, ईर्ष्या, क्रोध और मानसिक अशान्ति के निवारण हेतु मंत्र मिलते हैं। यह दिखाता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा मानसिक स्वास्थ्य को भी उतना ही महत्त्व देती है जितना शारीरिक स्वास्थ्य को। भारतीय ज्ञान प्रणाली का आशय उस समग्र ज्ञान परम्परा से है, जिसमें आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक एवं नैतिक ज्ञान का समन्वय दिखाई देता है। यह प्रणाली ज्ञान (ज्ञानयोग), कर्म (कर्मयोग) और भक्ति (भक्तियोग) की त्रिवेणी पर आधारित है।

गीता में कहा गया है—“त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन”¹⁸

¹⁶ अथर्ववेद 19.67.1

¹⁷ अथर्ववेद 8.7.3

¹⁸ भगवद्गीता 2.45



यह श्लोक दर्शाता है कि वेद केवल कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं, बल्कि उससे आगे तत्त्वबोध की ओर प्रेरित करते हैं। यह प्रणाली व्यक्ति, समाज और ब्रह्माण्ड के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। इसका उद्देश्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि जीवन को परिष्कृत एवं मुक्त करना है।

उपनिषद् और दार्शनिक चेतना

उपनिषदों को वैदिक दर्शन का शिखर कहा जाता है। इनमें कर्मकाण्ड से ऊपर उठकर आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया गया है। उपनिषदों में वैदिक चिन्तन अपने चरम दार्शनिक रूप में प्रकट होता है। आत्मा और ब्रह्म की एकता, अविद्या-विद्या का भेद, तथा मोक्ष की अवधारणा भारतीय दर्शन का मूल है।

“तत्त्वमसि” अर्थात्- यह गुरु द्वारा शिष्य को दिया गया उपदेश है, जिसका अर्थ है—वह निराकार परमेश्वर (ब्रह्म) और तुम्हारा वास्तविक स्वरूप एक ही है।

“अहं ब्रह्मास्मि” अर्थात्- यह साधक का अपना अनुभव है कि वह केवल एक शरीर नहीं, बल्कि उस असीमित दिव्य शक्ति (ब्रह्म) का हिस्सा है।

“प्रज्ञानं ब्रह्म” अर्थात्- वह चैतन्य शक्ति (चेतना) जिससे हम देखते, सुनते और समझते हैं, वही परम सत्य या अर्थात् ब्रह्म ही है।

ये महावाक्य भारतीय ज्ञान प्रणाली को अद्वैतात्मक आधार प्रदान करते हैं। उपनिषद् भारतीय ज्ञान प्रणाली को आन्तरिक अनुभूति एवं तात्त्विक चिन्तन की दिशा प्रदान करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की दार्शनिक व्याख्या, आरण्यकों में ध्यान एवं प्रतीकवाद, तथा स्मृतियों में सामाजिक-नैतिक नियमों का विस्तार मिलता है। मनुस्मृति में कहा गया है—

“वेदोऽखिलो धर्ममूलम्”¹⁹

अर्थात्—सम्पूर्ण धर्म का मूल वेद हैं।

भारतीय ज्ञान प्रणाली का व्यावहारिक आधार धर्म, कर्म और मोक्ष की अवधारणा में निहित है। धर्म सामाजिक-नैतिक व्यवस्था का नियामक है, कर्म व्यक्ति के आचरण को दिशा देता है, और मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य है। भारतीय ज्ञान प्रणाली का व्यावहारिक आधार धर्म, कर्म और मोक्ष की त्रिवेणी में निहित है। आधुनिक युग में भारतीय ज्ञान प्रणाली का

¹⁹ मनुस्मृति 2.6



महत्व पुनः स्थापित हो रहा है। पर्यावरणीय संतुलन, योग, आयुर्वेद, नैतिक शिक्षा एवं समग्र जीवन दृष्टि में इसके सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। आज पर्यावरण संकट, नैतिक पतन और मानसिक तनाव जैसी समस्याओं के समाधान में भारतीय ज्ञान प्रणाली अत्यन्त प्रासंगिक है। योग, आयुर्वेद और ध्यान पद्धतियाँ इसका जीवंत उदाहरण हैं।

उपसंहार:-

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन को सही दिशा देने वाली एक समग्र और जीवंत परम्परा है। इसके मूल में वेद हैं, जो मनुष्य को प्रकृति, समाज और ब्रह्माण्ड के साथ संतुलन में जीने की प्रेरणा देते हैं। ऋग्वेद में सत्य और ऋत का बोध, यजुर्वेद में कर्म और आचरण की व्यवस्था, सामवेद में संगीत और चेतना का उत्थान तथा अथर्ववेद में लोकजीवन, स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति का मार्गदर्शन मिलता है। उपनिषदों में यह ज्ञान और भी गहन रूप में प्रकट होता है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध कराया गया है। “तत्त्वमसि” और “अहं ब्रह्मास्मि” जैसे महावाक्य यह सिखाते हैं कि मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य केवल भौतिक सुख नहीं, बल्कि आत्मबोध और मोक्ष है। भारतीय ज्ञान प्रणाली धर्म, कर्म और मोक्ष के माध्यम से व्यक्ति के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को एक साथ जोड़ती है। आधुनिक समय में भी इस ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता बनी हुई है। पर्यावरण संरक्षण, मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक मूल्यों और समरस समाज की स्थापना में इसके सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी हैं। इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली अतीत की धरोहर होने के साथ-साथ वर्तमान और भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक है, जो मनुष्य को संतुलित, सार्थक और मूल्यपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद. ऋग्वेद संहिता. सायणभाष्य सहित, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2010.
2. यजुर्वेद. शुक्ल यजुर्वेद संहिता (वाजसनेयी संहिता). सायणभाष्य सहित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971.
3. सामवेद. सामवेद संहिता. पारम्परिक भाष्य सहित, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ कार्यालय, वाराणसी, 2008.
4. अथर्ववेद. अथर्ववेद संहिता. हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2012.
5. उपनिषद्. प्रमुख उपनिषद्. अनुवादक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, हार्पर कॉलिन्स, नई दिल्ली, 1994.
6. भगवद्गीता. श्रीमद्भगवद्गीता. अनुवादक स्वामी गम्भीरानन्द, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2013.
7. मनु. मनुस्मृति. अनुवादक गंगानाथ झा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999.
8. नारायण पण्डित. हितोपदेश. चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005.
9. योग, कर्मयोग और जीवन मूल्यों पर स्तंभ।

